पशुपालन

(जनसेवक हेतु पाठ्य सामग्री)

कृषि एवं गन्ना विकास विभाग
कृषि भवन, काँके रोड, राँची - 834008
एवं
राज्यस्तरीय कृषि प्रबंधन प्रसार-सह-प्रशिक्षण संस्थान (समेति)
कृषि भवन प्रांगण, काँके रोड, राँची - 834008, झारखण्ड

पशुपालन

(जनसेवक हेतु पाठ्य सामग्री)

आयोजक :

राज्यस्तरीय कृषि प्रबंधन, प्रसार-सह-प्रशिक्षण संस्थान (समेति)

कृषि भवन प्रांगण, काँके रोड, राँची - 834008, झारखण्ड

एवं

कृषि प्रसार शिक्षा विभाग

बिरसा कृषि विश्वविद्यालय

काँके, राँची - 834006, झारखण्ड

विषय-सूची

गो–पालन 1

भैंस पालन 4

बकरी पालन 33

भेंड़ पालन 37

सूकर पालन 52

खरगोश 70

मछली पालन 74

मुर्गी पालन 111

बत्तख पालन 116

बटेर पालन 124

पशुओं का औषधीय उपचार 127

दूध का मूल्यवर्धन 130

प्रकाशक :

राज्यस्तरीय कृषि प्रबंधन, प्रसार-सह-प्रशिक्षण संस्थान (समेति)

कृषि भवन प्रांगण, काँके रोड, राँची – 834008, झारखण्ड

© समेति 2012

सर्वाधिकार सुरक्षित (समेति)

श्री अरूण कुमार सिंह, भा.प्र.से.

सचिव,

कृषि एवं गन्ना विकास विभाग

झारखण्ड सरकार

नेपाल हाऊस, राँची – 834002, झारखण्ड

दूरभाष : 0651–2490578

श्री कमल किशोर सोन, भा.प्र.से.

निदेशक

कृषि विभाग, झारखण्ड सरकार

कृषि भवन प्रांगण, काँके रोड, राँची – 834008, झारखण्ड

दूरभाष : 0651–2233549

मुख्य सम्पादक :

डॉ. आर. पी. सिंह 'रतन', निदेशक, प्रसार शिक्षा निदेशालय, बी.ए.यू., काँके, राँची – 834006 (झारखण्ड)

दूरभाष : 0651–2450849

श्री जटा शंकर चौधरी, निदेशक, समेति, झारखण्ड, काँके रोड, राँची – 834008, झारखण्ड

दूरभाष : 0651–2232745

समन्वयक :

श्री अभिषेक तिर्की, संकाय (कृषि प्रसार प्रबंधन), समेति, झारखण्ड

आलेख एवं सम्पादन :

डॉ. हिमांशु सिंह, एस.एम.एस., कृषि विज्ञान केन्द्र, धनबाद

डॉ. संजय कुमार, एस.एम.एस., कृषि विज्ञान केन्द्र, दुमका

डॉ. रविन्द्र मोहन मिश्रा, एस.एम.एस., कृषि विज्ञान केन्द्र, दारीसाय

गो-पालन

दुग्ध उत्पादन के लिए उन्नत देशी एवं विदेशी नस्लों को पाला जाता है। कुछ प्रमुख नस्लों का विवरण निम्न प्रकार है।

(क) देशी नस्ल

1. हरियाणा

प्राप्ति स्थान – रोहतक, हिसार, करनाल एवं दिल्ली के आस–पास के क्षेत्रों में ज्यादातर पायी जाती हैं।

शारीरिक रचना – लम्बा तथा पतला चेहरा एवं दोनों सींग के बीच में उभार रहता है। सींग, कान, गलकम्बल (डियूलैप) तथा शीथ छोटा रहता है।

- चमड़ी पतली और मुलायम रहती है।
- यह प्रायः सफेद या हल्के भूरे रंग का होता है।
- पूँछ काली गुच्छे वाली सुंदर एवं नीचे तक लटकती हुई होती है।
- यह प्रजाति कृषि कार्य के साथ–साथ भारवाहक होती है।
- गाय प्रतिदिन 4 से 5 लीटर दूध देती है। प्रति ब्यांत 900 से 1200 लीटर तक दूध देती हैं।

2. सिन्धी या रेडसिन्धी

प्राप्ति स्थान – सिन्ध प्रान्त

शारीरिक रचना – शरीर मध्यम आकार का तथा गठा हुआ।

- इस गाय का रंग मुख्यतः लाल या गाढ़े भूरे रंग का होता है।
- इस प्रजाति की गायें सीधी स्वभाव की होती हैं।
- कान मध्यम आकार का लटका हुआ तथा सींग छोटे एवं मजबूत होते हैं।
- डियूलैप लटकता हुआ होता है तथा शीथ काफी विकसित होते हैं।
- गायों का आकार वेज आकार का होता है।
- गाएं दूधारू होती हैं।
- गाय प्रतिदिन 8 से 9 लीटर तक दूध देती है। प्रति ब्यांत 1800 लीटर दूध देती है।

3. शाहाबादी या गंगातीरी

प्राप्ति स्थान – बिहार प्रान्त के शाहाबाद जिलों में और उत्तर प्रदेश के बलिया आदि स्थानों में।

शारीरिक रचना – शरीर मध्यम आकार का।

- ये गहरे भूरे एवं सफेद रंग के होते हैं।
- सींग छोटे और मोटे तथा हम्प बड़ा होता है।

- यह जाति कृषि, भारवहन एवं दूध उत्पादन सभी के लिए उपयोगी है।
- यह प्रतिदिन 6–8 लीटर तक दूध प्रतिदिन देती है।

4. थरपारकर या थारी

प्राप्ति स्थान – सिन्ध, कच्छ तथा मारवाड़ आदि स्थानों में बहुतायत में पाया जाता है।

शारीरिक रचना – चेहरा लम्बा तथा माथा चौड़ा होता है।

- पूँछ लम्बी, काली एवं गुच्छे वाली होती है।
- सींग मध्यम आकार की और डयूलैप साधारण आकार की होती है।
- हम्प विशेष तौर पर निकला या उठा हुआ होता है।
- इस जाति की गायें और बैल गर्मी सहन करने वाली होती है और रेगिस्तान में सहजता से रहती हैं।
- गायें दूध अच्छा देती हैं तथा बैल कृषि कार्य के लिए उपयुक्त होते हैं।

5. शाहीवाल या मोन्टगोमरी

प्राप्ति स्थान – मोन्टगोमरी, पंजाब, उत्तर प्रदेश के कुछ शहरों में तथा दिल्ली के विभिन्न भागों में।

शारीरिक रचना – इस जाति के बैल सुस्त एवं ढीले–ढाले, सीधे–साधे होते हैं इसलिए बैलों को लोला भी कहा जाता है।

- सर लम्बा और औसत आकार का होता है।
- सींग छोटे और मोटे आकार के होते हैं।
- आँखें छोटी, चमड़ी ढीली, भारी भरकम शरीर, बड़ा हम्प, मध्यम आकार के कान तथा डियूलैप लम्बा होता है।
- पूँछ नीचे पैर तक लटकती रहती है।
- गायों का रंग लाल, बदामी लिए हुए लाल रंग होता है। कभी–कभी इनपर सफेद धब्बे भी देखे जाते हैं।
- इस जाति की गाएं 8 से 11 लीटर दूध प्रतिदिन और प्रति ब्यान औसतन 2500 से 3200 लीटर तक दूध देती है जो अधिकतम 4500 लीटर तक हो सकता है।
- थन पूर्ण विकसित एवं देखने में सुन्दर लगता है।
- शरीर वेज शेप्ड तथा टांगें छोटे आकार की होती हैं।

(ख) विदेशी नस्ल

विदेशी नस्ल की गायों में जर्सी, होलस्टिन ब्राउन तथा स्विश प्रमुख हैं। उक्त सभी नस्लें दूधारू होने के कारण सारे विश्व में लोकप्रिय हैं। भारत में होलस्टिन फ्रीजियन तथा जर्सी नस्लें दुग्ध उत्पादन में उपयुक्त मानी जाती है। इन नस्लों की गायों के दूध में वसा की मात्रा भारतीय मूल की गायों की तुलना में कम होती है। देश की पशु प्रजनन नीति में केवल इन्हीं दोनों नस्लों को चयनित किया गया है। इन्हीं के वीर्य से देश में संकर प्रजनन को बढ़ावा दिया जा रहा है।

1. फ्रीजियन/होलस्टिन फ्रीजियन

प्राप्ति स्थान – हॉलैण्ड

शारीरिक रचना – शरीर काफी भारी–भरकम होता है।

- सींग छोटे से लेकर बड़े होते हैं।
- मसल चौड़ा, नथुने खुले एवं जबड़े मजबूत होते हैं।
- आँखें चंचल, चमकदार, बड़ी तथा कान मध्यम आकार की होती हैं।
- रंग सफेद में काले धब्बे या काले में सफेद धब्बेदार होती हैं। ये गायें कभी–कभी पूर्णतया काले रंग की भी होती हैं।
- पूँछ का निचला हिस्सा सदैव सफेद रंग का होता है।
- सर बड़ा, पतला एवं सीधा होता है।
- चारा खाने की क्षमता अधिक होती है।
- दूध में वसा (फैट) कम 3.2 – 3.5 प्रतिशत होती है।
- ये नस्लें औसतन 7000 लीटर दूध प्रति ब्यांत तथा 25–30 लीटर प्रति दिन देती हैं।

2. जर्सी

प्राप्ति स्थान – जर्सी द्वीप इंग्लैण्ड के पास।

शारीरिक रचना – इस नस्ल की गायें छोटे कद की होती है।

- पीठ सीधा तथा सर एवं कंधे के लाईन में होता है।
- सींग छोटे एवं अन्दर की ओर झुके हुए तथा नथुने बड़े एवं काले होते हैं।
- रंग हल्का लाल, लाल पर सफेद धब्बे और कभी–कभी बादामी रंग का भी होता है
- जर्सी गाय के दूध में 5.3 प्रतिशत वसा पाया जाता है।
- औसतन दुग्ध उत्पादन 5000 – 6000 लीटर प्रति ब्यांत होता है तथा प्रतिदिन 30 से 50 लीटर दूध होता है।
- अपने देश की देशी गायों को जर्सी के वीर्य से प्रजनन कराके देशी गायों से ढाई गुना तक दूध बढ़ाया जा सकता है।
- गाय 25 – 30 माह की आयु में पहली बार बच्चा देती है।

3. ब्राउन स्विस

प्राप्ति स्थान – मूल स्थान यूरोप का स्विट्जरलैण्ड, इटली, फ्रांस एवं जर्मनी है।

शारीरिक रचना – नाक, सींग तथा पूँछ का गुच्छा काले रंग का होता है।

- सींग छोटे और आगे की ओर मुड़े हुए होते हैं।
- इनका रंग हल्का भूरा से लेकर काला तक होता है।
- यह जाति कठिन परिस्थितियों में भी पाली जाने वाली होती हैं।

भैंस पालन

जहाँ तक हमारे देश की मुर्रा तथा भदावरी नस्लों का प्रश्न है देश के आर्थिक परिवेश में इनकी उपयोगिता एक वरदान के समान है। भारत वर्ष में लगभग 9 करोड़ महिषवंशीय पशु पाले जाते हैं। भैंस का दूध गाय के दूध की अपेक्षाकृत कम मीठा, अधिक गाढ़ा तथा चिकनाईदार होता है। भैंस प्रायः दूध तथा घी के लिए पाली जाती हैं। नर भैंसे बोझा ढ़ोने के काम आते हैं। इनका स्वभाव सीधा होता है।

इनका विवरण निम्नवत है :

मुर्रा	भदावरी
मड़ा	जाफराबादी
नीली और रावी	

मुर्रा भैंस

प्राप्ति स्थान : हरियाणा राज्य के रोहतक, हिसार, करनाल तथा गुड़गाँव, दिल्ली, उत्तर प्रदेश के पश्चिमी क्षेत्र तथा पंजाब में इस नस्ल के पशु लगभग सभी जनपदों में पाये जाते हैं।

शारीरिक रचना : छल्लेदार, मुड़े एवं छोटे सींग, लम्बी पूँछ, बड़ा शरीर, विकसित अयन, चौड़े नितम्ब (हिप्स), ढलावा पुटठे तथा अधिक दूध उत्पादन करना आदि इस नस्ल की प्रमुख विशेषताएं हैं। नर साँड़ का भार लगभग 565 किग्रा. तथा मादा भैंस का भार लगभग 430 किग्रा. का होता है। नर पशु की ऊँचाई 1.5 मीटर तथा छतघेरा (गर्थ) 2.3 मीटर होता है। मादा भैंस की ऊँचाई, लम्बाई तथा छताघेरा क्रमशः 1.4, 1.5 तथा 2.2 मीटर की होती है। इस भैंस का औसत दैनिक दुग्ध उत्पादन 6–7 लीटर तथा चिकनाई (वसा) 6.5 से 8 प्रतिशत तक पायी जाती है। 300 दिन के ब्याँत में इनका औसत दुग्ध उत्पादन 1500 से 2000 लीटर होता है। इस नस्ल की भैंस का उच्चतम दैनिक दुग्ध उत्पादन 18–20 लीटर तथा उच्चतम ब्याँत का औसत दुग्ध उत्पादन 4000–4500 लीटर तक का देखा गया है।

भदावरी

प्राप्ति स्थान – उत्तर प्रदेश के इटावा व आगरा जनपद तथा मध्य भारत के कई स्थानों पर इसकी असली नस्ल देखी गयी है। मध्य प्रदेश के ग्वालियर जिले में भी भदावरी नस्ल की शुद्ध भैंसे प्रचुर संख्या में देखने को मिलती है।

शरीरिक रचना – इनका मध्यम आकार, छोटा शरीर, त्रिकोणीय आकार का छोटा सिर, छोटी तथा मजबूत टांगे, खुर काले, तलवार के आकार के चपटे तथा लम्बे सींग, काली व सफेद गुच्छेदार पूँछ, रंग तावे जैसा, सिर पर लाली लिए हुए बादामी रंग के छोटे–छोटे तथा कम संख्या में बाल, अयन पर उभरी हुई दुग्ध शिरायें, आदि इस नस्ल की प्रमुख विशेषतायें हैं। अधिकांश पशुओं के गले पर दो सफेद धारियाँ होती हैं जिन्हें गाँव के किसान जनेऊ की संज्ञा देते हैं। गाँवों में इस नस्ल की पहचान में इस जनेऊ को बहुत महत्व दिया जाता है।

इस नस्ल की भैंस का औसत दुग्ध उत्पादन 5 लीटर दैनिक का होता है। इसके दूध में चिकनाई (वसा) 7 से 10 प्रतिशत तक पाई जाती है। अंग्रेज इस जाति की भैंसों के दूध को क्रीम कहा करते थे। इस नस्ल की भैंस के दूध में अधिकतम 13 प्रतिशत तक वसा देखी जाती है। अतः घी उत्पादन की दृष्टि से भदावरी भैंस सबसे उत्तम नस्ल है।

मड़ा

प्राप्ति स्थान – इस नस्ल का मुख्य स्थान पंजाब और दिल्ली है, पर उत्तर प्रदेश, राजस्थान तथा अन्य स्थानों में भी इनका शुद्ध प्रजनन होता है। रोहतक (हरियाणा) मशहूर मंडी है, जहाँ से अधिक दूधवाली हजारों भैंसे बाहर जाती हैं।

शारीरिक रचना – गहरा ठोस ढाँचा, छोटी चौड़ी पीठ और कुछ हल्की गरदन और सिर। इसके सींग छोटे, खास ढंग से मुड़े हुए, ऊध बड़ा, और पूँछ लम्बी होती है जिसका सफेद बालपुंज टखनों तक पहुँचता है। छोटे ठोस पैर, मजबूत हड्डी, चौड़े खुर और लटकता हुआ धड़। आम रंग करला (जेट ब्लैक) है। पूँछ, चेहरे और पैरों पर सफेद निशान होते हैं। खाल नरम और चिकनी, जिस पर बाल बहुत थोड़े होते हैं।

उत्पादन

सिद्ध यूथों में दूध की औसत क्षमता 9 से 10 महीने के प्रस्रवण में 1800 लीटर दूध की है।

टिप्पणी

यह नस्ल न केवल भारत में, बल्कि संभवतः सारे संसार में सबसे दक्ष दूध–उत्पादक नस्ल है। इस नस्ल के भैंसे घटिया पशुओं के क्रमोन्नतीकरण (अपग्रेडिंग) के लिये बहुत जगह काम लाये जाते हैं। अधिकतर बड़े शहरों में भैंसे और घी के लिये पाली जाती हैं।

जाफराबादी

प्राप्ति स्थान – इन ढोरों का शुद्धतम रूप काठियावाड़ के गीर वन में दिखायी देता है, जहाँ इनका प्रायः सिर्फ घी उत्पादन के लिये प्रजनन किया जाता है।

शारीरिक रचना – इनकी ध्यान खींचने वाली विशेषता इनका बहुत बड़ा ललाट और सींग है जो गरदन के दोनों ओर लटक कर फिर सिरों पर ऊपर को मुड़ जाते हैं, पर यह मोड़ वैसा तीखा नहीं होता जैसा मड़ा भैंसों में। देह उनसे लम्बी होती है पर उतनी ठोस नहीं होती। गलकम्बल और ऊध बड़े होते हैं। भैंसे कुछ ढीली–ढाली होती हैं। इस नस्ल के ढोरों का रंग आम तौर पर काला होता है।

नीली और रावी

प्राप्ति स्थान – नीली और रावी प्रारूप की भैंसें मोन्टगोमरी और फीरोजपुर में पायी जाती है। इन दोनों प्रारूपों में कोई सारभूत अन्तर नहीं है, यद्यपि बहुत समय तक इन्हें अलग–अलग नस्ल माना जाता रहा, लेकिन बारीकी से अध्ययन करने पर पता चला कि इनमें कोई अन्तर नहीं है और अब इन्हें, अधिकृत रूप से, एक नस्ल माना जाता है। सबसे बढ़िया ढोर सतलुज नदी के साथ–साथ नदीय क्षेत्र में, पाकपट्टम तहसील के दक्षिण–पश्चिम में, और मुलतान जिले की मैलसी तहसील और बहावलपुर रियासत में पाये जाते हैं।

शारीरिक रचना – ये ढोर मझले साइज के होते हैं। ढांचा गहरा, सिर लम्बूतरा, खुरदरा और भारी, ऊपर का हिस्सा उभरा हुआ, आँखों के बीच में दबा हुआ, और सुन्दर थूथन। सींग छोटे होते हैं पर ऊँची कुण्डली होती है। गरदन लम्बी, पतली और सुन्दर होती है। इस नस्ल का मड़ा नस्ल से अन्तर मुख्यतः चेहरे और ललाट से होता है। प्रारूपी (टिपिकल) नीली और रावी भैंस का ऊध बड़ा होता है। इसकी पूँछ लम्बी और जमीन को लगभग छूती हुई होती है। रंग काला पर बहुत बार भूरा भी होता है। कभी–कभी ऊध और अधरवक्ष (ब्रिसकेट) पर गुलाबी

निशान होते हैं। ललाट, चेहरे, थूथन और टाँगों पर सफेद निशान होते हैं। बालपुंज सफेद होता है और सफेद सी आँखें (वाल आई) होती हैं जिन्हें प्रजननकर्ता बहुत पसन्द करते हैं।

उत्पादन

भैंसे दूध अधिक देती हैं। एक प्रस्रवण की पैदावार 1575 लीटर दूध की है। भैंसे भार ढोने के काम आते हैं।

टिप्पणी

यह नस्ल भारत की भैंसों की सबसे अच्छी नस्लों में से है, और इससे बढ़िया नस्ल सिर्फ मड़ा है। इस नस्ल के ढोर बड़ी–संख्या में देश के बड़े शहरों में भेजे जाते हैं।

पोषण

1. जल

गाय–भैंसो को जीवन निर्वाह के लिए लगभग 28 लीटर पानी की प्रति दिन आवश्यकता होती है।

- दुग्ध उत्पादन के लिए प्रति 1 लीटर दूध के लिए 3 से 4 लीटर पानी की आवश्यकता होती है।
- 1 किग्रा भूंसा तथा चारा खाने के लिए गाय–भैंस को 4 लीटर पानी की जरूरत होती है।
- सभी भोज्य पदार्थों में कुछ न कुछ जल की मात्रा अवश्य रहती है जिसे ग्रहण करने पर जल शरीर को मिल जाता है।

जैसे – चारा — जल की मात्रा

चारा		जल की मात्रा
हरी घास में	–	75 प्रतिशत
साइलेज में	–	70 प्रतिशत
पुआल में	–	15.18 प्रतिशत
भूसा में	–	10 प्रतिशत
खल्ली, दाने में	–	10 प्रतिशत

- जल शरीर का आवश्यक भाग है, पशु बिना भोजन कई दिन जिंदा रह सकता है परन्तु शरीर में 15 से 20 प्रतिशत जल के अभाव में पशु मर जाता है।

2. प्रोटीन

- प्रोटीन पशु शरीर का लगभग 17–20 प्रतिशत महत्वपूर्ण भाग है।
- प्रोटीन शरीर की बढ़ोतरी व विकास मे सहायक होता है।
- अण्डा उत्पादन तथा भ्रूण विकास के लिए आवश्यक है।
- दूध, बाल, त्वचा, खुर तथा सींग आदि को बनाने में सहायक होता है।

3. वसा

- वसा या चर्बी शरीर में शक्ति प्रदान करता है।

- कैल्सियम का शरीर द्वारा शोषण कराने के लिए सहायक होता है।
- वसा घुलनशील विटामिन्स जैसे A, D, E को शरीर में पहुँचाने में सहायक होता है।
- शरीर का लगभग 20 प्रतिशत भाग वसा ही रहता है।

4. कार्बोहाइड्रेट

- कार्बोहाइड्रेट से दूध में मीठापन आता है।
- पेट के अन्दर पाये जाने वाले जीवाणु की बढ़ोतरी व विकास के लिए भी कार्बोहाइड्रेट आवश्यक होता है।
- कार्बोहाइड्रेट कैल्सियम तथा फास्फोरस के अवशोषण में सहायक होता है।
- इनसे आवश्यक साल्ट्स प्राप्त होते हैं।
- भोज्य पदार्थों को पचाने में तथा अवशोषण में सहायक होता है।
- दांत, हड्डियों व माँस पेशियों को बनाने में सहायक।
- रक्त की लाल कोशिकाओं में हेमोग्लोबीन बनाने में सहायक है।
- रक्त को थक्का बनाने में सहायक होता है।
- रक्त में ऑक्सीजन शोषण की क्षमता को बढ़ाने में सहायक होता है।

विटामिन्स

- शरीर की वृद्धि तथा पाचन क्रियाओं में सहायक होते हैं।
- शरीर को रोग से बचाने में क्षमता प्रदान करते हैं।
- मादा पशुओं में गर्भावस्था में भ्रूण के विकास में सहायक होते हैं।

पशु खाद्य पदार्थों में पोषक तत्वों की मात्रा

खाद्य पदार्थ	*प्रोटीन* %	*वसा* %	*कार्बोहाइड्रेट* %	*खनिज* %	*जल* %
भूसा तथा पुआल	1.0	1–3	20.30	6–6.5	10
हरा घास	13–15	1–3	20–30	1.2–2.5	75
खल्ली	30–45	5–7	25–30	5–6.5	10
चना, मटर तथा अनाज के चुर्रे	16–30	10–20	40–60	1.5–4.5	10
मूंगफली, तिल	30–45	17–35	25–50	5–6.5	10

पशुओं के आहार तैयार करने से पहले ध्यान रखने योग्य कुछ मुख्य बातें :-

- आहार में सभी पोषक तत्व उचित मात्रा में होने चाहिए।
- आहार होने के साथ पशु को सन्तुष्टि प्रदान करने वाला भी होना चाहिए।
- थोड़ा भारीपन (स्थूल) भी होना चाहिए।

- आहार संतुलित हो लकिन विषैला नहीं होना चाहिए।
- सस्ता, ताजा तथा पर्याप्त मात्रा में प्रोटीन युक्त होना चाहिए।
- उचित समय अन्तराल पर दिन में केवल दो बार आहार देना चाहिए ताकि पाचन क्रिया ठीक रहे।
- हरे चारे को सालों भर देने का प्रयास करना चाहिए।
- पुआल को भींगा कर ही देना चाहिए इसके अलावे दाना को हमेशा पानी में फुलाकर ही खिलाना चाहिए जिससे उसकी पौष्टिकता बढ़ जाती है।
- बछड़े, गाय, गर्भवती गाय, भार वहन करने वाले बैल, सांड़, सुखी गर्भवती गाय तथा बढ़ने वाले पशुओं को दिए जाने वाले आहार अलग–अलग प्रकार के होते हैं।

आहार के प्रकार

भोजन – पशुओं के लिए यह कई भोज्य पदार्थों से मिलकर बनता है।

खुराक – भोजन की वह मात्रा जो कि एक समय में पशुओं की भूख को मिटाने के लिए दिया जाता है।

आहार – उसे कहते हैं जो आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए 24 घंटे में चारा–दाना के रूप में खिलाया जाता है।

संतुलित आहार : आहार की वह मात्रा होती है जिसे सारी आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर तैयार किया जाता है।

जीवन निर्वाह के लिए आहार – यह वह आहार होता है जिसे दूध देने वाली पशु, विसुखी पशु, खेतों में काम करने वाले पशु, प्रजनन के लिए रखे गये पशु, बच्चे तथा वयस्क पशु सभी को एक समान मात्रा में ही दी जाती है। यह आहार पशु को जीवित रहने या जीवन निर्वाह के लिए आवश्यक होते हैं।

उत्पादन आहार – यह वह आहार है जो पशु के उत्पादन क हिसाब से घटते–बढ़ते रहते हैं। यह आहार कई प्रकार से तैयार किया जाता है। इसकी मात्रा दुग्ध की मात्रा पर निर्भर करती है।

पशुओं को दिए जाने वाले आहार देने के तरीके :

- आहार में हरा चारा, भूसा, दाना तथा खनिज लवणों को पर्याप्त मात्रा में मिलाकर ही देना चाहिए।
- कुल भोजन का 75 प्रतिशत हिस्सा (सूखा एवं हरा) चारा तथा 25 प्रतिशत भाग दाने के रूप में पूरा किया जाता है।
- खनिज लवणों की पूर्ति के लिए वयस्क पशुओं को 30–60 ग्राम नमक प्रतिदिन के हिसाब से दिया जाना चाहिए।
- सांड (जिसको प्रजनन के लिए रखा जाता है) उसको 20–30 प्रतिशत ज्यादा आहार उसके प्रजनन के लिए दिए जाता है।
- पशुओं को खालीपेट में हरा चारा ज्यादा मात्रा में नहीं खिलाना चाहिए अथवा गैस के साथ पतला पखाना होने लगता है।
- पशुओं को जीवन निर्वाह तथा उत्पादन के लिए प्रतिदिन 25–28 लीटर तक पानी की जरूरत होती है। यह जरूरत दूध के अनुपात में घटता–बढ़ता है।
- पशुओं को आहार शारीरिक वजन के दशवें भाग तक दिया जाता है।

खाद्य पदार्थों में उपस्थित शुष्क पदार्थों की गणना :

एक 500 किलो वजन वाली 9 लीटर दूध देने वाली गाय के संतुलित आहार की गणना करते हैं। जिसको भोजन के तौर पर हरी ज्वार, लोबिया, सरसों की खल्ली, भूसी और चना का छिलका देना है।

सबसे पहले हम शुष्कता जो कि भोजन के रूप में देना है उसकी मात्रा निकालते हैं।

100 किलो वजन के लिए शुष्क पदार्थ दिया जाता है 2.5 किलो

500 किलो वजन के लिए शुष्क पदार्थ $\frac{2.5 \times 500}{100}$

यह 12.5 किलो शुष्क पदार्थ 500 किलो वजन की गाय के लिए देना है जिसकी पूर्ति हम हरे चारों, भूसा, खल्ली तथा अनाज के टुकड़ों से करेंगे।

दाने की मात्रा की गणना

1. जीवन निर्वाह के लिए दाना 1 किलो
2. प्रति 3 किलो दूध के लिए दाना 1 किलो
   9 किलो दूध के लिए दाना देंगे 9/3 = 3 किलो
3. इस प्रकार कुल दाने की मात्रा हुई 3 + 1 = 4 किलो
   अब दाने के रूप में शुष्क पदार्थ की प्राप्ति का

   प्रतिशत $\frac{70 \times 4}{90}$ = 3.6 किलो

   बचे हुए शुष्क पदार्थ की मात्रा जो चारों से पूरी करनी है

   12.5 किलो–3.6 किलो = 8.9 किलो

   चारा (हरा चारा + भूसा + लोबिया)

(क) भूसा (जिसमें 10 प्रतिशत पानी तथा 90 प्रतिशत शुष्क पदार्थ मौजूद रहता है) की मात्रा $\frac{100 \times 3}{90}$ = 3.3 किलो

(ख) हरी ज्वार (पानी 75 प्रतिशत शुष्कता 25 प्रतिशत) की मात्रा $\frac{100 \times 3}{30}$ = 10 किलो

(ग) लोबिया (पानी 75 प्रतिशत शुष्कता 25 प्रतिशत) की मात्रा $\frac{100 \times 3}{25}$ = 12 किलो

दाना के तौर पर खल्ली	40 प्रतिशत
भूसा	30 प्रतिशत
अनाज का टुकड़ा	30 प्रतिशत

खल्ली दिया जाएगा	$\frac{110 \times 4}{100}$	= 1.2 किलो
भूसा	$\frac{70 \times 4}{100}$	= 1.2 किलो
अनाज के टुकड़े तथा चने का छिलका	$\frac{30 \times 4}{100}$	= 1.2 किलो

इसके अलावे पशुओं को 50 ग्राम नमक तथा 60 ग्राम मिनरल मिक्सचर प्रति हिसाब से देना चाहिए।

इस प्रकार 500 किलो वजन की गाय के लिए जो आहार तैयार होगा उसकी मात्रा कुछ इस प्रकार से होगी।

चारे के तौर पर	भूंसा	=	3.3 किलो
	हरी घास	=	10 किलो
	लोबिया	=	12 किलो
दाना के तौर पर सरसों की खल्ली			1.6 किलो
	अनाज का टुकड़ा		1.2 किलो
	चने का टुकड़ा छिलका		1.2 किलो
लवण की पूर्ति के लिए – नमक –			50 ग्राम
मिनरल मिक्सचर –			60 ग्राम

भोजन के अलावे दिन में 3–4 बार पानी पिलाना चाहिए।

खाद्य पदार्थों में मौजूद शुष्क पदार्थ की मात्रा (प्रतिशत में)

गेहूँ का भूंसा	90%
पुआल की कुट्टी	90%
ज्वार की चरी	30%
चने का चोकर	90%
गेहूँ का चोकर	90%
मूंगफली की खल्ली	90%
सरसों की खल्ली	90%
जौ का दाना	90%
हरा चारा	
बरसीम (दिसम्बर–फरवरी)	20%
जई का हरा चारा (जनवरी)	20%

जई का हरा चारा (फरवरी मार्च)	30%
ज्वार, मक्का (हरा चारा)	25%
लोबिया, मटर, सरसो (हरा चारा)	25%
बरसीम (मार्च से मई)	25%

साईलेज बनाने की विधि

1. साईलेज को साइलो गढ्डा (पीट) में बनाया जाता है जो कि 6 मीटर ऊँचा x 3 मीटर व्यास का होता है या 9 मीटर ऊँचा x 6 मीटर व्यास का होता है।
2. फसल को फूल आने की अवस्था में काट लिया जाता है।
3. फसल को सुबह काटकर सारे दिन खेत में छोड़ दिया जाता है। इस प्रकार पौधों की नमी कुछ कम हो जाती है।
4. अब साईलो गड्डा को नीचे तथा चारों तरफ से गोबर से लीप लिया जाता है।
5. गड्डे में नीचे कुछ सूखा घास या 'हे' बिछा देते हैं उसके ऊपर काटे हुये फसल को गड्डों में खूब दबाकर रखा जाता है ताकि बीच–बीच में हवा नहीं रह जाए। इस प्रकार चारों (कटे हुये) को जमीन की उपरी सतह से 1–2 फुट ऊँचा तक भरना चाहिए। धीरे–धीरे दबाने के उपरान्त चारा नीचे दबता जाता है और जमीन की सतह तक दब जाता है।
6. जमीन की सतह पर आने के बाद उसके ऊपर कुछ घास (सूखा हुआ) डालकर इसे फिर मिट्टी से लीप कर बन्द कर दिया जाता है।
7. 50–60 दिनों तक गड्डे में बंद रहने के बाद यह चारा पशुओं को खिलाने के लिये तैयार रहता है हालांकि इसका रंग देखने में हरे चारे से अलग दिखता है इसी को साइलेज कहते हैं।
8. पशुओं को साईलेज खिलाने के लिये सिर्फ एक तरफ गड्डा खोलकर रोजाना उसी तरफ से निकालकर खिलाना चाहिए।

हे बनाने की विधि

1. घासों को इतना सूखाया जाता है कि उसकी नमी इतनी कम हो जाये कि पादप कोशिकाओं की श्वसन क्रिया बन्द हो जाए तथा जीवाणु और रासयनिक क्रिया बन्द हो जाए और इसकी गंध तथा पोषकता में कोई कमी नहीं आ पाए।
2. 'हे' बनाने के लिये चारों को तथा घासों को दीवार के ऊपर फैलाकर सूखाया जाता है। बीच–बीच में इन घासों को एवं चारों को पलटते रहना होता है। इन चारों को खेत में भी मोटी–मोटी (25–30 से मीटर) परतों में छोटे–छोटे ढेरों में फैलाकर धूप में सूखाते हैं। जब पत्तियाँ सूखकर कुरकुरी हो जाएं तब इसको इकठ्ठा करके किसी ऐसी जगह पर रखा जाता है जहाँ पर और धूप का सम्पर्क नहीं हो सके।
3. **'हे' के लिए पौधों का चुनाव :** 'हे' बनाने के लिये फलीदार फसलों में लोबिया, काऊ पी, बरसीम, लूसर्न, मटर, सोयाबीन बिना फलीदार फसलों में नेपियर, सूडान, ज्वार, जौ, जई, बाजरा, मक्का है।

   मिश्रित 'हे' भी बनाया जाता है जैसे सोयाबीन–सूडान, मटर, जई, ज्वार लोबिया, जौ–रिजका इत्यादि।

पशुओं के प्रमुख रोग, चिकित्सा एवं बचाव

रोगी एवं स्वस्थ पशुओं की पहचान

गुण	स्वस्थ पशु	रोगी पशु
सामान्य प्रकृति	चौकन्ना	सुस्त
पागुर	सामान्य	असामान्य
व्यवहार	सामान्य	असामान्य
अभिव्यक्ति	सामान्य	असामान्य
शरीर की स्थिति	शरीर में चमक, चमड़ा मुलायम, रोएं में चीकनापन तथा चमक	चमड़े रूखड़े, शरीर से चमक गायब रोएं खड़े और चमक गायब
सांस	साधारण गति से (10–30 प्रति मिनट)	तेज गति से
बैठने तथा खड़े रहने की स्थिति	सामान्य	असामान्य
म्यूकस मेम्ब्रेन	गुलाबी लिए हुए हल्का लाल	पीला या गाढ़े लाल रंग का
थूथून	ठंडा तथा भींगा हुआ	सूखा तथा गर्म
आंख	चौकन्ना	आंख धंसी हुई
पैखाना	सामान्य	दस्त, कब्ज, कुट्टी मिला हुआ, बदबूदार
पेशाब	रंग सामान्य	लाल, पीला, रूक–रूक कर
तापमान	101–102^{0}F	असामान्य
नाड़ी की गति	50–70 प्रति मिनट	असामान्य
रूमेन की गति	रूमेन की गति–5 मिनट में 3 बार (सामान्य)	असामान्य

प्राथमिक उपचार

पशुओं में प्रायः किसी न किसी तरह से दुर्घटनाएं होती रहती हैं। जैसे किसी तेज औजार से या हल से कट जाना, आग में जल जाना, चमड़े पर खरोंच लग जाना, घाव में (पुराने घाव) कीड़े पर जाना, वाहन से धक्का लगने से सींग टुटना, हड्डी टुटना, बराबर हल रखने से कंधा पकना, थन कटना इत्यादि।

इन सभी परिस्थितियों में त्वरित कार्रवाई करते हुए कैसे उपचार किया जाए? क्योंकि ज्यादातर समय दवाईयों की कमी रहती है या दवायें नहीं रहती है। इसलिए उस वक्त उपलब्ध दवाओं से किए गए उपचार को प्राथमिक उपचार की संज्ञा दी गई है।

(क) **मुँह में छाले पड़ना** – जब पशु बार–बार जीभ बाहर भीतर करे, मसूढ़े लाल दिखने लगे मुँह से लार आने लगे और जीभ पर छाले दिखने लगे।

चिकित्सा

1. सुहागा के चूर्ण को पानी में घोल बनाकर छिड़काव करना चाहिए या फिर पोटाश को ठंडे पानी में मिलाकर मुँह की सफाई करनी चाहिए।
2. ग्लिसरीन और बोरिक एसिड का पेस्ट बनाकर जीभ के ऊपर छालों पर लगानी चाहिए।

3. मुँह को खोल कर मुँह के अन्दर तथा जीभ पर मक्खन लगाने से आराम महसूस होता है। उपर लिखे सारे उपचार को दिन में तीन से चार बार परिस्थिति के अनुरूप दोहराते रहना चाहिए।

(ख) **थन कटना** – किसी नुकीली वस्तु से थन या छीमी कटने पर, बछड़े की दांत लग जाने पर, ठंडे के मौसम में थन तथा छेनी से चमड़ा फट कर निकलने पर

चिकित्सा

1. थन कटने पर सबसे पहले उसे साफ पानी से धोकर उसके उपर एन्टीसेप्टीक क्रीम का उपयोग करना चाहिए। अगर क्रीम नहीं हो तो पोटाश के पानी से धोकर फिटकीरी पीस कर लगाना चाहिए।
2. जाड़े के मौसम में दूध दूहने के पहले थन को गर्म पानी से धोना चाहिए और दूहने के उपरान्त नारियल तेल या सरसों तेल का लेप लगाना चाहिए।

(ग) **घाव में कीड़े पड़ना** – पशु शरीर में जहाँ पर भी कट–छट जाता है और वहाँ मक्खी बैठने लगता है वहाँ पर चावल के दाने के समान कीड़े आ जाते हैं और ये कीड़े घाव को भीतर की तरफ बढ़ाते हैं तथा खून की कमी से मौत हो जाती है। इन कीड़ों का पता बाहर से नहीं लग पाता है। इस कीड़े को ''मैगोट'' कहते हैं।

चिकित्सा

1. सबसे पहले घाव के आस पास बालों को काट कर साफ किया जाता है फिर जहाँ तक हो सके कीड़े को निकाल कर किरोसिन तेल में डुबो कर मार देना चाहिए।
2. घाव को साफ करने के बाद उसमें तारपीन का तेल भिंगोया हुआ कपड़ा घाव के अन्दर तक प्रवेश कराकर 8–12 घंटे पट्टी बांधकर छोड़ देना चाहिए।
3. जब तक सारे कीड़े नहीं मर जाते घाव ठीक नहीं होता है।

(घ) **सांप काटने पर** – जब सांप काट ले तब काटे हुए जगह से 3 इंच ऊपर और नीचे बांध देना चाहिए। काटे हुए स्थान पर ब्लेड से चीरा लगाकर थोड़ा खून निकाल देना चाहिए तथा घाव में पोटाश का पाउडर भर देना चाहिए।

चिकित्सा

यह करने के बाद एन्टी स्नेक भेनम जल्द से जल्द त्वचा के नीचे लगाना चाहिए।

(च) **आंख आना** – जब आंख लाल हो जाए, पानी आने लगे, कीचड़ आने लगे और आंख फूल जाए।

चिकित्सा

1. बोरिक एसिड को गुनगुने पानी में मिलाकर धोना चाहिए। इससे अच्छी तरह से साफ करने के बाद सोफ्रामाईसिन लोशन आंख में 5–5 बूंद करके दोनों आंखों में देना चाहिए।
2. लोकुला आई ड्रॉप दिया जाता है।
3. मरक्योरोक्रोम (2 प्रतिशत) लोशन आंखों में दिया जाता है।

(छ) **कान बहना** – कान अनेक कारणों से बह सकता है जैसे चोट लगना, फफूंदी से, पानी के साथ छोटे कीड़े घुस जाने से। जिससे मवाद आने लगता है तथा कान के पास मखियां भिनभिनाने लगती है।

चिकित्सा

1. पोटाश के गुनगुने पानी से कान को अन्दर तथा बाहर साफ किया जाता है।
2. मरक्यूरोक्रोम लोशन दोनों कानों में दिया जाता है।

(ज) **आग से जलना** – कभी–कभी आग से जानवर जल जाते हैं और फफोले पड़ जाते हैं।

चिकित्सा

1. सबसे पहले जले हुए भाग को साफ और ठंडे पानी से कुछ देर तक धोते रहना चाहिए।
2. अगर फफोला फट कर घाव बन गया हो तो उस जगह पर सोफ्रामाइसिन, बरनौल, सल्फानिलोमाइड पाउडर लगाना चाहिए।

(झ) **सींग टूटना** – कभी–कभी जानवरों के बीच लड़ाई होती है या वाहन के ठोकर से सींग टुट जाता है और खून का फबाड़ा बहने लगता है।

चिकित्सा

1. खून निकलने वाली जगह को साफ कपड़े से जोर से दबाकर करीब 10–20 मिनट तक रखना चाहिए।
2. टिन्चर बेन्जोईन को कपड़े में भींगा कर पट्टी बांधकर दबाकर रखना होता है। खून नहीं बंद होने वाली जगह पर रख कर दबाना चाहिए।

(ट) **कंधा पकना** – बैलों के कंधे पर जुआर रखने से कन्धों में सूजन आ जाता है इस सूजन में दर्द भी रहता है धीरे–धीरे यह घाव मवाद से भर जाता है।

चिकित्सा

1. सबसे पहले बैल को आराम देना चाहिए।
2. सूजन को मैगनिशियम सल्फेट को गुनगुने पानी में मिला कर कपड़े की पट्टी से सिंकाई की जाती है।
3. उस जगह पर पोटाशियम आयोडायड का मलहम लगाया जाता है। जिसे हम लाल मलहम के नाम से जानते हैं।
4. अगर घाव पक जाए तो उसमें चीरा लगाकर घाव को मैगसल्फ मिले पानी से साफ करना चाहिए।

(ठ) **दाद या खुजली** – जानवर दीवार में शरीर को रगड़ता है, खुजली की जगह पर चमड़ी मोटी हो जाती है। बाल गिर जाता है तथा सारे जगह पर खून के धब्बे दिखलाई पड़ने लगते हैं।

चिकित्सा

1. सबसे पहले उस जगह को नमक और गर्म पानी से साफ करना चाहिए।
2. उसके बाद नीम की पत्ती को खौला कर उस पानी से, धोना चाहिए।
3. उस जगह पर करंज तेल और कपूर का पेस्ट बनाकर लगाना चाहिए।

4. इन सबके साथ–साथ आइभरमैक्टीन की सूई चमड़ी में 8–10 मि.ली. करके तीन बार में देना चाहिए। पहली सूई और दूसरी सूई के बीच 14 दिन का अन्तर होना चाहिए और तीसरी सूई की पहले सूई से 35 दिन की अंतर होनी चाहिए।

(ड) **पेट फूलना** – गाय भैंस जब अधिक मात्रा में बरसीम, लोबिया, लूसर्न या अनाज खा लेते हैं। तब उनका पेट काफी फुल जाता है और जानवर बेचैन हो जाते हैं, कभी–कभी जानवर मर भी जाते हैं।

चिकित्सा

1. जानवर को सादा पानी पिलाना बिल्कुल बंद कर देना चाहिए।
2. उसके बाद काला नमक 100 ग्राम हींग 30 ग्राम तारपीन तेल 100 मि.ली. ब्लोटीनॉक्स 100 मि.ली. मिलाकर पिलाना चाहिए।

(ढ) **हड्डी की चोट** – कभी–कभी जानवर को वाहन दुर्घटना की वजह से पैरों में या शरीर के किसी अन्य भाग में चोट आ जाती है। चोट के कारण जानवर चलने में असमर्थ और दर्द से कराहने लगता है।

चिकित्सा

1. चोट लगे स्थान को ठण्डे पानी या हो सके तो बर्फ से सेंकना चाहिए।
2. जानवर को एक ही स्थान पर स्थिर रखकर बांस की बत्ती में रूई का गत्ता बना कर चारों तरफ से कड़ाई से बांध देना चाहिए। इसके बाद चिकित्सक से सलाह लेना चाहिए।

(त) **घाव** – चमड़ी कटना, खून बहना।

चिकित्सा

1. सबसे पहले खून बंद करने का उपाय करना चाहिए।
2. घाव को साफ करने के उपरांत टिंक्चर बेन्जोईन की पट्टी बांधनी चाहिए।
3. सुहागा का चुर्ण लगाकर बांध देना चाहिए।
4. पोटाश के घोल से साफ करते रहना चाहिए।

प्रजनन संबंधी प्रबंधन

गाय एवं भैसों में मदकाल के लक्षण

1. रंभाना एवं चारा खाना कम कर देना।
2. योनी द्वार पर लालिमा एवं सूजन।
3. योनी द्वार से पारदर्शी लसलसा स्त्राव का निकलना।
4. थोड़े–थोड़े समय पर पेशाब करना।
5. दूसरे पशुओं पर चढ़ना या उन्हें चढ़ने देना।

संकर गाय से लाभ

1. यह लगभग 18–20 महीना में व्यस्क हो जाती है।

2. आहार को दूध में बदलने की क्षमता देशी गाय से अधिक
3. यह लगभग 14–15 महीना के अन्तराल पर बच्चा देती है।
4. यह लगभग 8–10 लीटर दूध प्रतिदिन देती है।
5. शुष्क काल देशी गाय से कम।
6. संकर बैल देशी बैल से ज्यादा मजबूत।
7. विदेशी गाय जो 20–25 लीटर दूध देती है उसका वसा प्रतिशत कम रहता है वहीं संकर नस्ल की गाय 8–10 लीटर दूध के उपरांत भी वसा प्रतिशत अधिक होने के कारण बाजार मूल्य अच्छा होता है।
8. देशी वातावरण में विदेशी गाय से अधिक उपयोगी।

अच्छी गाय का मुल्यांकन

अच्छी गाय का मूल्यांकन करते समय निम्नलिखित बिन्दुओं की ध्यान रखनी चाहिए।

क) गाय की उत्पादन क्षमता एवं दूध में वसा का प्रतिशत

ख) गाय/भैंस में नियमित बच्चा देने की प्रवृति

ग) अपने गुणों को अपनी संतान में प्रेषित करने की क्षमता एवं स्वाभाव में सरलता।

हालाँकि हमारे यहाँ झारखंड में पशु की वंशावली एवं उसके उत्पादन का रिकार्ड नहीं रखा जाता है। इसलिए पशुओं का चुनाव करते समय निम्न बातों का ध्यान अवश्य रखें।

1. पशु का तिकोना रूप अर्थात आगे का मुख संकरा एवं पीछे की ओर चौड़ी होनी चाहिए।
2. गाय का अयन एवं सतन सुव्यवस्थित तथा विकसित होनी चाहिए।

क) **पशु का तिकोना रूप** : गाय का तीनों पच्चड़ो का मिलना उसके दूधारूपन का लक्षण माना जाता है। गाय के तीनों पच्चड़ जितने स्पष्ट होंगे, गाय उतनी ही दूधारू होगी।

1. सामने का पच्चड़ – अगले दोनों पैरों के मध्य सबसे अधिक चौड़ा एवं कुकुंद के पास कम चौड़ा होना।
2. बगल का पच्चड़ – पिछले पैरों के पास सबसे अधिक चौड़ा एवं गले के पास कम चौड़ा
3. पीछे का पच्चड़ – पुट्ठों के पास सबसे अधिक चौड़ा एवं कुकुंद के पास कम चौड़ा होना चाहिए।

ख) **अयन :** एक अच्छी दूधारू गाय का अयन आकार में बड़ा, लचीला एवं गाँठ रहित होनी चाहिए। यह बहुत अधिक फुला नहीं होना चाहिए। यह पिछली टाँगों के मध्य में काफी ऊँचाई से जुड़ा होना चाहिए।

पशु को आहार देने के कुछ मूल नियमः

1. पशु का आहार संतुलित एवं नियमित हो। उसे दिन में दो बार 8–10 घंटे के अंतराल पर चारा पानी देनी चाहिए। इससे पाचन क्रिया ठीक रहती है एवं बीच में जुगाली करने का समय भी मिल जाता है।
2. पशु का आहार सस्ता, साफ, स्वादिष्ट एवं पाचक हो।

3. चारे में 1/3 भाग हरा चारा एवं 2/3 भाग सूखा चारा होना चाहिए।
4. पशु को जो आहार दिया जाए उसमें विभिन्न प्रकार के चारे – दाने मिले हों। चारे में सूखा एवं सख्त डंठल नहीं हो बल्कि ये भली भांति काटी हुई एवं मुलायम होनी चाहिए। इसी प्रकार जौ, चना, मटर, मक्का इत्यादि दली हुई हो तथा इसे पका कर या भिंगों कर देना चाहिए। खल्ली को भी दाने के साथ भिंगों कर एवं फुला कर देना चाहिए।
5. दाने को अचानक नहीं बदलना चाहिए बल्कि इसे धीरे–धीरे एवं थोड़ा–थोड़ा कर बदलना चाहिए।
6. पशु को उसकी आवश्यकतानुसार ही राशन देना चाहिए, कम या ज्यादा नहीं।
7. नाद एकदम साफ होनी चाहिए, नया चारा डालने से पूर्व पहले का जुठन साफ कर लेना चाहिए।
8. गायों को 2–2.5 किलोग्राम शुष्क पदार्थ एवं भैंसों को 3.0 किलोग्राम प्रति 100 किलोग्राम वजन भार के हिसाब से देना चाहिए।
9. गर्भित पशु एवं दूध देने वाले पशु को 2–3 किलो हरा चारा अलग से देना चाहिए। भोजन में कुछ हरा चारा भी अवश्य होनी चाहिए अन्यथा उसका उत्पादन घट जाता है।
10. एक दूधारू पशु को प्रतिदिन लगभग 60 ग्राम नमक, 30 ग्राम अस्थि चूर्ण एवं 60 ग्राम खड़िया देनी चाहिए।
11. आहार को अधिक रूचिकर एवं सुपाच्य बनाने के लिए पशु के आहार में कभी–कभी गुड़ या शीरा मिलाकर देना चाहिए।

आहार व्यवस्था :

बढ़ोतरी करने वाले पशुओं के लिए

1. शरीर वृद्धि के लिए कैल्शियम, फास्फोरस, प्रोटीन, सम्पूर्ण पाचक तत्व एवं विटामिन युक्त राशन।
2. हड्डियों के वृद्धि के लिए कैल्शियम, फास्फोरस एवं विटामिन डी की आवश्यकता।
3. माँस की वृद्धि के लिए प्रोटीन।
4. पूर्ण वृद्धि के उपरांत राशन में प्रोटीन की मात्रा कम एवं कार्बोहाइड्रेट्स की मात्रा अधिक हो।
5. वृद्धि करने वाले पशुओं के राशन में खाने वाला नमक (9%) अत्यन्त आवश्यक है।
6. बछड़े के वृद्धि हेतु प्रोटीन हेतु माँ का दूध अवश्य पिलावें।

गाय एवं भैसों में प्रमुख रोगों का टीकाकरण तालीका

क्रमांक	रोग	प्राथमिक टीकाकरण	नियमित टीकाकरण	मात्रा एवं विधि
1.	खुरपका एवं मुँहपका	3 सप्ताह एवं उसके उपर, बूस्टर – प्राथमिक टीकाकरण के 3 महीना उपरांत	साल में दो बार मार्च एवं सितम्बर	रक्षा – एफ.एम.डी–3 मि.ली., चमड़े के नीचे

2.	गला घोंटु	6 महीना एवं उसके उपरांत	सलाना – मानसून के पहले (मई–जून)	रक्षा एच.एस. 2 मिली. एच.एस.म मिली त्वचा के नीचे
3.	ब्लैक क्वाटर / लगड़िया / जहरवाद	6 महीना एवं उसके उपरांत	सलाना – मानसून के पहले (मई–जुन)	रक्षा बी.क्यु.2 मिली बी. क्यु. 2 मिली त्वचा के नीचे
4.	एंथ्रेक्स / विषज्वर	6 महीना एवं उसके उपरांत	सलाना (केवल प्रभावित स्थान के पशुओं में)	एंथ्रेक्स स्पॉर 1 मिली त्वचा के नीचे
5.	ब्रुसलोसिस	प्रभावित स्थान पर बछड़ों में 4–8 माह के उम्र पर	मादा	5 मिली त्वचा के नीचे

पशुओं के संक्रामक रोग

गलाघोंटु

1. जीवाणु जनित।
2. अन्य नाम – गलफुल्ली, गलघोटा, गलारूकना, डकहा।
3. प्रभावित पशु – गाय, बैल, भैंस, बछड़ा, भेड़, बकरी इत्यादि।
4. समय एवं प्रभावित क्षेत्र – वर्षाकाल के समय।
5. मृत्यु दर – 80–90%
6. रोग के कारण – दुषित वायु भोजन–पानी रोग फैलाने में अचानक खराब मौसम अस्वास्थ्य वातावरण पशु थकान एवं कुपोषण तथा वातावरण की आर्द्रता विशेष रूप से सहायक होती है।
7. उद्भवन अवधि – रोग के लक्षण प्रायः 1 से 3 दिन के अंदर प्रकट हो जाते हैं।
8. रोग के लक्षण सारांश में

   क. प्रथम तापक्रम – 104–108^{0}F तक।

   ख. सुस्त, डिप्रेशन, अरूचि एवं एक स्थान पर खड़ा होना।

   ग. अधिकांश में सिर गला एवं गर्दन में सूजन।

   घ. मुँह से लार का बहना एवं निगलने में कष्ट।

   ङ. प्रायः जीभ में सूजन।

   च. जीभ दातों के बीच में अथवा मुख से बाहर लटकी हुई।

   छ. सांस लेने में कष्ट।

   ज. पहले कब्ज एवं बाद में दस्त।

   झ. गले में गड़गड़ाहट अथवा घुर्र–घुर्र की आवाज।

   ञ. आँख से आँसू का बहना एवं कीचड़ आना।

ट. श्वास कष्ट के साथ बलगम आना।

ठ. त्वरित चिकित्सा के अभाव में मृत्यु।

चिकित्सा

1. पोटाशियम परमैगनेट पानी में मिलाकर दें।
2. पोटाशियम आयोडाइड 1 ग्राम को 300 मि.ली. साफ पानी में मिलाकर त्वचा में इंजेक्शन दें।
3. इन्जेंक्शन टेट्रासाइक्लीन टेरामाइसिन/ऑक्सीटेट्रासाइक्लीन 10 मि.ग्रा./किलोग्राम वजन भार की दर से तीन दिन तक दें।
4. इन्जेक्शन इन्रोफलोक्सासिन 2, 5–5 मि.ग्रा/किलोग्राम वजन भार की दर से माँस में तीन दिन तक दें।
5. इन्जेक्शन सल्फाडिमाडिन 150 मिग्रा/किलोग्राम वजन भार की दर से नस में तीन दिन तक सूई दें।

राहत दवा

1. सूई वेटाल्जीन/एनाल्जीन 20–30 मिली माँस में सूई दें।
2. एंटीहिस्टामिनिक जैसे एभिल/एन्टास्टामिनिक 5–10 मिली माँस में सुई दें।

सावधानी/बचाव

1. प्रभावित पशु को अन्य स्वस्थ पशु से अलग रखे। रोगी पशु का स्थानान्तरण, बाजार ले जाना या पशु प्रदर्शनी एकदम बंद हो।
2. मरे पशु को जलाया या दफनाया जाए।
3. दूषित पानी का प्रभावी ढंग से परित्याग करें।
4. पशु गृहशाला को असंक्रमित करें।

टीकाकरण :

1. मानसून शुरू होने से पहले जून में एलम प्रेस्पिटेट–एच. एस. टीका त्वचा में दे।

एथ्रेक्स (विष ज्वर)

अन्य नाम : जहरी बुखार, विषहरी, स्पीलिनिक फीवर

यह पशुओं की छुत की बीमारी है जिसमें पशु को ज्वर हो जाता है और पशु अचानक बीमार हो कर मर जाता है।

प्रभावित पशु : गाय, भैंस, घोड़ा, बकरियाँ एवं भेंड़।

कारक : जीवाणु जनित (बेसिलस एथ्रेंसिस) या स्पॉर उत्पन्न करने वाला जीवाणु है एवं अनुकुल वातावरण में (ऑक्सीजन की उपस्थिति) में इसके स्पॉर वर्षों जीवित रहकर जीवाणु को जन्म देते रहते हैं।

छुत लगने के कारण :

1. **भोजन प्रणाली द्वारा :** दूषित पानी, चारा–दाना खाने एवं रोग से प्रभावित पशु के चारागाह में चरने से
2. **श्वास नली द्वारा :** उन छाटने वालों का रोग।
3. **त्वचा द्वारा :** मक्खियों द्वारा रोगग्रस्त पशु के खून को चुसकर स्वस्थ पशु को काटती है या कभी कभी खरोंच द्वारा भी।

उदभवन अवधि : 1½ दिन

रोग लक्षण :

1. **अति तीव्र अवस्था :** यह रोग बहुत जल्दी होती है तथा पशु तुरंत मर जाता है। यह प्रायः भेंड़ – बकरियों में बहुधा देखने को मिलता है। मृत्यु से पूर्व अचानक लड़खड़ाना, शरीर का हिलना एवं कांपना, दांत किटकिटाना, सांस लेने में कष्ट, मुंह, नाक तथा मलद्वार से रक्त मिला हुआ झागदार स्त्राव का गिरना तथा कुछ क्षणों में रोगी की मृत्यु हो जाती हैं। कभी–कभी तो बिना लक्षण प्रकट किये ही पशु एकाएक मरने लगता है।
2. **तीव्र अवस्था :** इस अवस्था में उच्च तापमान (105–108^{0}F) हो जाना एवं पशु सुस्त होकर कांपने तथा लड़खड़ाने लगता है। पशु में बेचैनी, नाड़ी की तेज चाल, आँखें उभरी एवं झिल्ली लाल, पैखाना – पेशाब बंद, नाक मुंह और मलद्वार से खून गिरना, पेट दर्द इत्यादि लक्षण दिखाई पड़ते हैं। पशु के प्राकृतिक छिद्रों से काला चमकदार झागदार स्त्राव का निकलना एवं उसका न जमना इस रोग के प्रमुख लक्षण हैं। मरे हुए पशु की यदि शव परीक्षण की जाए तो वह प्लीहा कई गुना बढ़ी हुई मिलती है। इसी कारण इसे प्लीहा का बुखार भी कहते हैं।
3. **कुछ तीव्र अवस्था** : लक्षण
   - क. तेज बुखार।
   - ख. भूख में कमी एवं जुगाली न करना।
   - ग. पेट का फुल जाना।
   - घ. मुंह, नाक और आंत का रक्त युक्त स्त्राव।
   - ङ 2–6 दिन में मृत्यु।

रोग निदान :

1. लक्षणानुसार
2. माइक्रोस्कोप
3. संर्वधनीय

चिकित्सा

1. एथ्रेंक्स एण्टी सीरम–गाय–भैंस में 100–150 मि.ली. चमड़े में तथा भेंड़ बकरी में 50–100 मि.ली. चमड़े में।
2. पनीसिलीन – बड़े पशुओं में 20–30 लाख यूनिट मॉस में।

3. एम्पीसिलीन – 2 ग्राम माँस अथवा शिरा में प्रति 12 से 14 घंटे में।
4. टेट्रासाइक्लीन (टेरामाइसिन) अथवा नियोमाइसिन 20–30 मिली तथा अगले दिन से आधी, पाँच दिन तक दें।
5. सल्फामेजाथीन सोडियम (33.3%) 50–100 मिली चमड़ें में अथवा शिरा में दें।

थैलेरिया

कारण : थैलेरिया एनयुलेटा या थैलेरिया पारवा। यह रोग टिक के द्वारा फैलता है।

लक्षण :

1. अत्याधिक शरीर तापक्रम जो कि कई दिनों तक रहता है।
2. खाना–पीना कम कर देती है या एकदम बंद कर देती है।
3. हृदय या श्वसन की गति बढ़ जाती है।
4. श्वसन में कठिनाई होती है।
5. आँख एवं नाक से पानी आती है।
6. उपरी लिम्फनारेड या लसिका बढ़ जाती है।
7. खून की कमी से म्यूकस मेम्ब्रेन पीला हो जाता है।
8. पीलिया के कारण गहरे पीले रंग का पेशाब आता है।
9. 7–10 दिन में मृत्यु।

उपचार :

क. मुख्य उपचार

1. सूई ऑक्सीटेट्रासाइक्लीन 15–20 मि.ग्राम. की दर से नस में 5–7 दिन तक सूई दें।
2. सूई नेभिक्वीन 20–30 मि.ग्राम. की दर से नस में 3 दिन तक सूई दें।
3. बेरीनील – 5 ग्राम दवा में 15 मि.ली. पानी घोलकर 5 मि.ली. प्रति 100 किलो शरीर भार पर माँस में सूई दें।
4. सूई ब्युपारभाक्वीन – ब्युटालेक्स 2.5 मिग्रा की दर से माँस में सूई दें।

प्रोटोजोआ से होने वाले रोग

1. बेबीसियोसिस

लक्षण :

1. अत्यधिक शरीर तापक्रम।
2. खाना–पीना कम कर देती है या एकदम बंद कर देती है।
3. सुस्त एवं कमजोरी।

4. दूध में कमी।
5. हृदय या श्वसन गति बढ़ जाती है।
6. श्वसन में कठिनाई होती है।
7. खून की कमी से म्यूकस मेम्ब्रेन पीला हो जाता है।
8. पीलिया के कारण गहरे पीले रंग का पेशाब आता है।
9. कॉफी के रंग का पेशाब जिसे हिमोग्लोबिनयुरिया भी कहते है।
10. अंत में मृत्यु।

उपचार :

क. मुख्य उपचार

बेरीनील – 5 ग्राम दवा में 15 मि.ली. पानी घोलकर 5 मि.ली. प्रति 100 किलो शरीर भार पर माँस में सुई दें।

ऑक्सीटेट्रासाइक्लीन 150–20 मि. ग्राम की दर से नस में 5–7 दिन तक सुई दें।

2. ट्रिपैनोसोमियासिस या सर्रा

यह रोग समान्यत : मौनसुन के समय होता है।

कारण : ट्रिपैनोसोमा इभेनसाई, यह रोग टेबेनस स्पेसीज नामक कीट के काटने से होता है।

लक्षण :

क. अति तीव्र अवस्था

1. चाल में लड़खड़ाहट एवं गोल चक्कर काट कर घुमावदार घुमना।
2. बुखार 104^0 फारनहाईट से ऊपर।
3. सिर को किसी ठोस वस्तु से ठोकर मारना।
4. अंधापन।
5. शरीर में कम्पन एवं अंत में मृत्यु।

ख. क्रोनिक अवस्था

1. बुखार का लगना एवं घटना।
2. भुख कम लगना।
3. दूध उत्पादन में गिरावट।
4. शरीर कमजोर होना।
5. शरीर में खून की कमी।

उपचार :

क. मुख्य उपचार

1. ट्रायक्वीन, ट्रायक्वीन एस, ट्रिपनील, एनट्रीसाइड प्रोसाल्ट इनमें से कोई एक दवा 15 मि.ली. पानी में घोलकर, 2.5 मि.ली. प्रति 100 किलो शरीर भार पर चमड़े में सूई दें।

2. सुरामीन 10–12 मिग्रा प्रति किलो शरीर वजन पर शिरा द्वारा दें।
3. बेरीनील – 5 ग्राम दवा में 15 मिली पानी घोलकर 5 मि.ली. प्रति 100 किलो शरीर भार पर माँस में सूई दें।

ख. सहायक उपचार

1. डेक्सट्रोस 10–25 मि.ली. शिरा द्वारा दें।
2. विटामिन बी कम्पलेक्स लीवर ऐक्सट्रेक्ट लिए हुए माँस में सूई दें।

बचाव : रोग फैलाने वाले मक्खी का नियंत्रण, पशुशाला की देखरेख एवं साफ सफाई।

3. थैलेरियोसिस

अन्य नाम : ईस्ट कोस्ट फीवर, टीक फीवर

प्रभावित पशु : मुख्यतः विदेशी एवं संकर देशी गाय।

मुख्यत : गर्मी एवं बरसात के समय ओसर एवं जवान गाय मुख्य रूप से प्रभावित

उपचार :

क. मुख्य उपचार

1. बेरीनील – 5 ग्राम दवा में 15 मि.ली. पानी घोलकर 5 मि.ली. प्रति 100 किलो शरीर भार पर माँस में सूई दें।
2. सूई ऑक्सीटेट्रासाइक्लीन 15 से 20 मि.ग्राम की दर से नस में 5–7 दिन तक सूई दें।

4. एनाप्लासमोसिस

प्रभावित पशु : मुख्यतः गाय, बकरी एवं भेड़।

कारण : एनाप्लासमा मारजिनेली। यह रोग टिक के द्वारा फैलता है।

लक्षण :

1. अत्याधिक शरीर तापक्रम।
2. खाना–पीना कम कर देती हैं या एकदम बंद कर देती है।
3. सुस्त एवं कमजोरी।
4. आँख एवं नाक से पानी का गिरना।
5. खून की कमी से म्यूकस मेम्ब्रेन पीला हो जाता है।
6. पीलिया।
7. श्वसन में कठिनाई होती है।

निशान : इस्पलीन या लीवर का बढ़ना, पीलिया।

उपचार :

क. मुख्य उपचार

1. बेरीनील – 5 ग्राम दवा में 15 मि.ली. पानी घोलकर 5 मिली प्रति 100 किलो शरीर भार पर माँस में एक बार सूई दें।
2. सूई ऑक्सीटेट्रासाइक्लीन 10 मि.ग्राम प्रति किलो शरीर भार की दर से नस में 5–7 दिन तक सूई दें।
3. खून बढ़ाने वाली दवा दें।
4. विटामिन बी कम्पलेक्स लीवर ऐक्सट्रैट लिए हुए माँस में सूई दें।

पशुओं में होने वाले कुछ प्रमुख उपापचय संबंधी रोग

सभी जीवों के शरीर में अन्दर हमेशा अनेक प्रकार के भौतिक व रसायनिक क्रियायें निरंतर चलती रहती है। इन्ही क्रियाओं को सम्मिलित रूप से उपापचय या मेटाबोलिज्म कहते हैं। इन क्रियाओं के विसंगति के कारण जो रोग होते हैं वे मेटाबोलिक रोग कहलाते हैं। इनमें निम्नलिखित कुछ प्रमुख रोग हैं।

दुग्ध ज्वर / मिल्क फीवर / कैल्शियम की कमी

प्रभावित पशु – गाय, भैंस तथा बकरी।

यह रोग अधिक दूध देने वाले पशुओं में बहुधा प्रसव के बाद होता है।

कारण : रक्त में कैल्शियम की कमी के कारण यह रोग होता है। यह कमी पैराथाइरड ग्लैण्डस के अनुत्तर होने या फिर कोलेस्ट्रम में अतिरिक्त कैल्शियम चले जाने से।

लक्षण :

यह रोग बछड़ा देने के 12–72 घंटे के अन्दर दिखाई देता है। शरीर का तापक्रम 100^0 फारेनहाइट या इससे कम हो जाता है। पशु कांपता है और सिर हिलाता है। पुँछ ऐंठन, जीभ बाहर निकलना और दांत किटकिटाना इत्यादि प्रमुख लक्षण है। पशु खड़ा होता है और पुनः बैठ जाता। अंत में सारा शरीर ठंडा पड़ जाता है। पशु खाना–पीना बंद कर देता है तथा अपने सिर को मोड़कर छाती पर रख लेता है या आगे की ओर खींच कर भूमि पर रख लेता है। आखों की झिल्ली लाल हो जाती है तथा एक करवट लेकर पड़ा रहता है।

उपचार :

1. इसमें कैल्शियम बोरोगलूकोनेट या थायोसोल 200–450 मि.ली. शिरा में दें। बड़े पशु को 900 मि.ली. दवा धीरे–धीरे शिरा में दें।
2. इसके साथ ऐभील 10 मि.ली. माँस में दें।
3. टोनोफास्फेन 10–20 मि.ली. माँस में सप्ताह में दो दिन दें।

शर्करा की कमी / ऐसिटोनीमिया / केटोसिस / हाइपोग्लाइसिमिया

यह गायों में बछड़ा देने के 6–8 सप्ताह के अन्दर अचानक दूध देना बंद कर देती है या कम कर देती है।

कारण :

रक्त में कार्बोहाइड्रेट की न्यूनता एवं ग्लूकोज स्तर के गिर जाने से यह रोग होता है। गर्भावस्था में अधिक प्रोटीन युक्त दाना खिलाने से एवं कार्बोहाइड्रेट युक्त दाना न खिलाने से अधिक दूध देने वाले पशुओं में यह विसंगति रोग होती है।

लक्षण :

पशु अचानक खाने पीने तथा चलने फिरने में असमर्थ हो जाती है। स्वास्थ्य तथा दुग्ध उत्पादन में निरन्तर गिरावट आ जाती है। पशु का वृत रूप में घुमाना एवं बैठ कर न उठना व पशु दीवार तथा अपने शरीर को चाटता है। रक्त में एसीटोन की मात्रा बढ़ जाती है। पशु सिर को खींचकर या झुका कर छाती पर रखती है। इसमें लक्षण बहुत कुछ मिल्क फीवर से मिलता जुलता है।

उपचार :

1. इमिफेक्स या कालमेग 500 मि.ली. शिरा में दे।
2. रिन्टोज 500–2000 मि.ली. बड़े पशु को शिरा में दें।
3. डेक्सोना 10 मि.ली. माँस।
4. क्लोरल हाइड्रेट 30 ग्राम गुड के साथ दें।

ग्रास टेटनी/लैक्टेशन टेटनी/हाइपोमैगनेसिमिया

यह रोग वसंत ऋतु के अंतिम दो सप्ताहों में खाद पूर्ण अति समृद्ध चारागाहों में चरने तथा मैग्नेशियम उपापचय में गड़बड़ी की वजह से पशुओं में यह रोग हो जाता है।

लक्षण :

पशु सुस्त हो जाता है तथा दांत किटकिटाता है। शरीर को बार–बार ऐंठता है तथा बार–बार पेशाब करती है। शरीर का तापक्रम तो सामान्य रहता है परन्तु हृदय की धड़कन बढ़ जाती है और धड़कन दूर से सुनाई देती है। कभी–कभी बछड़ों में भी यह रोग ग्रसित गायों के दूध से हो जाती है। इसमें संज्ञा शुन्यता, दौरे पड़ना एवं ऐठन आदि मुख्य लक्षण है।

उपचार :

1. मिफेक्स या कैल्शियम–मैग्नेशियम बोरोग्लूकोनेट 200–300 मिली बड़े पशुओं को शिरा या त्वचा में दें।
2. मैग्नेशियम सल्फेट 10–20 प्रतिशत घोल 200–300 मि.ली. त्वचा के नीचे दें।

डोनर काउ सिण्ड्रोम

यह अत्यधिक दूध देने वाली संकर नस्ल गायों का विशेष रोग है। इसमें होल्स्टीयन फ्रिजयन गायें अधिक प्रभावित होती है। प्रभावित पशु चुस्त और दुरूस्त प्रतीत होता है पर खड़ा होने में असमर्थ रहती हैं।

कारण :

खून में लगातार कैल्शियम, फास्फोरस, या सोडियम की कमी। पिछले पैरों की पेशियों में चोट लगने से मोटापा या फिर पिछले पैरों में अधिक दबाव पड़ने से यह रोग हो सकता है।

लक्षण :

खड़े होने में असर्मथता। पशु थोड़ा बहुत प्रयत्न करता है फिर भी खड़ा नहीं हो पाता है। भूख, जुगाली, दस्त और पेशाब प्रायः सामान्य रहते हैं। परन्तु कुछ पशु में सुस्ती व अरूचि आदि के लक्षण मिल सकते हैं।

उपचार :

1. पशु को एयर बैग या गद्दे की सहायता से थोड़ी–थोड़ी अंतराल यानि लगभग 3 घंटे के बाद करवट बदलते रहना चाहिए।
2. कैल्शियम बोरोग्लूकोनेट का इन्जेक्शन 450–900 मिली शिरा में धीरे–धीरे दें।
3. विटामिन ई. सिलिनियम, पोटाशियम, कोर्टीकोस्टेराइडस इत्यादि देनी चाहिए।
4. संक्रमण की स्थिति में एण्टीबायोटिक देनी चाहिए।

कृषि चारागाह प्रबन्धन

झारखण्ड विशेषकर संथाल परगना क्षेत्र में पशुपालन का अपना एक विशेष महत्व है। यहां का अधिकांश भूभाग जंगलों से भरा है उसके साथ पानी का अभाव कृषि कार्य को अत्यंत दुश्कारी बना देता है। जंगलों एवं वनों से परिपूर्ण इस प्रदेश में पशुओं के भोजन के रूप में पेड़–पौधे एवं चारागाह के रूप में विस्तृत प्रक्षेत्र उपलब्ध है जहां किसान अपने पशुओं को चरा कर भोजन के रूप में होने वाले करीब 60–70 प्रतिशत खर्च को बचा सकते हैं। यहां कृषि चारागाह प्रबन्धन में कुछ वैज्ञानिक बदलाव/सुधार करने की आवश्यकता है ताकि यह केवल व्यवसाय ही न होकर लाभदायी रोजगार या उद्योग में विकसित हो सके।

कुछ महत्वपूर्ण सुझाव

अत्याधिक मात्रा में चारा वृक्ष को चारागाह, तालाब, नदी एवं नाले के किनारे तथा अनुपयोगी कृषि क्षेत्र में लगावें तथा इन पेड़ों से डाली, टहनी एवं पत्ती को समय–समय पर छाँट कर अपने जानवरों को खिलावें।

इन पेड़ों के नीचे उगने वाले पौधों इत्यादि को जमा कर 'हे' के रूप में संरक्षित किया जा सके ताकि आवश्यकता पड़ने पर इसे खिलाया जा सके। गांवों में जो सामूहिक चारागाह प्रक्षेत्र है उसे अनावश्यक विशेषकर पशुओं द्वारा नष्ट होने से बचाना चाहिए तथा संभव हो तो उसमें सुधार पूर्वक अच्छी पौष्टिक, वार्षिक तथा उन्नतशील घास तथा हरे चारा का बीज लगावें। अगर एक ही चारागाह में भेड़ – बकरी व गाय–भैंस दोनों को चराना है तो पहले गाय–भैंस को चराये और उसके उपरांत बकरी को उस प्रक्षेत्र में चरने दें। वैसे क्षेत्र जो शुष्क, सूखा तथा बंजर या अर्ध बंजर हो तो वहाँ गाय–भैंस की अपेक्षा बकरी–भेंड़ के चारागाह के रूप में उपयोग में लाया जा सकता है। क्षेत्र में पाये जानेवाली सभी झाड़ी, नुकसान नहीं पहुंचाने वाली खर पतवार, फसलों के अवशेष को भोजन के रूप में उपयोग में लाया जा सकता है।

चारा वृक्ष चारागाह के प्रकार :

पेड़ का पत्ता विशेषकर बकरियों के लिए : गुलर, पीपल, नीम, आम, अशोक, बरगद, शहतुत, बबुल, सुबबुल, कटहल इत्यादि।

झर-झाड़ी व औषधीय पौधे : बेर, झारबेर, करौंदा, इत्यादि

सब्जी का अवशेष - गाजर, मूली, बंदागोबी व फुलगोबी का पत्ता, टमाटर, सरसो, सलजम इत्यादि।

घास : दुब, मोथा, दीनानाथ घास, अंजान, नेपियर इत्यादि।

चारागाह : लूर्सन, बरसीम, काउपी, सरसों, जई–बाजरा, मकई इत्यादि।

फली तथा छोटे रसदार फल : मटर, बबुल, गुलर, बरगद इत्यादि।

'हे' तथा पुआल : जई, अरहर, भूसा पुआल इत्यादि।

हरा चारा

पशु को स्वस्थ रखने में हरे चारे का विशेष महत्व है। हरा चारा सुपाच्य एवं रूचिकर होने के कारण पशुओं के लिए स्वास्थ्य वर्धक एवं उनके उत्पादन को बढ़ाने में सहायक होता है। उन्नतशील हरे चारे को खिलाने से दाने की बचत तो होती ही है साथ ही उत्पादन भी काफी बढ़ता है। दलहनी पौधे अधिक पौष्टिक होते हैं परन्तु इसको अधिक नहीं खिलाना चाहिए।

हरे चारे का महत्व

1. हरा चारा स्वादिष्ट एवं पौष्टिक होता है और पशु उसे बड़े चाव से खाते हैं। हरे चारे में प्रोटीन, कैल्शियम, फास्फोरस आदि उचित मात्रा में उपलब्ध होने से दूध उत्पादन बढ़ता है।
2. हरा चारा शीघ्र हजम हो जाता है अतः इन्हें खिलाने से पाचन क्रिया ठीक रहती है।
3. हरे चारे में विटामिन 'ए' की प्रचूरता रहती है जिससे पशु का स्वास्थ्य अच्छा रहता है और संक्रामक रोग से बचाव भी होता है।
4. हरे चारे को हरी अवस्था में सम्पूर्ण तत्वों सहित 'साइलेज' तथा 'हे' के रूप में सुरक्षित रखा जा सकता है और किसी भी समय आवष्यकता पड़ने पर पशु को पौष्टिक पदार्थ से भरपूर इस आहार को दिया जा सकता है।
5. दाना की अपेक्षा हरे चारे में पौष्टिक तत्व कम खर्च पर उपलब्ध हो जाता है।
6. हरे चारे में नमी की अधिकता से शरीर को पर्याप्त पानी मिल जाता है जिससे शरीर की आंतरिक क्रियाएं सुचारू रूप से संचारित रहती है।
7. उन्नतशील हरे चारे की कई कटाई होती है जिससे पशुओं को पर्याप्त मात्रा में चारा मिल जाता है।

नेपियर :

बुआई का समय – मार्च से जुलाई।

बीज की दर – 40000 जड़े या तना के टुकड़े/हे.।

कटाई का समय – पहली कटाई 80 दिनों पर, फिर 45 दिन के अंतराल पर चारा उत्पादन प्रति हेक्टेयर – 1000 से 1600 क्विन्टल।

महत्व : जैसे–जैसे पौधा बढ़ता है प्रोटीन की मात्रा घटती जाती है अतः पौधों को अधिक नहीं बढ़ने देना चाहिए। पशुओं के खिलाते समय हरे चारे के साथ–साथ 4–5 किलो दलहनी हरा चारा; लोबिया, ज्वार, बरसीम भी दें।

दीनानाथ :

बुआई का समय – जून से जुलाई।

बीज दर – 10–20 किलो/हेक्टेयर।

कटाई का समय – पहली कटाई 60 दिनों में तथा दूसरी 50 प्रतिशत फूल आने पर।

चारा उत्पादन – 500–700 क्विंटल/हे.।

महत्व – प्रोटीन 7 प्रतिशत, कैल्शियम 4 प्रतिशत, फास्फोरस 3.6 प्रतिशत।

गिन्नी :

बुआई का समय – जून से जुलाई।

बीज दर – 10–15 क्विंटल कटिगंस।

कटाई का समय – पहली कटाई 60 दिनों तथा दूसरी 50 प्रतिशत फूल आने पर।

सुबबुल :

बुआई का समय – जून से जुलाई।

बीज का दर – 10–12 कि./हे.।

कटाई का समय – पहली कटाई 60 सें. की ऊँचाई पर तथा अगली 1 मी. की ऊँचाई।

चारा उत्पादन – 700–800 क्विंटल/हेक्टेयर।

ज्वार - रिओम 988, पुसाचरी-23

बुआई का समय – जून से जुलाई।

बीज दर – 30–40 कि./हे.।

कटाई का समय – 50 प्रतिशत फूल आने पर।

चारा उत्पादन – 400–500 क्विंटल/हे.।

मकई

बुआई का समय – फरवरी से जुलाई।

बीज दर – 30–40 कि./हे.।

कटाई का समय – मुट्टे वाली बालियाँ आने पर।

चारा उत्पादन – 400–400 क्विंटल/हे.।

बाजरा :

बुआई का समय – मार्च से जुलाई।

बीज का दर – 40–50 कि.।

कटाई का समय – 50 प्रतिशत फूल आने पर।

चारा उत्पादन – 300–400 क्विंटल/हे.।

लोबीया :

बुआई का समय – फरवरी से जून।

बीज का दर – 30–40 कि./हे.।

कटाई का समय – 50 प्रतिशत फूल आने पर।

चारा उत्पादन – 250–300 क्विंटल/हे.।

पारा घास :

बुआई का समय – वर्षा ऋतु।

बीज का दर – 25–80 हजार तना के टुकड़े/हे.।

उपज – 1000 क्विंटल/हे.।

कटाई का समय – 50–60 दिन बाद पहली कटाई तथा प्रत्येक माह के अंतराल पर।

महत्व – यह लता की भांति घास होती है तथा नदी–नालों के किनारे उग कर 4–5 वर्ष तक हरा चारा देती है। यह एक पौष्टिक एवं स्वादिष्ट हरा चारा होती है जिसमें 8–10 प्रतिशत प्रोटीन पाया जाता है।

आवास व्यवस्था

- **धूप लगना और तेज हवा से बचाव**

  डेयरी भवन ऐसा बनाना चाहिए कि उसमें उत्तर की ओर अधिकतम और दक्षिण की ओर न्यूनतम धूप पड़े और तेज पवनधाराओं से, चाहे वे गरम हो या ठंडी, उसका बचाव होना चाहिए। भवनों की दिशा इस प्रकार होनी चाहिए कि सीधी धूप ढोर साल में चबूतरों, नालियों और नांदों पर पड़ सके। जहाँ तक संभव हो, डेयरी के बार्नों का दीर्घ अक्ष उत्तर–दक्षिण दिशा में रहना चाहिए जिससे धूप का अधिकतम लाभ मिल सके।

- **पहुंचने की सुगमता**

  भवनों पर पहुंचने की सुगमता सदा अभीष्ट होती है। यह लक्ष्य रखना चाहिए कि ढोर साल जाने को रास्ते की सुगमता हो।

- **पायेदारी और आकर्षकता**

  भवनों में दृश्यसौन्दर्य होने से उनकी आकर्षकता मकान का दृश्यावली की भव्यता में वृद्धि हो जाती है। इस के साथ इमारत की मजबूती डेयरीनिर्माण में स्पष्टतः एक महत्वपूर्ण अभिलक्षण होती है।

- **जल संभरण**

  ताजे, साफ़ और कोमल पानी की प्रचुर मात्रा उपलब्ध होनी चाहिए।

- **परिवेश**

  जंगली जानवरों से भरे इलाकों से बचना चाहिए। यह भी ध्यान रखना चाहिए कि जहां गायों को चलना फिरना है वहां गेट तंग न हो, नांदें ऊंची न हों, कब्जे ढीले न हों, कीलें बाहर न निकली हों, और फर्श बहुत चिकने न हों।

- **श्रम**

  ईमानदार और सस्ते मज़दूर नियमित रूप से मिलने चाहिए।

- **विपणन या बिक्री करना**

  डेयरी के भवन उन स्थानों पर होने चाहिए जहां से मालिक अपना माल मुनाफे में और नियमित रूप से बेच सके। वहां फार्म की सब आवश्यकताएं आसानी से और उचित कीमत पर पुरी हो जानी चाहिए।

- **विभिन्न किस्मों के ढोरों के लिए बार्न**

  विभिन्न प्रकार के ढोरों को ठीक ढंग से रखने के लिए आम तौर से निम्नलिखित बार्नों की जरूरत होती हैः

  1. गाय घर या गौसाल जिनमें विशेष स्थान, जैसे ब्याने का स्थान, आदि भी होते हैं।
  2. वत्सघर
  3. पृथक्करण बाक्स
  4. बाल पशु
  5. सांड घर या सांडसाल, आदि।

- **गौसाल**

  इस देश में आम चलन है कि गाय को जंजीर या रस्से से कच्चे फर्श पर बांध दिया जाता है। किसी मानक या सुनिश्चित प्रकार के ठौर (स्टाल) नहीं अपनाए गये हैं। कुछ संगठित डोरियों में ही गायों के लिए कुछ अच्छी आवास सुविधाएं हैं। पर उनमें भी ठौर नहीं होते। परिणाम स्पष्ट है।

  अधिक उन्नत डेयरी उद्योगवाले देशों में डेयरी गायों को ठौर पर रखने की तीन प्रणालियां प्रचलित है :

  1. गाय घर प्रणाली या ठौर बार्न या बायर या शिप्पन – जिनमें गाय रहती भी है और दुही भी जाती है। भवन के अन्दर प्रत्येक गाय के लिए अलग ठौर या स्टैचियनं होता है।
  2. दोहन घर या विश्रामी बार्न प्रणाली – जिनमें गायें रहती तो ढोरसालों की गोशालों में हैं पर दुही एक विशेष दोहन स्थान पर जाती हैं। विश्रामी बार्न में, जो उठने–बैठने के भी काम आता है और मोटा चारा खिलाने के काम भी आता है, वे खुली रहती हैं।
  3. खुली हवा या बेल प्रणाली – जिसमें आवास कोई नहीं होता। गायें खेतों में ही बाड़ों में रहती है और वहीं उन्हें दुहा भी जाता है। इस प्रणाली से गोबर और मूत्र का उर्वरक मूल्य खेतों पर अधिकतम मात्रा में बना रहता है। स्थायी गायघर का खर्च बच जाता है और गायों की स्वास्थ्य अच्छी रहती है।

  हमारे देश की जलवायु दशाओं में, जहां साल के अधिकतर हिस्से में ऊँचा ताप रहता है जिससे मलों का किण्वन शीघ्र हो जाता है, विश्रामी प्रणाली का अधिक प्रयोग नहीं हो सकता। इसलिए मलों को कई–कई दिन पड़े रहने देना, जैसा कि इस प्रणाली की अन्तर्गत आम तौर से होता है, ठीक नहीं रहता। दूसरी ओर, दैनिक सफाई की प्रणाली में बहुत अधिक मजदूरों की जरूरत होती है क्योंकि इसमें ठौर/बार्न प्रणाली की अपेक्षा साफ करने के लिए बहुत ज्यादा जगह होती है। इसके अतिरिक्त हमारे लम्बे सीगों वाले ढोरों की प्रकृति और मिजाज के कारण यह बहुत कुछ अव्यवहारिक हो जाता है।

बेल या खुली हवा प्रणाली से ढोरों का रखना इस कारण संभव नहीं कि सारे वर्ष परती या चरागाह भूमियां प्राप्त नहीं हो पातीं।

हमारे डेयरी उद्योग, भूमि और चरागाह समस्याओं की वर्तमान आर्थिक दशाओं में हम केवल गोसाल प्रणाली की ही बात सोच सकते हैं और उसी की सिफारिश कर सकते हैं। हमारे ढोरों के लिए बहुत स्वास्थ्यकर भावनों का निर्माण करने पर खर्च करना आर्थिक दृष्टि से संभव नहीं है। आवास के लिए गायों को विभिन्न वर्गों में बांट देना चाहिए। सूखी और दूध देने वाली गायें ठौर/बार्न में रखनी चाहिए और ब्याने वाली तथा बीमार गायें, अलग–अलग, खुले घेरों में रखनी चाहिए। ऐसी गोशाल बनाने के लिए, जिससे विविध वर्गों की गायों की विविध जरूरतें पूरी हो जाए, कुछ मुख्य बातें नीचे दी जाती हैंः

- **ठौर/बार्न व्यवस्था**

यदि गायों की संख्या थोड़ी, जैसे 10 से कम हो, तो गोशाला का विन्यास एक ही पंक्ति में हो सकता है, और यदि यूथ अधिक बड़ा हो तो दो पंक्तियों में हो सकता है। साधारणतया एक भवन में 80 से 100 गाय से अधिक नहीं रखनी चाहिए। द्विपंक्ति आवास में गोसाल का विन्यास ऐसा रखा जा सकता है कि गायों का मुंह या तो बाहर की ओर हो (अभिपुच्छी प्रणाली) या फिर अंदर की ओर हो (अभिमुखी प्रणाली)।

- **अभिपुच्छी प्रणाली के लाभः**

1. औसत दशाओं में प्रति गाय प्रति वर्ष 125 से 150 मनुष्य घंटों की आवश्यकता होती है। समय का अध्ययन डेरियों में किये गये समय–गति अध्ययनों से पता चला कि कुल खर्च हुए समय का 15 प्रतिशत गाय के सामने तथा 25 प्रतिशत बार्न तथा दूध घर के अन्य स्थानों पर खर्च हुआ और 60 प्रतिशत गायों के पीछे खर्च हुआ। गायों के पीछे लगा समय सामने लगे समय से चार गुना है।
2. गायों को साफ करने और दुहने में बीच की चौड़ी गली बड़ी उपयोगी है।
3. एक पशु से दूसरे पशु को रोग लगने की आशंका कम हो जाती है।
4. गायें हमेशा बाहर से अधिक ताजी हवा ले सकती हैं।
5. मुख्य ग्वाला दूध दुहने के समय अधिक दूधियों का निरीक्षण कर कर सकता है। ऐसा इसलिए है क्योंकि दूधिये मुख्य ग्वाले के दोनों ओर दूध दुह रहे होंगे।
6. पशुओं के पिछले धड़ में किसी भी प्रकार का रोग या परिवर्तन शीघ्र और आपने आप दीख जाता है।

- **अभिमुखी प्रणाली के लाभः**

1. जब सिर इकट्ठे होते हैं तब गायें दर्शकों को अधिक अच्छी तरह दिखाई देती हैं।
2. गायों को अपने ठौरों पर जाने में आसानी होती है।
3. सूर्य की किरणें डालियों पर पड़ती है जहां उनकी सबसे अधिक जरूरत होती है।
4. यह संकरे बार्नो के लिए अच्छी रहती है।

- **फर्श**

बार्न का भीतरी फर्श किसी अप्रवेश्य वस्तु का होना चाहिए जिसे आसानी से स्वच्छ और सूखा रखा जा सके और जो फिसलनदार न हो। ईटों के फर्श से भी प्रयोजन सिद्ध हो सकता है। खांचेदार सीमेंट कंकरीट

का फर्श और भी अच्छा है। यह अपेक्षा देर तक चलने वाला होता है, आसानी से डाला जा सकता है और इसे अधिक स्वच्छ रखा जा सकता है। गोशाल फर्श का पृष्ठ नांद से मल–नाली की ओर 1'' से 1 1/2'' का ढाल रखकर बनाना चाहिए। प्रत्येक वयस्क गाय के लिए कुल मिलाकर 65 से 70 वर्गफुट फर्श स्थान ठीक होता है।

- **दीवारें**

  दीवारों के भीतरी भाग पर सीमेंट का चिकना फिनिश होना चाहिए जिससे उस पर धूल और पानी न रूक सके। कोने गोल होने चाहिए। मैदानों में 4–5 फुट ऊंची दीवारें और सीमेंट के पक्के खंभों या इस्पात के खंभों पर टिकी हुई छतें सबसे अच्छी या अधिक उपयुक्त रहती हैं। खंभों की बीच के खुली जगह से रोशनी और हवा का आना–जाना रहेगा।

- **छत**

  बार्न की छत ऐस्बेस्टस या टाइलों की हो सकती है। लोहे की नालीदार चादरें लगाने से विभिन्न ऋतुओं में बार्न का भीतर का ताप बहुत अधिक ऊंचा–नीचा हो जाता है। फिर भी, यदि लोहे की चादरों के ऊपर ऐलुमीनियम का पेंट कर दिया जाए जिससे सुर्य की किरणें परावर्तित हों और नीचे लकड़ी की तापरोधी छत लगा दी जाए तो उद्देश्य सिद्ध हो सकता है। साइडों पर 8 फुट ऊँचाई और कुटक या मेंड पर 15 फुट ऊंचाई से गायों को हवा के लिए काफी जगह मिल जाएगी।

बकरी पालन

बकरी पालन को व्यवसाय के तौर पर शुरू करने के लिए बहुत ही कम पूंजी की आवश्यकता होती हैं। बकरियां वयस्क 10–12 महीनों में हो जाती है। 16–17 महीने में बच्चे देती हैं। बकरियों में एक साथ जुड़वे बच्चों का प्रचलन ज्यादा है जबकि एक साथ तीन बच्चे भी होते हैं। सूखा पड़ने पर या सूखे प्रछेत्र में भी बकरियां बड़ी आसानी से अपने आप को जीवित रख पाती हैं। बकरियां अपना पोषण झाड़ी एवं घांसों से कर लेती हैं। इनको पालने के लिए बहुत ज्यादा व्यवस्था की जरूरत नहीं होती। इनके इसी व्यवहार की वजह से इनको ''जैविक नियंत्रक'' भी कहते हैं।

बकरी भेंड़ के तुलना में 2.5 गुणा ज्यादा मुनाफा वाला होती हैं।

बकरियों में उत्पादन बढ़ाने के लिए संकर नस्ल की उपयोगिता बढ़ जाती है। हमारे देश में भी संकर नस्ल का प्रचलन बढ़ता जा रहा है।

जैसे – 1. ब्लैक बंगाल (मादा) X बीटल (नर)

2. शिरोही (मादा) X बीटल (नर)
3. ब्लैक बंगाल (मादा) X जमुनापारी (नर)

इन संकर नस्लों के बच्चे जल्दी बढ़ जाते हैं तथा बच्चों की संख्या भी ज्यादा होते हैं। इन बच्चों द्वारा माँस और दूध दोनों की पूर्ति होती है।

बकरी न कि केवल गरीबों की गाय है बल्कि यह बहुउद्देशीय आय अर्जन की सम्भावनाओं से परिपुर्ण पशु है। बकरी माँस एवं दूध के अलावे चमड़ी, खाद एवं पहाड़ी जगहों पर हल्के–फूल्के भारवाहन के लिए भी उपयोगी है। बकरी को चलता फिरता रेफ्रीजरेटर भी कहते हैं। इसके रख रखाव, भोजन एवं घर के तौर पर जरूरतें बहुत ही कम हैं।

बकरी को बगैर जमीन वाले, खेतों में काम करने वाले किसान, औरतें छोटे बच्चे से लेकर बेरोजगार युवक तक अपने आय के साधन के तौर पर आसानी से सुचारू रूप से ग्रहण कर सकते हैं। बकरियों के लिए वातावरण कोई बंधन नहीं होती है। बकरियाँ मैदानी भागों से लेकर रेगिस्तान, पठारी ठंढ, कम आद्रता से लेकर अति आद्रता तथा बरसाती प्रदेशों में एक समान अपने आप को ढाल लेती हैं।

इसमें अगर हम मुनाफा का अनुपात निकालें तो सबसे अच्छा अनुपात होता है। बकरी के माँस के साथ किसी संप्रदाय की बाध्यता भी नहीं होती है। जिसकी वजह से इसकी चाहत ज्यादा बड़े वर्ग के लोगों के बीच होती हैं।

बकरी को मनुष्यों का दत्तक मां भी कहा जाता है क्योंकि बकरी का दूध बच्चे से बड़ों तक के लिए अत्यधिक पौष्टिक, सुपाच्य एवं कम वसा युक्त होता है। इसकी दूध गाय के दूध से पतला होने के साथ–साथ यह दूध उन लोगों के लिए वरदान होती है जो कि अस्थमा, खांसी, मधुमेह, पेप्टिक अलसर, यकृत कमजोरी, पिलिया, अपच रोगों से ग्रसित हैं।

बकरी के दूध में गुणकारी फॉसफोरस की मात्रा अधिक होती है जिसकी कमी शाकाहारी भोजन में होती है। इसके दूध में बी कम्प्लेक्स एवं वीटामिन्स की अधिकता होती है। इनके खालों से एवं बालों से किमती ऊनी वस्त्र तैयार होते हैं। झारखण्ड भी भौगोलिक परिस्थिति कुछ इस तरह की है जिसमें बकरी पालन एक वरदान साबित हो

सकता है। यहाँ की जलवायु एवं पठारीय प्रदेश की संरचना बकरियों के लिए उपयुक्त एवं अनुकुल हैं जो कि यहाँ कि गरीबी को दूर करने का एक सटिक साधन हो सकता है।

नस्लें

किसी भी पशुधन के लिए सबसे प्रमुख बात होती है नस्ल में बिमारियों से लड़ने की प्रतिरोधक क्षमता। इसके अलावा नस्लों के रख – रखाव, प्रबंधन, होने वाली बीमारियाँ एवं आय–व्यय में होने वाले अनुपात को ध्यान में रख कर ही हम पशुधन रोजगार करते हैं।

प्रमुख नस्लें

शिरोही

प्राप्ति स्थान – यह नस्ल मुख्यतः राजस्थान के शिरोही जिला एवं गुजरात के पालमपुर जिला में पाई जाती हैं।

इस नस्ल की बकरियाँ ठोस एवं मध्यम आकार की होती हैं इनका रंग भूरा होता है। इसके ऊपर हल्का या गाढ़े रंग का धब्बा होता है। जबकि कुछ बकरियाँ पूर्णतः सफेद होती हैं। इस नस्ल की बच्चों का वजन सामान्यतः 2–2.5 किलो की होती हैं। शिरोही नस्ल की बकरियों का पहली बार बच्चा देने की उम्र 19–20 महीने होती हैं तथा 1 बच्चा प्रति किडिंग में होता है। यह बकरियाँ पूर्णतः घर में रखकर भी पाली जाती हैं। इस नस्ल की बकरियों का कान छोटा, गोलाकार तथा घुमावदार, मध्यम आकार के एवं ऊपर तथा पीछे की तरफ घुमे हुए होते हैं।

इस नस्ल की बकरियों की प्रतिरोधक क्षमता बहुत ही उत्तम होती है। भोजन को माँस में बदलने की अदभुत गुण होती हैं। इसकी शारीरिक वजन काफी अच्छी होती हैं। नर की पहचान लम्बी एवं मोटी दाढ़ी के तौर पर होती है। छः महीने में इनका वजन 20–30 किलो तक देखा गया है। यह प्रतिदिन 750 से 1 लीटर तक दूध भी देती है। इन नस्लों की पहचान वयस्कों का शारीरिक वजन नर 50 किलो तथा मादा 40 किलो तक रहता है। शारीरिक लम्बाई नर 80 सें.मी. तथा मादा 60 सें.मी., छाती की चौड़ाई नर 80 सें.मी. एवं मादा 62 सें.मी. होती है।

यह साल में दो बार बच्चे देती हैं बच्चों की संख्या की संभावना इसी अनुपात में होती है।

1 बच्चा – 25 प्रतिशत, 2 बच्चा – 65 प्रतिशत, 3 बच्चा – 10 प्रतिशत

सुर्ती

प्राप्ति स्थान – यह प्रजाति गुजरात के सुरत एवं बरोदरा में पाई जाती है।

एक अच्छी दूधारू नस्ल के रूप में जानी जाती है। इनकी पहचान मध्य आकार की नस्ल, सफेद रंग एवं अच्छी तरह विकसित थन होती हैं। शरीर छोटे–छोटे बालों से ढकी तथा खुरदर्रा होती हैं।

रोएं एक साल में 2 सें.मी. तक बढ़ती हैं। कान चपटा, मध्यम आकार का नीचे की ओर छुता हुआ होता है। नर एवं मादा दोनों की छोटी सिंग, पीछे तथा ऊपर की तरफ मुड़ी हुई होती हैं।

सामान्यतः बच्चे का वजन करीब 2 किलो तक होता है। पहली बार बच्चा 19–20 महीने के उम्र में एक बार में एक ही बच्चा होती है। यह नस्ल मुख्यतः माँस के लिए उपयोगी होता है। दूध देने की क्षमता ½ लीटर तक होती है। यह साल में दो बार बच्चे देती हैं जिनमें 1 या 2 बच्चे देने की संभावना, एक की 40 प्रतिशत तथा दो

की 60 प्रतिशत तक होती है। वयस्क नर का वजन 30 किलो तथा मादा 32 किलो शारीरिक लम्बाई 64 सें.मी., मादा 66 सेंमी., छाती की चौड़ाई 70.5 सें.मी मादा 71.5 सें.मी.

जमुनापारी

प्राप्ति स्थान – यह गंगा, जमुना और चम्बल नदियों के तटवर्ती क्षेत्र में पायी जाती हैं। मुख्यतः यह यमुना और चम्बल नदियों के बीच में स्थित इटावा जिले के सहसों और चकरनगर क्षेत्र में बहुतायत में पाई जाती हैं। इनका सर चौड़ा और नाक कुछ उभरा हुआ होता है। बकरों (नर) में दाढ़ी होती हैं।

कान 25–30 सें.मी. लम्बा तथा पीछे की ओर लटका होता है।

इस नस्ल का कोई निश्चित रंग नहीं होता है परन्तु शरीर पर काले व भूरे धब्बे या सफेद पर काले धब्बे, या शरीर काला, धब्बे सफेद या कान भुरे और शरीर सफेद होता है। शरीर की अपेक्षा पिछली टांगों पर घने लम्बे बाल इस नस्ल की विशेषता हैं। सिंग छोटे तथा चपटे होते हैं। बकरियों का आकार बड़ा एवं थन पूर्ण विकसित होता है। मादा का पीछला भाग भारी तथा नर का अगला भाग भारी होता है। साल में एक बार ही बच्चा देती है। यह बकरियाँ माँस एवं दूध दोनों के लिए उपयुक्त होती हैं। बकरियां 4–5 लीटर तक दूध प्रति दिन देती हैं। इस प्रजाति के वयस्क नर का वजन 50–60 किलो तक होता है तथा मादा 40–50 किलो तक। शरीर की लम्बाई (नर) 77 सेंमी. (मादा) 75 सें.मी. तथा छाती की चौड़ाई 80 सें.मी. (नर) तथा (मादा) 75 सें.मी.। यह साल में एक बार बच्चा देती हैं तथा दो बच्चों की संख्या का प्रतिशत 40 प्रतिशत होता है। जबकि एक बच्चा देने की संभावना 60 प्रतिशत होती है।

बीटल

प्राप्ति स्थान – पंजाब का स्यालकोट, गुजरांवाला एवं गुरदासपुर जिला तथा हरियाणा में। यह जमुनापारी से मिलती–जुलती जाति है। इनका रंग सफेद होता है जिसके ऊपर लाल–लाल धब्बे होते हैं। नर में दाढ़ी, नाक उठी हुई तथा लम्बे कान इनकी पहचान हैं। इनकी कद छोटी होती है, सींग चपटे तथा बाहर व पीछे की ओर मुड़े हुए। बकरी साल में एक बार ही बच्चा देती है तथा बच्चों की संख्या 1–2 होती हैं। मादा प्रति दिन 1 लीटर की दर से दूध देती है तथा 220 दिन की ब्यांत अवधी में 130 लीटर तक दूध देती है। वयस्क नर का वजन 50–60 किलो, मादा 35–40 किलो, शरीर की लम्बाई (नर) 86 सेंमी, (मादा) 70 सेंमी, छाती की चौड़ाई (नर) 86 सेंमी, (मादा) 70 सेंमी।

ब्लैक बंगाल

प्राप्ति स्थान – उत्तर प्रदेश, उड़ीसा तथा बंगाल।

शारीरिक रचना – इस प्रजाति का रंग काला होता है लेकिन किसी–किसी में यह रंग कत्थई होता है। बकरियों में दाढ़ी मिलती है। साल में दो बार बच्चा देती हैं तथा एक बार में 2 से 3 बच्चा देती हैं। बकरियां नाटे कद की होती हैं परन्तु शरीर बड़ा होता है। सिंग लम्बा तथा कान ऊपर की ओर उठे होते हैं। पीछे की अपेक्षा छाती अधिक चौड़ी होती है। इसकी खाल उच्च कोटी की होती है। साधारणतः यह जुड़वा बच्चों को जन्म देती हैं।

बरबरी

प्राप्ति स्थान – उत्तर प्रदेश में आगरा, एटा, मैनपुरी, इटावा, दिल्ली एवं हरियाणा।

शारीरिक रचना – कद छोटा होता है कान भी छोटे होते हैं। सिंग छोटे एवं सीधे। कोई निश्चित रंग नहीं होता है। ज्यादातर ये सफेद, भूरी, सफेद शरीर पर लाल एवं काले के धब्बे होते हैं। शरीर की तुलना में पैर छोटे होते हैं। बकरी का पीछला भाग आगे की तुलना में भारी होता है। थन पूर्ण विकसित एवं छेमी लम्बे होते हैं। यह 1 से 2 लीटर तक दूध प्रति दिन देती हैं। वर्ष में दो बार बच्चे देती हैं तथा एक बार में 2 से 3 बच्चे देती हैं।

वयस्क नर का वजन 40 किलो तथा मादा का वजन 24 किलो, शरीर की लम्बाई (नर) 70.5 सेंमी तथा (मादा) लम्बाई 58.7 सेंमी तक होती हैं।

अंगोरा

प्राप्ति स्थान – कश्मीर तथा तिब्बत के क्षेत्रों में। उत्तर प्रदेश के पहाड़ी क्षेत्रों में तथा गढ़वाल में पाया जाता है।

शारीरिक रचना – आकार छोटा तथा रंग सफेद, परन्तु भूरी लाल एवं मिश्रित रंगों में भी होती है। शरीर विशेष प्रकार के बालों से ढंका रहता है जो कि ऊनी कपड़ा बनाने के काम में आता है। शरीर में सर छोटा, आंखें चमकीली, चौड़ा थूथन तथा कान लम्बे, सींग चपटे एवं नुकीले होते हैं। पूंछ छोटी तथा शरीर बालों से ढंका रहता है। कमर सीधी एवं बदन सुडौल तथा मजबूत थन एवं छेमी मध्यम आकर का। बालों के नीचे से पश्मीना प्राप्त होता है जिससे फाईन चादर और मफलर तैयार होते हैं। दूध कम देती है।

मेहसाना

प्राप्ति स्थान – गुजरात का मेहसाना एवं राधनपुर जिले। इनका रंग गहरा भूरा या काला, नाक रोमन, नथुने चौड़े तथा पीछे की ओर मुड़े हुए। छोटी–छोटी दाढ़ी कान सफेद रंग के काले धब्बे वाले, शरीर मध्यम आकार का।

बीमार एवं स्वस्थ बकरियों में अंतर			
	परीक्षण	***स्वस्थ***	***बीमार***
1.	चेहरा देखने पर	चौकन्ना	सुस्त
2.	सर	डटा हुआ	नीचे झुका हुआ
3.	आँखें	खुली एवं चमकीली	उदास एवं किच्ची भरी हुई
4.	नाक	हल्की भींगी	सूखी या पानी स्त्राव
5.	चाल	गठीला	थका–थका
6.	प्रतिक्रिया	तुरंत	धीमी
7.	पैखाना	साधारण	ज्यादा कड़ा / ज्यादा पतला
8.	धड़कन (प्रति मिनट)	70–90	बढ़ा हुआ या घटा हुआ
9.	शरीर का तापक्रम	102^0F	घटा हुआ / बढ़ा हुआ
10.	सांस (प्रति मिनट)	12–30	बढ़ी हुई या घटी हुई
11.	घास चरना	साधारण	धीमी गति से
12.	खाना–पानी	साधारण	धीमी गति से

भेंड़ पालन

मनुष्य के अस्तित्वकाल से ही भेड़ पाली जा रही है। संसार की लगभग समस्त अच्छी नस्लों की भेड़ों का आविर्भाव स्पेन की 'मेरिनो' भेड़ों से हुआ है। मेरिनो स्पेनिश शब्द है। आज से लाखों वर्ष पूर्व भी भारतवर्ष के गंगा–यमुना के मैदानी क्षेत्रों में जंगली भेड़ पाली जाती थीं।

नस्लें

सम्पूर्ण भारतवर्ष में भेड़ पाली जाती है। विभिन्न जलवायु, गर्मी, सर्दी तथा आर्द्रता से प्रभावित इन भेड़ों के गुणों में अंतर देखा गया है अतः इन गुणों के आधार पर हम अपने देश को चार भागों में विभाजित करते हैं।

1. **सूखा पश्चिमी क्षेत्र** – इस क्षेत्र में सम्मिलित राजस्थान, गुजरात, पंजाब, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश तथा महाराष्ट्र प्रदेशों में देश के उत्पादित ऊन का लगभग 85 प्रतिशत ऊन पाया जाता है।
2. **पठारी दक्षिणी क्षेत्र** – इस क्षेत्र में पठार एवं चट्टान होने के कारण भेड़ों को उपयुक्त चरागाह सुविधा प्राप्त नहीं है। इनके शरीर पर ऊन के स्थान पर बाल पाया जाता है जो ऊँट के बाल की तरह होता है। इन भेड़ों को माँस हेतु पाला जाता है।
3. **पूर्वी भाग** – बहुत अधिक गर्मी एवं आर्द्रता के कारण इस क्षेत्र (बिहार एवं उड़ीसा) में मोटे ऊन वाली भेड़ पायी जाती हैं जिनके ऊन से मोटा कम्बल तैयार किया जाता है।
4. **हिमाच्छादित सर्द क्षेत्र** – बर्फीले क्षेत्र की इन भेड़ों से बहुत बारीक किस्म का ऊन पाया जाता है जिससे शाल, दुशाले एवं ऊनी वस्त्र बनाये जाते हैं। इसमें हिमाचल प्रदेश, जम्मू तथा काश्मीर के अतिरिक्त उत्तर प्रदेश तथा उत्तराखण्ड के जनपद भी सम्मिलित हैं।

भेड़ों की नस्ल

1. **चोकला/शेखावाटी**

   प्राप्ति स्थान – राजस्थान का चूरू, झुनझुन, जयपुर फतेहपुर सीकर।

   शारीरिक रचना – मध्यम आकार की इन भेड़ों के चेहरे पर ऊन नहीं पाया जाता है। चेहरे का रंग बहुधा मिश्रित लाल रंग का होता है जो गर्दन के मध्य भाग तक फैला होता है। कान नालीदार होते हैं तथा नर एवं मादा सींग रहित होते हैं। पतली पूंछ लगभग 8–10 इंच लम्बी होती है। पतला, बारीक एवं सफेद रंग का घना ऊन शरीर पर तथा पेट के निचले भाग एवं पैर पर भी मिलता है। सितम्बर–अक्टूबर माह में कतरे ऊन में पसीना युक्त पीलापन रंग होता है। प्रति ब्यांत एक ही मेमना जनन करने की इनकी क्षमता है। ऊन के रेशों की लम्बाई 1.5 से 2.5 इंच तथा वार्षिक ऊन उत्पादन लगभग 1800 ग्राम होता है। इनका ऊन वस्त्र बनाने के काम में आता है।

2. **नाली**

   प्राप्ति स्थान – श्रीगंगानगर (राजस्थान) जनपद के हनुमानगढ़, सूरतगढ़, पल्लू तथा हरियाणा के सरहदी चुटाला तथा फाजिल्का आदि स्थानों पर नाली भेड़ पायी जाती है।

   शारीरिक रचना – नाली सींग रहित भेड़ होती है। कान लम्बे, चौड़े, चपटेदार पत्ती की भांति एवं नीचे गिरे हुए होते हैं। सुनहला, हल्का भूरे रंग का चेहरा होता है जो गर्दन के कुछ भाग तक फैला होता

है। अधिकतर गहरा भूरा रंग देखने को मिलता है, परन्तु ऊन सफेद रंग की हो होती है। पूंछ लम्बी होती है। दुबली पतली ये भेड़ अकिधतर कमजोर होती है तथा इनका शरीर भार सामान्यतः 19.0 से 22.0 किलो होता है। शरीर के अतिरिक्त माथा, ललाट, पेट का निचला भाग एवं टांगों पर भी ऊन पाया जाता है। 7 से 8 सेमी. लम्बे ऊन के धागों का कुल उत्पादन लगभग 1400 ग्राम से 2200 ग्राम प्रति भेड़ प्रति वर्ष होता है।

3. **बीकानेरी अथवा मागरा**

प्राप्ति स्थान – बीकानेर तथा सूरतगढ़, हनुमानगढ़ – श्रीगंगानगर जनपद (राजस्थान) में अधिक पायी जाती है।

शारीरिक रचना – इनकी दोनों आंखों के चारों ओर भूरे रंग का गोलाकार घेरा तथा बहुत ही छोटे–छोटे नालीदार कान प्रमुख पहचान हैं। छोटे आकार का सिर, लम्बा चेहरा, उभरी हुई नाक तथा गठीला शरीर होता है। सिर एवं चेहरा ऊन रहित होते हैं। नर एवं मादा सींग रहित होते हैं। पूंछ मध्यम लम्बाई की होती है। आंखें चमकीली तथा खुर काले रंग के होते हैं। चेहरा, ललाट तथा थुथन पर भूरे रंग का ऊन देखा जाता है। इन भेड़ों का शरीर भार नाली की अपेक्षा अधिक होता है। कार्तिक माह में कतरा ऊन पसीने से सना हुआ पीला होता है।

4. **मारवाड़ी**

प्राप्ति स्थान – राजस्थान प्रदेश के जैलौर, मारवाड़, पाली, नागौर, बाडमेर तथा गुजरात के ज्योरिया क्षेत्र में ये भेड़ पायी जाती है।

शारीरिक रचना – सींग रहित मारवाड़ी भेंड़ों का सिर चेहरा तथा गर्दन का कुछ भाग काले रंग का होता है। कान छोटे–छोटे नालीदार एवं पूंछ पतली तथा छोटी और पैर लम्बे होते हैं।

खुरदरा मोटे ऊन का उत्पादन प्रति भेड़ प्रति वर्ष लगभग 1400 ग्राम होता है। इनके ऊन से मोटी ऊनी दरियां तथा कम्बल तैयार किये जाते हैं। इनके मेमनों को 7–8 माह आयु पर माँस हेतु बेच कर मालिक अपना जीविकोपार्जन करते हैं।

5. **मालपुर**

शारीरिक रचना – लम्बी टांग वाली इन भेड़ों का मुंह भूरे रंग का तथा 2.0 से 2.5 इंच आकार का छोटा एवं नालीदार कान होते हैं। नर तथा मादा दोनों ही सींग रहित होते हैं। पूंछ 10 इंच लम्बी तथा पतली होती है। सफेद रंग का परन्तु बहुत ही मोटा ऊन होता है। ऊन उत्पादन क्षमता लगभग 1200 ग्राम वार्षिक है। मोटे एवं खुरदुरे ऊन शरीर पर बहुत थोड़ी संख्या में मिलते हैं। ऊन में बाल का भाग 72 प्रतिशत तथा मोटाई 42.0 माईक्रान होती है। इन भेड़ों में दूध उत्पादन क्षमता देखी गई है तथा 105 दिनों की अवधि में प्रतिदिन लगभग 200 ग्रा. औसत दूध उत्पादन है।

6. **सोनाड़ी**

प्राप्ति स्थान – उदयपुर, डूंगरगढ़ तथा चित्तौरगढ़ (राजस्थान) है।

शारीरिक रचना – लम्बी टांगों वाली मालपुरा नस्ल की भेड़ों का छोटा कद एवं 17–18 सेमी. लम्बे, चपटे एवं नीचे गिरे हुए कानों वाली इन भेड़ों का मुँह एवं चेहरा तथा गर्दन का आधा भाग हल्के भूरे रंग का होता है। इनकी पूंछ 30–32 सेमी. लम्बी तथा पतली होती है। नर एवं मादा सींग रहित होते

हैं। इनके शरीर पर सफेद रंग का मोटा ऊन पाया जाता है। पेट के निचले भाग एवं टांगों पर ऊन नहीं होता है। इनके थन विकसित होते हैं जिनसे अच्छी मात्रा में दूध उत्पादन होता है। इनके ऊन में बाल तथा केम्प का भाग अधिक पाया जाता है। वार्षिक ऊन उत्पादन क्षमता 900–12000 ग्राम है

7. **पत्तन वाड़ी या काठियावाड़ी**

प्राप्ति स्थान – गुजरात प्रदेश के कच्छ, जामनगर, भावनगर, जूनागढ़, राजकोट, सुरेन्द्रनगर तथा मेहसाना जनपद के चनसभा, सीधापुर, कलोल, तथा पाटन जनपदों में पायी जाने वाली पट्टनवाड़ी भेड़ तीन प्रकार की होती है, अ. सौराष्ट्र क्षेत्र की छोटे शरीर एवं लाल रंग के चेहरे वाली बारीक ऊन पैदा करने वाली भेड़ ब. पश्चिमी तथा उत्तरी पूर्वी भाग में पायी जाने वाली लम्बी टांग, लम्बा शरीर, लम्बे नालीदार कान तथा तोते की नाक की भांति ऊपर उठे हुए नाक वाली भेड़ स. पूर्वी दक्षिणी गुजरात में पायी जाने वाली बड़े आकार की शरीर वाली भेड़ जिनसे मोटा ऊन मिलता है तथा जिनमें माँस उत्पादन की क्षमता है।

शारीरिक रचना – गर्दन के निचले भाग पर मुर्गे की तरह माँस के लोथड़े लटकते हैं। ये भेड़ें सींग रहित होती है। ऊन का रंग हल्का पीलापन लिए सफेद रंग का होता है। घुटने के नीचे के ऊन का रंग भूरा होता है। पूंछ छोटी होती है। लम्बे बारीक रेशे वाले ऊन का वार्षिक उत्पादन लगभग 1400 ग्राम है। इनका थन विकसित होता है, अतः ये दूध उत्पादन भी करती है।

8. **जालौनी**

प्राप्ति स्थान – मारवाड़ी नस्ल से मिलती–जुलती जालौनी भेड़ उत्तर प्रदेश के झांसी, ललितपुर, जालौन एवं हमीरपुर जनपद में पायी जाती है। सूखाग्रस्त मूल प्रदेश राजस्थान से प्रति वर्ष हजारों की संख्या में चुगने हेतु लाये गये मारवाड़ी भेड़ों के प्रजनन से जालौनी भेड़ें विकसित की गयी जिनका मोटा ऊन भारतीय गलीची ऊन के लिए उपयोगी है।

शारीरिक रचना –वार्षिक ऊन उत्पादन दर लगभग 800 से 1200 ग्राम है तथा 100–130 दिनों तक प्रतिदिन 200–300 ग्राम दूध उत्पादन भी हो जाता है। ये भेड़ें सींग रहित, 8–9 इंच लम्बी पूंछ, 16 सेमी. लम्बे, चपटे तथा नीचे गिरे हुए कान वाली होती है, जिनके पेट के निचले भाग तथा टांगों पर ऊन नहीं पाया जाता है।

9. **मुजफ्फरनगरी**

प्राप्ति स्थान – उत्तर प्रदेश के मुजफ्फरनगर जनपद में पायी जाती है।

शारीरिक रचना – काले रंग की लम्बी और नीचे गिरे कान वाली सींग रहित, चपटे मुंह वाली सफेद रंग की इन भेड़ों को 45 सेमी लम्बी पूंछ होती है। ऊन सफेद तथा मोटा होता है। इनका कद आकार तथा डील–डोल भी बड़ा होता है। इन्हें अधिकतर माँस हेतु पाला जाता है।

10 **दक्कनी**

प्राप्ति स्थान – महाराष्ट्र प्रदेश के नासिक, पुणे, अहमदनगर, सांगली, सतारा, कोल्हापुर, नान्देड़, शोलापुर, औरंगाबाद तथा आन्ध्र प्रदेश के महबूबनगर, नालगोण्डा, बारंगल मेढ़क, हैदराबाद एवं कर्नाटक के बीजापुर, बीदर, बेलगांव एवं गुलबर्ग जनपदों में पायी जाने वाली भेड़ें।

शारीरिक रचना – आधी शरीर में काली तथा शेष काले रंग के शरीर पर सफेद या भूरा रंग मिश्रित

होती है। मेढ़ों के सींग तथा भेड़ सींग रहित होती है। लम्बे, चपटे कान के साथ 8–10 सेमी. आकार की छोटी पूंछ होती है। खुरदुरा, फैला हुआ तथा बहुत मोटा बाल मिश्रित ऊन इनके शरीर पर पाया जाता हे। इनकी गर्दन पतली, सीना एवं चेहरा चपटा तोते की भांति ऊपर उठा हुआ होता है। ऊन उत्पादन क्षमता लगभग 800 ग्राम ही होती है।

11. **मान्ड्या, उपनाम बन्नूर या बन्डूर**

प्राप्ति स्थान – कर्नाटक के मान्ड्या, मैसूर, बंगलौर, कोलार आदि जनपदों में पायी जाने वाली इन भेड़ों का नामकरण 'बन्डर' ग्राम के आधार पर किया जाता है।

शारीरिक रचना – सफेद रंग, छोटे आकार की ठोस एवं गठीले शरीर वाली नई भेड़ों के कान लम्बे, चपटे पत्ती की तरह एवं नीचे गिरे होते हैं। छोटी तथा लम्बी पूंछ होती है। नर एवं मादा दोनों ही सींग रहित होते हैं। इनके शरीर पर बहुत मोटा बाल होता है और इनकी उपयोगिता दूध तथा माँस उत्पादन हेतु मानी गयी है। माँस वाली इन भेड़ों के गर्दन के समीप माँस के दो लोथड़े लटकते रहते हैं।

12. **रामनद्**

प्राप्ति स्थान – तमिलनाडू के रामनद् एवं तिरूनलवेल्ली जनपदों में पायी जाती है।

शारीरिक रचना – अधिकांशतः ये भेड़ गहरे भूरे रंग अथवा काले रंग की होती है। छोटी पूंछ वाली तथा छोटे आकार अथवा 2.4–2.6 इंच ऊँची सींग रहित इन भेड़ों का शरीर भार लगभग 30 किलो होता है। मेढ़ों के सिर पर घुमावदार सींग होता है। इनके शरीर के बाल की उपयोगिता न होने के कारण बाल कतरे नहीं जाते हैं। इनकी उपयोगिता माँस हेतु है।

13. **त्रिची ब्लैक** – तमिलनाडु के तिरूचिरपल्ली जनपद में पायी जाने वाली तथा रामनद भेडों से मिलती–जुलती ये भेड़ काले रंग की होती है। इन्हें माँस तथा मैंगनी के खाद हेतु पाला जाता है।

14. **नेलौर**

प्राप्ति स्थान – आन्ध्र प्रदेश के नेलौर, प्रकाशम, गुन्डूर तथा औंगोल जनपद।

शारीरिक रचना – इन भेड़ों को तीन रंगों में पाया जाता है। अ. कुछ भेड़ों का रंग सफेद अथवा सिर, गर्दन, पीठ व टांगों पर भूरा धब्बा होता है, जिन्हें 'पाला' नाम से पुकारा जाता है ब. भूरे रंग वाली 'डोरा' भेड़ तथा स. सफेद रंग वाली परन्तु जबड़े तथा आंख के चारों ओर काली धब्बेदार –जीडीपी' भेड़/ मेढ़ों के सींग घुमावदार तथा पीछे मुड़े होते हैं। भेड़ सींग रहित होती है। लम्बे कान तथा चेहरा भी लम्बा होता है। पूंछ छोटी परन्तु शरीर का आकार बहुत बड़ा होता है। इनमें वयस्कता 30 माह आयु पर आती है। ये माँस के लिए पाली जाती है।

15. **हसन**

प्राप्ति स्थान – कर्नाटक प्रदेश के हसन तथा चिकमंगलूर।

शारीरिक रचना – छोटी आकार की हसन भेड़ सींग रहित एवं ऊपर उठी नाक तथा नीचे गिरे कान वाली होती हैं। शरीर एवं ऊन का रंग सफेद, भूरा तथा काला होता है। लगभग 600 ग्राम वार्षिक उत्पादन वाला खुरदुरा बाल घरेलू कार्य में तथा भेड़ माँस हेतु पाली जाती हैं।

16. **शहाबादी**

प्राप्ति स्थान – बिहार प्रदेश के पटना, गया, शहाबाद, आरा, छपरा तथा सासाराम जनपद।

शारीरिक रचना – इन भेड़ों की औसत ऊँचाई, लम्बे पैर, उभरी नाक तथा पूंछ पिछले पैर के घुटने के नीचे तक लम्बी एवं पतली देखी गयी है। शरीर पर मोटे सफेद ऊन के साथ चेहरे पर गहरा भूरा या काला भूरा रंग का ऊन होता है। औसत ऊन उत्पादन प्रति भेड़ प्रति वर्ष 1200–1600 ग्राम होता है परन्तु यह ऊन भारतीय गलीची ऊन के लिए प्रसिद्ध है। भेड़ों तथा मेढ़ों का गठीला एवं शीघ्र विकसित शरीर हो जाने के कारण 6–8 माह आयु पर ही नर मेमने माँस हेतु बेच दिए जाते हैं।

17. **छोटा नागपुरी**

प्राप्ति स्थान – झारखण्ड के छोटानागपुर के संथाल परगना में ये भेड़ पायी जाती है। इन भेड़ों की लम्बी गर्दन, छोटा नुकीला चेहरा, पतली टांग, छोटी पूंछ तथा शरीर भार 20–22 किलो होता है। इनके शरीर पर हल्का गंदा भूरा रंग का मोटा ऊन पाया जाता है।

18. **गद्दी अथवा भद्दरवाह**

प्राप्ति स्थान – जम्मू के भद्दरवाह तहसील।

शारीरिक रचना – ये भेड़ छोटे आकार, बहुत छोटे–छोटे कान तथा पूंछ, सींग रहित, चंचल तथा सफेद ऊन वाली होती है। चेहरे पर का ऊन भूरा होता है। मेढ़ों को सींग होता है।

19. **गुरेज -**

प्राप्ति स्थान – जम्मू प्रदेश में समुद्र तल से 8000 फीट की ऊँचाई पर बसे करनाह कस्बा एवं गुरेज नामक स्थान।

शारीरिक रचना – ये भेड़ सींग रहित होती है। ठोस एवं अत्यधिक शरीर भार वाली इन भेड़ों की चपटी एवं छोटी पूंछ होती है। कान भी छोटे होते हैं। ऊन केम्प रहित सफेद रंग का होता है जिनकी लम्बाई 12–15 सेमी. होती है। भेड़ दूधारू होती है और एक साथ दो बच्चे जनन करती है। अधिकांशतः इन्हें खूंटा पर बांध कर खिलाया जाता है, परन्तु बर्फ गल जाने पर ग्रीष्म ऋतु में बुगियालों में चुगने के लिए ले जाई जाती है।

20. **रामपुर बुशायर -**

प्राप्ति स्थान – हिमाचल प्रदेश का महसू जनपद एवं सीमावर्ती स्थान इनका मूल स्थान रहा है। उत्तरांचल के उत्तर काशी, चमोली एवं पिथौरागढ़ जनपदों में भी भारी संख्या में पायी जाती है।

शारीरिक रचना – कान लम्बे परन्तु नीचे गिरे हुए होते हैं। भेड़ सींग रहित होती है, परन्तु मेढ़ों के सीधे तथा ऊपर की ओर उभरी नाक होती है। सफेद रंग का वार्षिक ऊन उत्पादन लगभग 1000 ग्राम होता है जो ऊनी वस्त्रों के निर्माण के लिए प्रयोग किया जाता है। बर्फ पिघल जाने पर गर्मी के दिनों में बुगियालों में चुगते–चुगते भेड़ तिब्बत की सीमा तक चली जाती है।

विदेशी भेड़ों की प्रमुख नस्लें – विदेशी भेड़ ऊन तथा माँस के लिए पाली जाती हैं। ऊनी धागों की बारीकीपन तथा लम्बाई के आधार पर विदेशी भेड़ों का वर्गीकरण निम्न प्रकार किया गया है।

अ. अति मुलायम एवं बारीक ऊन – रूस एवं आस्ट्रेलिया की 'मेरिनो' भेड़, अमेरिका की 'रेम्बुलेट' भेड़, इंग्लैण्ड की 'कारीडेल' तथा आस्ट्रेलिया की 'पोलवर्थ' भेड़ों का अपना विशिष्ट स्थान है।

ब. 'कारीडेल' पनामा 'डारसेट' एवं 'सिमेट' आदि नस्लें।

स. लम्बे ऊनी धागे - लिंकन, लिसेस्टर, रोमनी मार्श, रामपुर बुशायर, बोर्डर लिस्टर तथा लिस्टर आदि।

द. छोटे–छोटे धागे – साउथ डाउन (सींग रहित परन्तु सफेद चेहरा तथा ऊन), डारसेट हार्न (सींग वाली सफेद ऊन सहित भेड़) सफोक, डारसेट तथा हैम्पशायर डाउन (सींग रहित परन्तु काले तथा भूरे ऊन वाली भेड़।

माँस हेतु प्रजातियाँ

विदेशी भेड़ों की प्रजातियां

ऊन उत्पादन करने वाली भेड़ों की प्रमुख नस्लें निम्नलिखित हैं।

1. **रैम्बुलेट अथवा रैम्बुए** – रैम्बुलेट भेड़, चौकानी, फुर्तीली, सीधी पीठ वाली सामान्य शरीर भोर की होती है। नथुने के बीच का भाग चौड़ा, आंखें बड़ी और आंखों के नीचे भी ऊन होते हैं परन्तु ऊन रहित होना ही उन्हें अच्छी तरह देख सकने के लिए हितकर है। इनकी नाक बड़ी ओठ मोटे होते हैं। अधिकतर ये भेड़ें सींग रहित होती है। जिन भेड़ों में सींग होते हैं, उनकी छाती चौड़ी, गहरी और भरी हुई होती है और अगले पैरों के पास काफी चौड़ी कमर और पीठ मजबूत, सीधी और चौड़ी होती है। पैर और खुर सीधे तथा हड्डियां मजबूत होती है। इनका ऊन बारीक, आकर्षक, चमकदार, घना, लम्बा और दूधिया सफेद होता है। पेट पर काफी मात्रा में ऊन होता है। ठंडे जलवायु वाले देशों में नर तथा मादा भेड़ से क्रमशः 7–10 किलो तथा 4.5 से 0.8 किलो ऊन प्राप्त किया जाता है। ऊन के रेशों की वार्षिक लम्बाई 10–12 सेमी. तक होती है। एक वर्ग इंच में 8000–10,000 रेशे पाये जाते हैं जो 60–64 काउन्ट के होते हैं। स्थानीय भेड़ों से प्रजनन कर देश के लगभग सभी प्रदेशों में इनके वर्ण संकर उत्पादन हेतु प्रयास जारी है।

2. **मेरिनो**

   प्राप्ति स्थान – आस्ट्रेलिया एवं रूस के स्टेवरोपोलस्कावा नामक स्थान से लाकर भारतीय कृषि अनुसंध ाान परिषद, नई दिल्ली द्वारा संचालित भैसौड़ा (नवगढ़, वाराणसी), शिवपुरी (मध्य प्रदेश), छपरा (बिहार), ममीडीपल्ली (हैदराबाद, आन्ध्र प्रदेश), आविकानगर (जयपुर, राजस्थान) मन्नाटनूर (तमिलनाडु) पूना (महाराष्ट्र), पत्तनवाड़ी (गुजरात), तथा जीऊली (काश्मीर) के भेड़ प्रजनन प्रक्षेत्रों पर इन्हें वर्ण संकर भेड़ उत्पादन हेतु पाली जा रही है। लम्बाई एवं आकार में रैम्बुलेट की तुलना में मेरिनो छोटी होती है। आविकानगर (मालपुरा, राजस्थान) पर भारतीय चाकला से संकरण करके 'आविका वस्त्र' तथा मालपुर से संकरण कराकर 'अविकालीन' नस्लों का सृजन किया गया है।

3. **पोलवर्थ -** इस नस्ल की उत्पत्ति 1880 में आस्ट्रेलिया के विक्टोरिया देश में हुई जिसकी उत्पत्ति के लिए लिंकन तथा मेरिनो नस्लों के बीच संकरण द्वारा प्राप्त भेड़ों का मेरिना मेढ़ों के साथ संकरण कराया गया था। प्राप्त संतति में से कुछ वांछित मेमनों का चयन कर उन्हें पोल वर्थ नस्ल में विकसित किया गया। अतः पोलवर्थ नस्ल की भेड़ों में 3/4 रक्त मेरिनो और 1/4 रक्त लिंकन नस्लों का है। इन भेड़ों से प्राप्त ऊन की वार्षिक लम्बाई 10 सेमी तथा 58 काउन्ट होती है। पोलवर्थ भेड़ सींग रहित तथा सींग वाली होती है।

   भारत वर्ष में ये भेड़ पशु लोक (उ.प्र.) डंडा, कर्मी, रोपड़धार, बारपेटा, पांगू आदि स्थानों पर शुद्ध प्रजनन एवं संकर मेमना पैदा करने के लिए रखी गयीं।

4. **कारीडेल** – यह अपेक्षाकृत नई नस्ल है।

प्राप्ति स्थान – इसकी उत्पत्ति सर्वप्रथम न्यूजीलैंड में तथा पुनः आस्ट्रेलिया में हुई। इन नस्लों में ऊन तथा माँस दोनों के ही गुण पाये जाते हैं। यह संकर नस्ल लम्बे ऊन वाली भेड़ों और मेरिनो के संयोग से उत्पन्न हुई। न्यूजीलैंड में यह नस्ल 1874 ई. में तैयार की गयी तथा आस्ट्रेलिया के विक्टोरिया प्रान्त में 1882 में विकसित हुई। कारीडेल भेड़ से प्रतिवर्ष लगभग 4 से 5 किलो 50–58 काउन्ट वाला ऊन प्राप्त हो जाता है।

शारीरिक रचना – इन भेड़ों का चौड़ा मजबूत तथा ऊन वाले सिर पर सींग नहीं होता है। आंखों के समीप भी ऊन नहीं होता है। नथुने चौड़े और खुले हुए तथा काले रंग के होते हैं। गर्दन चौड़ी तथा मजबूत होती है। पीठ गर्दन से पुट्ठे तक सीधी, लम्बी और चौड़ी, पसलियां उठी हुईं और गहरी होती हैं। छोटे–छोटे मजबूत पैर काले रंग के खुर के साथ होते हैं।

कारीडेल भेड़ 1954–55 में ही आस्ट्रेलिया से आयात कर उत्तरांचल के पशु लोक प्रक्षेत्र (देहरादून) में रखी गयी। श्रीनगर (काश्मीर) में भी इन्हें भली प्रकार पाला जा रहा है।

माँस हेतु भेड़ जिनसे ऊन की मात्रा अपेक्षाकृत कम पाई जाती है, निम्न प्रकार हैं।

1. **साउथ डाउन -** ये भेड़ें आकार में छोटी रहती है जिन्हें प्रायः माँस एवं खाल हेतु पाला जाता है। इनका शरीर गठीला और भरा हुआ होता है। सिर चौड़ा, छोटा और सींग रहित होता है। गर्दन छोटी होती है। चेहरा छोटा, शरीर भूरा, आंखें बड़ी–बड़ी व चमकीली होती हैं। पुट्ठे भरे हुए परन्तु पैर छोटे होते हैं। खुर काले होते हैं। नर भेड़ों तथा मादा भेड़ का शरीर भार क्रमशः 80–100 किलो तथा 50–60 किलो होता है। 50–55 काउन्ट वाले वार्षिक ऊन उत्पादन की मात्रा 3.0 किलो तक देखी गयी है। इन भेड़ों में 2–3 मेमने एक साथ जनन करने की क्षमता है। इन मेमनों का शरीर विकास भी तीव्र गति से होता है।

2. **लिंकन -** लिंकन नस्ल की भेड़ विश्व की सबसे बड़ी भेड़ें हैं। इनका ऊन मोटा, लम्बा तथा भारी होता है। चेहरा सफेद परन्तु नथुने, होंठ तथा पैर काले होते हैं। भेड़ सींग रहित होती है। कान बड़े तथा झुके हुए होते हैं। कारीडेल, पोलवर्थ आदि नस्लें लिंकन की ही देन हैं। मेढ़ों और भेड़ों का वयस्क शरीर भार क्रमशः 160 किलो व 115 किलो होता है। इन भेड़ो से 20–30 सेमी लम्बा तथा 36 काउन्ट वाला वार्षिक ऊन 6 से 7 किलो तक प्राप्त होता है।

3. **सफॉक -** इन सींग रहित भेड़ों का चेहरा लम्बा तथा काला, आंखें बड़ी–बड़ी तथा लम्बी गर्दन होती है। पैर और खुर सीधे तथा काले होते हैं और घुटनों तक ऊन भरा होता है। मादा भेड़ से वार्षिक ऊन उत्पादन 2.5 से 3.0 किलो तक पाया जाता है।

साउथ डाउन मेढ़ों के संकरण से उत्पन्न सफॉक भेड़ चुगने हेतु बहुत दूर तक चली जाती है। इनमें मातृत्व गुण अच्छा होने के कारण मेमनों का शरीर विकास दर अच्छा है तथा मेमने एवं वयस्क अधिक भारी और माँसल होते हैं।

4. **डारसेट** – डाउन आर्थात् साउथ डाउन, हैम्पशायर डाउन और आक्सफोर्ड डाउन वर्गों की भेड़ों में ही डारसेट नस्ल की भेड़ है। सींग रहित इन भेड़ों का चेहरा भूरे रंग का होता है। नर मेढ़ा तथा मादा भेड़ 80–115 किलो तथा 60–80 किलो शरीर भार की होती है। इनमें भी 2–3 मेमने एक साथ जनन करने की क्षमता है।

फर उत्पादन करने वाली भेड़

रूस महाद्वीप के बुखारा प्रदेश की काराकुल नस्ल की भेड़ पेल्ट उत्पादन हेतु प्रसिद्ध है। रूस से आयातित काराकुल भेड़ों को केन्द्रीय भेड़ ऊन संस्थान, आविकानगर, जयपुर, राजस्थान के माजी–सा–की प्याऊ, बीकाने, स्थित परिसर के प्रक्षेत्र पर पाला जा रहा है। काराकुल भेड़ों का ऊन भूरा अथवा बहुत ज्यादा काला और खुरदुरा होता है। नवजात मेमनों की खाल पर घने मजबूत और घुंघराले गुच्छेदार ऊन होते हैं जो काफी चमकदार होते हैं। नवजात मेमनों के जन्म के 24 घंटे में वध कर उनका खाल उतार लिया जाता है जो बहुमुल्य पेल्ट के रूप में प्रयोग किया जाता है।

दूध देने वाली भेड़ – भारत वर्ष में काश्मीर की भेड़ तथा तुर्की, ईरान, यूनान एवं चेकोस्लाविया में पायी जाने वाली भेड़ दूध के लिए उल्लेखनीय है।

इन देशों की भेड़ वर्ष के अधिकतर भाग में जब बर्फ पड़ने लगता है, बर्फ की चादर के नीचे ही दबी पड़ी रहती है और अपने शरीर के ऊनी कोट की गर्मी से बचते हुए चारागाहों में चुगती रहती है।

गर्भवती भेड़ों की देखभाल

गर्भावस्था के दौरान बड़ी आयु की भेड़ों की अपेक्षा (मेडेन्स) की देख–रेख अधिक महत्वपूर्ण है क्योंकि उसके गर्भ में पल रहे मेमने के विकास के अतिरिक्त अभी उसके शरीर का भी विकास, जो पूर्ण नहीं हुआ है, होना है।

90–150 दिन की गर्भ धारण अवधि में निम्न सावधानियां बरतनी चाहिए।

1. गर्भित भेड़ों को जंगली पशु जैसे कुत्ते, सियार आदि के भय से बचाना चाहिए।
2. उन्हें खाई, गड्ढे या ऊबड़–खाबड़ स्थान पर घूमने–फिरने से रोकना चाहिए।
3. उन्हें साफ पानी पीने को देना चाहिए।
4. उन्हें हरा मुलायम चारा तथा मुलायम पत्तियां खाने को दी जायें।
5. गर्भवती भेड़ को आवश्यकतानुसार संतुलित भोजन दिया जाये जो पाचनशील एवं पौष्टिक एवं रसीला हो।
6. गर्भवती भेड़ों का बाड़ा साफ–सुथरा हवादार एवं मुलायम बिछावन सहित हों।
7. उनके बाड़े में अधिक संख्या में भेड़ न रखी जायें।
8. उनके बाड़े में मेढ़ा अथवा हागेट दर मेमना (9–10 माह आयु) भी न रखा जाये।
9. मेमना जनन करते समय जनन क्रिया में आवश्यकतानुसार सहयोग किया जाये।
10. जनन करते ही भेड़ द्वारा मेमनों का शरीर चाटकर उनके नाक, थुथुन, मुंह पर लगी झिल्लियों को साफ कर देना चाहिए ताकि मेमने को सांस लेने में आसानी हो और मेमना दूध पीने के लिए मां के थन चाटने एवं दूध पीने की कोशिश कर सकें, नवजात मेमने को चाटने में माँ केवल चार मिनट समय लेती है।
11. मेमना कुछ ही समय में अपने पैरों पर खड़ा हो जाता है और मां के थन की ओर बढ़ने लगता है। इस समय भेड़ को अच्छे मातृत्व का प्रदर्शन करते हुए मेमनों को दूध पिलाना चाहिए। अपने पैरों पर खड़े होने के लिए जन्म से कुल 3.9 मिनट समय लगता है। जनन के 20 मिनट समय के अन्दर ही भेड़ मेमने को अपने थन का दूध पिला देती है।

12. जनन के 2–3 घंटे उपरान्त ही गर्भ नाल निकल जाते हैं जिसे फेंक दिया जाये।
13. मेमना जनन के कुछ घंटों तक भेड़ को भोजन नहीं देना चाहिए, अन्यथा नवजात मेमने की ओर से उसका ध्यान भोजन की ओर चला जाता है।
14. थन में दूध के अभाव की दशा में मेमनों को बकरी का गुनगुना दूध पिलाना चाहिए।
15. प्रातः चरागाह जाने से पूर्व तथा सायं चरागाह से वापसी पर मेमने को मां का दूध प्राथमिकता के आधार पर पिला देना चाहिए।
16. हर एक मेमने के गले में बंधी रस्सी को जमीन में गड़ी सामूहिक रस्सी से बांध दिया जाये ताकि सभी मेमने खुशी–खुशी खेलते रहें।
17. 2–3 सप्ताह आयु वाले मेमने पास के तिनके चुगने लगते हैं। अतः उन्हें रसीला हरा चारा या हरी पत्तियां खाने हेतु दी जायें।
18. जनन के उपरान्त मां तथा मेमने की पहचान के लिए उन दोनों के शरीर पर पित्रिक एसिड केमिकल से एक चिन्ह या संख्या अंकित कर देनी चाहिए।
19. एक से डेढ़ माह आयु पर अथवा 3 माह आयु तक उनके पूंछ के दूसरे–तीसरे काकसिजियल हड्डी के जोड़ पर रबर बैण्ड पहना दिया जाये ताकि 15–20 दिन में अपने आप पूंछ कट कर गिर जाये। यह रक्त विहीन पुंछ काटने की विधि है।
20. 3–4 माह के बीकर्स को उनके कान पर टैटू नम्बर लगा दिया जाये। नालीदार छोटे कान होने पर उनके पिछले जांघों के अन्दर के चमड़े पर अंक टैटू कर दिया जाये। गोदना को टैटू कहा जाता है।

भेड़ों की आयु की जानकारी के लिए उनके दांत का महत्व

दांत का मुख्य कार्य घास चुगना, घास या झाड़ी, टहनी काटना, कुतरना एवं जुगाली करना होता है। भेड़ों के ऊपरी जबड़े में सामने के कर्त्तन इनसाईजर्स दांत नहीं होते हैं और दांत विहीन दाढ़ को डेन्टन पैड कहा जाता है। ऊपर के होंठ फटे होने के कारण भेड़ों को अति न्यून (1–2 सेमी.) घास चुगने में आसानी होती है। नीचे के जबड़े में 4 जोड़ी कर्त्तन दांत होते हैं जो घास काटने के काम होते हैं। चबाने का कार्य पिछले भाग के मोलर्स तथा प्रिमोलर्स द्वारा होता है। सभी दांत प्रारम्भिक आयु पर दूध या अस्थायी के दांत एवं तत्पश्चात् स्थायी होते हैं। अल्पकालीन दूध के दांत 20 तथा स्थायी दांत 32 होते हैं। स्थायी दांत में 4 जोड़ा कर्त्तन दांत, नीचे तथा ऊपर क जबड़ों के 12–12 (6–6 जोड़ा) पिसने वाले मोलर्स तथा प्रिमोलर्स होते हैं जिनका योग 32 होता है।

दांत की सहायता से आयु की जानकारी करना

जन्म के समय अथवा ठीक बाद में ही एक या दो दूध के कर्त्तन दिखाई देते हैं। एक माह आयु होने पर ही लगभग सभी 8 अगले दांत निकल आते हैं। ऊपर नीचे के दोनों जबड़ों में तीन स्थायी मोलर दांत होते हैं। तीन माह की अवस्था में चौथा मोलर निकल आता है जो स्थायी हो जाता है। 9 माह की आयु पर पांचवां अस्थायी मोलर उभर आता है। लगभग 10 माह में छठा मोलर (स्थायी) दांत निकल जाता है।

मेमने एवं वयस्क भेड़ के दांत की बनावट तथा पहचान

लगभग 6 वर्ष आयु प्राप्त होने पर भेड़ के एक या अधिक कर्त्तन दांत गिर जाते हैं और भेड बुढ़िया के नाम से जानी जाती है। सभी कर्त्तन दांत गिर जाने पर उसे गमर कहा जाता है। कर्त्तन दन्त का यदि प्रथम जोड़ा गिर

गया हो तो प्रथम कर्त्तन जोड़ा यह समझ कर कि अभी निकला नहीं है, उस भेड़ की आयु 13–14 माह आंकी जा सकती है, जबकि वह 6 वर्ष की बूढ़ी भेड़ है। अस्थायी दांत सदा नुकीले, चमकीले, कम चौड़े और स्थायी दांत की तुलना में छोटे होते हैं। इनमें धारियां पड़ जाती हैं जो जुगाली करते रहने के कारण काली पड़ जाती हैं।

सारणी संख्या 1 : भेड़ों में आयु (पुरोहित, 1973)

अस्थायी कर्त्तन दांत	निकलने का समय	अस्थायी दाढ़	निकलने का समय
मध्य, मध्य की बगल वाला तीसरा कोने वाला	जन्म पर या तुरंत बाद, आयु (3–4 माह)	पहला, दूसरा और तीसरा –	जन्म पर या एक सप्ताह आयु –
स्थायी कर्त्तन दन्त	**निकलने की आयु**	**स्थायी दाढ़**	**निकलने की आयु**
पहला जोड़ा दूसरा जोड़ा तीसरा जोड़ा चौथा जोड़ा	1 से 1.5 वर्ष 1.5 से 2.0 वर्ष 2.5 से 3.0 वर्ष 3.5 से 4.0 वर्ष	चौथा पांचवां छठवां प्रथम, दूसरा, तीसरा	3–5 माह 9–12 माह 18–24 माह तदैव

बकरियों एवं भेड़ों में होने वाली मुख्य बीमारियाँ

नीमोनिया - यह खास कर भेड़ों में होने वाली प्रमुख बीमारियों में से एक है। इसकी बाह्य पहचान सांस की गति में तेजी आना, बलगम बनना, नाक से गाढ़ा स्त्राव बहना, आंखें फुल जाना तथा किच्ची आना, सांस लेने में तकलीफ, मुँह से सांस लेना। भेड़ों और बकरियों में 20–40 प्रतिशत मौत का कारण नीमोनिया होता है। यह जीवाणु और वीषाणु दोनों कारणों से हो सकता है। यह बीमारी हमारे द्वारा दवा पीलाने के क्रम में दवा फेफड़े में जाने के कारण भी होता है। अगर दवा पीलाने के क्रम में जानवर खांसता या छींकता है तो तुरंत मूँह को नीचे की तरफ करके छाती को सहलाना चाहिए।

चिकित्सा एम्पीलॉक्स – 500 मि. ग्राम – माँस में 5–7 दिन
कान्सीप्लेक्स – 3–5 मिली – माँस में 5–7 दिन
लिवर इक्स्ट्रैक्ट – 3–5 मिली – माँस में 5–7 दिन

लैम्ब डिसेन्ट्री / मेमनों में पेचिस

यह बीमारी आधे महीने से 1 महीने की आयु के मेमनों में होती है तथा मृत्यु अतितीव्र रक्तयुक्त अतिसार से होती है। इस रोग का जीवाणु क्लोस्ट्रीडियम बेल्चिआई टाइप–बी है। यह बीमारी वसन्त ऋतु में विशेषकर देखने को मिलती है। यह एक छूत की बीमारी है जिसका संक्रमण मुख्य रूप से मुख द्वारा, मिट्टी अथवा भेंड के प्रभावित थनों के माध्यम से होता है। रोग इतनी तीव्र गति से होती है कि लक्षण बहुत कम दिखती है। कई मेमने एक साथ मरे हुए मिलते हैं। रोग ग्रस्त मेमनों की पीठ ऊपर उठी हुई होती है। रक्तयुक्त पीले भूरे दस्त जो बाद में केवल रक्तयुक्त अतिसार में बदल जाते हैं। मेमने एकाएक दुर्बल हो जाते हैं। शरीर में दर्द एवं ऐंठन होता है।

चिकित्सा पेनिसिलीन – 1 लाख यूनिटस माँस में 5–7 दिन
लिवर इक्स्ट्रैक्ट विद बी कॉम्पलैक्स – 3 मि.ली. – 5–7 दिन तक माँस में।
बेलामाईल सूई – 2–3 मि.ली. माँस में।

बचाव एन्टीटॉक्सिन
लैम्ब डिसेन्ट्री वैक्सीन – 5 मि.ली. चमड़े में।

नीली जीभ/ब्लू टंग/कैटार्हल फीबर

यह एक संक्रमक बीमारी है जिसमें बुखार, मुँह और जीभ पर सूजन, अल्सर एवं फेफड़ों तथा उससे संबंधित भाग पर शोथ (इंडीमा) आदि लक्षण दिखते हैं।

पशु का तापमान 106^0F–107^0F हो जाता है, भूख की कमी, डिप्रेशन, मुँह नाक सुजे हुए। लार, झाग एवं श्वांस में कष्ट। होठ एवं जीभ पर अल्सर होकर खून बहने लगता है। नाक से खून आता है। नाक, होठ, सिर एवं गर्दन में गांठें हो जाती हैं। बुखार 2–3 दिन में खत्म हो जाता है और भेंड़ पैरों से लंगड़ाने लगती हैं। लक्षण, अलग–अलग जानवरों में अलग–अलग दिखते हैं। समूचे मुँह, व्रण में फुंसी एवं छाले मिलते हैं। मसूड़ों एवं जीभ में सूजन भी मिलती है। मुँह से दुर्गंध आती है। भोजन, पानी में दिक्कत होती है। इस रोग से जानवरों में 10 से 50 प्रतिशत तक मृत्युदर देखी गई है।

चिकित्सा पेनिसिलीन – 1 लाख यूनिटस – माँस में
लिवर इक्स्ट्रैक्ट बी कॉम्पलैक्स – 3 मि.ली.
बेलामाईल – 2–3 मि.ली.

बेबेसिओसिस

लाल पेशाब, रेड वाटर, ओभाईन बेबेसिओसिस, पाईरोप्लाजमोसिस ऑफ सिप कहते हैं।

पेशाब लाल हो जाता है, तीव्र ज्वर, सुस्ती, कमजोरी तथा 4–5 दिन में मृत्यु। यह बीमारी दूध देने वाले जानवरों में ज्यादा होती है। बीमारी में शरीर का तापमान अचानक 106–107^0F तक हो जाता है। भेंड़ बकरीयों में सुस्ती आ जाती है, श्वांस एवं धड़कन बढ़ जाते हैं, पेशाब का रंग लाल हो जाता है। एनिमिया, कब्ज, अतिसार, शरीर की श्लैष्मिक झिल्लियां पीली पड़ने लगती हैं।

चिकित्सा सबसे पहले शरीर पर रहने वाले बाह्य परजीवों को नष्ट करना चाहिए।
ट्रिपेन ब्लु का 1 प्रतिशत घोल 50–150 मिली तक नस में देना चाहिए।
बेरेनिल – 0.8–1.6 ग्राम पाउडर सूई के पानी में मिलाकर माँस में देना चाहिए।
इम्फेरॉन – 10 मि.ली. माँस में सप्ताह में 2 बार।
सोडियम क्लोराईड – 250–300 पानी में मिलाकर पिलाना चाहिए।

चक्कर रोग/गिड/कोनूरोसिस/स्टर्डी

यह भेड़ बकरियों एवं पशुओं के मस्तिष्क एवं रीढ़ नाड़ी का रोग है। इसमें पशु चक्कर काटता है, चिल्लाता है और आँखें बड़ी हो जाती हैं। यह रोग अधिकतर बकरियों में पाया जाता है। पशु खाना पीना छोड़ देता है। मस्तिष्क में सिस्ट के कारण सिर पर दबाव पड़ता है जिससे पशु का सिर एक ओर झुक जाता है। पशु गोलाकार चक्कर लगाकर चलता है। सिर को एक ओर उठाकर चिल्लाता है। पशु लड़खड़ाता हुआ चलता है, बार–बार दांत पीसता रहता है और मुँह से लार बहती है। पशु को कभी–कभी ज्वर भी आ जाती है।

चिकित्सा कोई औषधी कारगर नहीं होती है। इसकी चिकित्सा केवल शल्य चिकित्सा द्वारा ही संभव होता है।

अकौता / एक्जिमा

वह त्वचा की सूजन तथा पपड़ीदार दरारों का रोग है जिसमें तरल रसीला एवं चिपचिपा स्त्राव होता है। कभी–कभी इसमें खुजलाहट एवं दर्द होता है। इसमें त्वचा से स्त्राव एवं खुजलाहट, रोग पैर और पीठ पर ज्यादातर होते हैं। जहाँ पर भी यह रोग लगता है उससे सारे शरीर में फैल जाता है और वहाँ के बाल झड़ जाते हैं। त्वचा सूखी, पपड़ी एवं सिकुड़ी हो जाती हैं।

चिकित्सा हिमैक्स क्रीम – घाव पर लगाने के लिए।
आईवरमैक्टीन – 3–5 मि.ली. – चमड़ी में सूई।
कान्सीप्लैक्स – 3–5 मि.ली. – माँस में सूई।

गलघोंटू / गलफुल्ली / घुड़का / डकहा

यह रोग जीवाणु (Bacteria) द्वारा फैलने वाला घातक संक्रामक रोग है। इसमें तेज ज्वर, मुँह और गले पर शोथ वाली सूजन होती है। इसमें आमाशय और आंत में पीड़ा होती है, जिससे पशु का पेट फूल जाता है और पतला दस्त आता है। मुँह से लार और नाक से गाढ़ा स्राव निकलता है। प्रायः यह रोग वर्षा काल में होता है और अचानक होने पर मृत्यु हो जाती है।

शुरू में तापक्रम 104^0–108^0F तक। सुस्त, डिप्रेशन, अरूचि एवं एक स्थान पर खड़ा होना पसंद करता हैं। अधिकांश वक्त में सिर, गला एवं गर्दन में सूजन होता है। सूजन सख्त, गर्म एवं पीड़ा युक्त होता है। मुँह से लार बहता है एवं निगलने में कष्ट होता है। जीभ में सूजन तथा जीभ दांतों के बीच में अथवा मुख से बाहर लटकी होती है। सांस लेने में दिक्कत होता है। जानवरों में पहले कब्ज तथा बाद में दस्त होता है। गले में घड़घड़ाहट (घुर्र–घुर्र) की आवाज आती है। त्वरित चिकित्सा के आभाव में मृत्यु हो जाती है।

चिकित्सा – पोटेशियम परमैंगनेट पानी में मिलाकर कई बार पिलाना चाहिए।
पोटेशियम आयोडाइड 1 ड्राम को 300 मि.ली. डिस्टिलड वाटर में मिलाकर त्वचा में सूई।
कार्बोनिक एसिड पानी में मिलाकर पिलावें।
वैसाडीन अथवा सल्फाडीमाडीन 3% – 100 मि.ली. नस में अथवा चमड़े में सूई दें।

बकरी के बच्चों की भोजन तालिका (जन्म से 30 किलो तक)						
वजन (किग्रा)	*दूध (मिली / दिन)*		*हरा चारा*	*दाना (ग्राम / दिन)*	*दाना की मात्रा (बच्चों के लिए)*	
	सुबह	शाम			स्टाटर	(किग्रा)
2.5	200	200	–	–	चना	20.0
3.0	250	250	–	–	मक्का	22.0
3.5	300	300	–	–	मुंगफली खल्ली	35.0
4.0	300	300	–	–	मिनरल पाउडर	02.5
5.0	300	300	पेट भर	50	गेहुं	–

6.0	350	350	पेट भर	100	चोकर	20.0
7.0	350	350	पेट भर	150	नमक	0.5
8.0	300	300	पेट भर	200		
9.0	250	250	पेट भर	250		
10.0	100	150	पेट भर	350		
15.0	100	100	पेट भर	350		
20.0	–	–	1.5	350		
20.0	–	–	1.5	350		
25.0	–	–	2.0	350		
30.0	–	–	2.5	350		

भोजन तालिका बढ़ते एवं व्यस्क बच्चों के लिए (प्रतिदिन)

शारीरिक वजन (किग्रा)	*दूध*		*दाना मिश्रण ग्राम बच्चे का स्टाटर*	*हरा चारा (किग्रा)*	*अन्य*
	सुबह	शाम			
02.5	200	200	–	–	–
50.0	–	–	500	5.0	–
60.0	–	–	500	5.0	–
70.0	–	–	500	6.0	–

टीकाकरण तालिका (बकरी एवं भेंड़ के लिए)

महीना	*टीका का नाम*	*वयस्क बकरी*	*बच्चा (6 महीना से ऊपर)*
जनवरी	कंटेजियस प्लूरोनिमोनिया (C.C.P.P.)	0.2 मिली/चमड़ी	0.2 मिली/चमड़ी
मार्च	हिम्मोरेजिक सेप्टीसिमिया	5 मिली चमड़ी	2.5 मिली/चमड़ी
अप्रैल	बकरी का चेचक	खरोंच द्वारा	खरोंच द्वारा
मई	ईन्टेरोटॉक्सिमिया/मुँह पका खुर पका	5 मिली/चमड़ी	2.5 मिली/चमड़ी
जून	रिण्डर पेस्ट	1 मिली/चमड़ी	1 मिली/चमड़ी
जूलाई	ब्लैक क्वाटर	5 मिली/चमड़ी	2.5 मिली/चमड़ी
अगस्त	खूर पका– मुँह पका	5 मिली/चमड़ी	0.5 मिली/चमड़ी
सितम्बर	इन्टेरोटॉक्सिमिया	5 मिली/चमड़ी	2.5 मिली/चमड़ी

स्थाई कर्त्तन दंत : की आयु (सप्ताह): निकलने पर शरीर भार (किलो)

शारीरिक वजन (किग्रा)	*दाना मिश्रण ग्राम बच्चे का स्टाटर*	*हरा चारा (किग्रा)*
प्रथम जोड़ा	77.34	23.06
दूसरा	119.90	26.20
तीसरा	155.00	28.33
चौथा	166.00	30.02

भेंड़ों एवम् बकरियों की आवास व्यवस्था

भारत वर्ष की लगभग 80 प्रतिशत जनसंख्या ग्रामीण क्षेत्र में रहती है। ग्रामीण लोगों के रहन–सहन एवं जीवन परिचर्या तथा सामाजिक–आर्थिक दशा के दृष्टिकोण से भेड़ पालकों की स्थिति काफी दयनीय है। भेड़ पालक ग्रामीण क्षेत्र अथवा शहरी क्षेत्र में 'पाल' के उप नाम से जाने जाते हैं और पूर्वी उत्तर प्रदेश में ये अधिक संख्या में हैं।

भेंड़ों के लिए अपने आवास के साथ ही कच्ची मिट्टी तथा बांस, बल्ली एवं फुस की सहायता से झोंपड़ी बना लेते हैं जिसमें रोशनी तथा हवा का आवागमन अपर्याप्त होता है। वर्षा ऋतु में भीगी हुई भेड़ों के शरीर से पानी भी उसी बाड़े में टपकता रहता है, फलस्वरूप वे पानी में भी बैठकर आराम नहीं कर पाती हैं। कच्चे बाड़े का फर्श कच्चा होना चाहिए ताकि मूत्र व मैंगनी सूख सके, परन्तु प्रति भेड़ 10 वर्ग फीट स्थान एवं पर्याप्त संख्या में रोशनदान तथा खिड़ाकियां होनी चाहिए।

100 भेड़ों के रात्रि निवास/बैठने के कक्ष का माप -

30 + 30 = 60 फीट x 25 फीट = 1500 वर्ग फीट

या 18.3 x 7.62 = 139.5 या 140 वर्ग मीटर

मेमना जनन करने की कोठरी का माप -

3 फीट x 5 फीट = 15 वर्ग फीट अथवा 0.9 मीटर x 1.53 मीटर = 1.4 मीटर

100 भेड़ों के बैठने के लिए शेष उपलब्ध स्थान = 1500 – 150 = 1350 वर्ग फीट या 126 वर्ग मीटर

नोट – मेमना जनन करने की 10 कोठरियाँ।

दरवाजे का आकार (लम्बाई) 4 फीट या 1.22 मीटर

चरही (सूखा चारा अथवा सन्तुलित आहार खाने की नाली) की चौड़ाई व गहराई 15 ईंच से अथवा 0.4 से 0.45 मीटर प्रति मेमना।

इनका आकार 27 फीट x 24 फीट अथवा 8.23 x 7.33 = 60.33 वर्ग मीटर

अ. 3–8 माह आयु के नर मेमनों का कक्ष।

ब. 8–15 माह आयु के नर मेमनों/मेढ़ों का कक्ष।

स. 8–15 माह आयु के प्रजनन सुयोग्य चुनी हुई मादा मेमने/भेड़ों का कक्ष (Maidens)।

द. 3–8 माह आयु के मादा मेमनों का कक्ष।

रात्रि निवास कक्ष, खिड़कियों, दरवाजे तथा चरही के माप पूर्ववत हैं। रन का आकार 12 फीट x 25 फीट अर्थात् 300 वर्ग फीट होगा। (अ) एवं (द) में 60 मेमने प्रति तथा (ब) एवं (स) में 50 हागेट्स प्रति की दर से रखे जा सकते हैं। प्रति मेमना तथा प्रति हागेट्स में क्रमशः 0.465 तथा 0.558 वर्ग मीटर स्थान तथा रात्रि निवास बाड़े में क्रमशः 0.555 एवं 0.744 वर्ग मीटर स्थान का प्रावधान रखा गया है जो पर्याप्त होगा।

दस वयस्क बकरियों से आय-व्यय का ब्यौरा

व्यय

क. अनावर्त्ती व्यय		
1.	दस वयस्क ब्लैक बंगाल बकरियों का क्रय मूल्य / रू. 1000 प्रति बकरी	10,000.00
2.	उक्त बकरा का क्रय मूल्य / रू. 3000 प्रति बकरा	3,000.00
3.	बकरा–बकरी के लिए आवास व्यवस्था	5,000.00
4.	बर्तन	500.00
	कुल	18,500.00
ख. आवर्त्ती – व्यय		
1.	30 मेमनों के लिए 100 ग्राम दाना/दिन मेमना की दर से 180 दिनों के लिए दाना मिश्रण कुल 5.5 क्विं / रू. 600 प्रति क्विं	3300.00
2.	एक बकरा के लिए दवा/टीका आदि पर सालाना खर्च (150 ग्रा/बकरा/दिन	2000.00
	तथा दस बकरी के लिए (100 ग्रा/बकरी/दिन) आवश्यक कुल दाना मिश्रण 4.5 क्विं / रू. 600 प्रति क्विं	2700.00
	कुल	8,000.00
	कुल खर्च (क–ख)	26,500.00

आय की गणना यह मानकर की गई है कि 2 वर्ष में एक बकरी तीन बार बच्चों को जन्म देगी तथा एक बार में 2 बच्चे पैदा करेगी। बकरियों की देखरेख घर की औरत तथा बच्चों द्वारा की जायेगी एवं सभी बकरियों को 8–10 घण्टे प्रतिदिन चराया जायेगा। आय की गणना करते समय यह माना गया है कि चार बच्चे की मृत्यु हो जायेगी तथा 13 नर और 13 मादा बिक्री के लिए उपलब्ध होंगे। एक नर और 2 मादा को प्रजनन हेतु रखकर पुरानी 2 बकरियों की बिक्री कर दी जायेगी।

1.	नौ–दस की उम्र की 12 संकर नर के विक्रय से प्राप्त राशि/ रू. 1500/– प्रति बकरा	18,000.00
2.	नौ–दस की उम्र में 11 संकर मादा के विक्रय से प्राप्त राशि/ रू. 2000/– प्रति बकरी	22,000.00
3.	दो ब्लैक बंगाल मादा की बिक्री से प्राप्त राशि/ रू. 500/– प्रति बकरी	1,000.00
	कुल	41,000.00

घ. कुल आमदनी = आय – आवर्ती खर्च। ब्लैक बंगाल बकरी तथा बकरा के क्रय का 20 प्रतिशत, आवास खर्च का 10 प्रतिशत, बर्तन खर्च का 20 प्रतिशत।

= 41,000 – 8,000 – 13,000 का 20 प्रतिशत – 5000 का 10 प्रतिशत – 500 का 20 प्रतिशत

= 41,000 – 8,000 – 2,600 – 500 – 100

= 41,000 – 11,200

= 29,800 – रू. प्रतिवर्ष

= 2980 रू./बकरी/वर्ष

इस आय के अतिरिक्त बकरी पालक प्रतिवर्ष कुल 3000 रू. मूल्य के बराबर एक संकर बकरा तथा एक या दो बकरी की बिक्री नहीं कर प्रजनन हेतु खुद रखेगा। पाँच वर्षों के बाद बकरी पालक के पास 10 संकर नस्ल की बकरियाँ एवं उपयुक्त संख्या में संकर बकरा उपलब्ध होगा।

सूकर पालन

हमारे देश में सूकर पालन का व्यवसाय सदियों पुराना है। अब यह उन लोगों के बीच भी अपनाया जा रहा है जो कि सामाजिक एवं आर्थिक रूप से काफी सम्पन्न हैं। आज समाज का एक बहुत बड़ा तबका सूकर पालन करता है। यहाँ पर सूकर पालन से लोगों की आर्थिक स्थिति काफी तेजी के साथ सुधर रही है। अगर हम यहाँ की भौगोलिक स्थिति की देखें तो सूकर पालन का महत्व काफी स्पष्ट हो जाता है। खास कर झारखंड के पठारी क्षेत्रों में जहाँ पर अधिकतर भूमि काफी उबड़–खाबड़ एवं असिंचित है। जहाँ पूंजी के अभाव में 'गो–पालन' यहाँ अधिक लोकप्रियता प्राप्त नहीं कर सका है। वहाँ मुर्गी, बकरी एवं सूकर पालन कम लागत के कारण अधिक लोकप्रिय है। घरेलू पालतू जानवरों में सूकर सबसे लाभकारी है। यह एक व्यान में 6 से 12 बच्चे देती है। साल में दो बार बच्चे देती है। इसके बच्चे काफी तेजी से बढ़ते हैं और 6से 8 महीने के भीतर ही इसका वजन करीब 65 से 70 किलो हो जाता है। सूकर से तैयार खाद्य सामगी जैसे :– पोर्क, बेकन, हेम, सॉसेज लॉर्ड इत्यादि की मांग आसपास के लोगों के इस्तेमाल और निर्यात के लिए बढ़ती जा रही है। सूकर पालन की अन्य महत्वपूर्ण उत्पाद :–

- एक किलो वजन के लिए सिर्फ 3 किलो खाने की जरूरत होती है।
- सूकर पालन के लिए छोटे लागत (पूँजी) की जरूरत होती है।
- ड्रेसिंग प्रतिशत – सूकर – 65 से 80 प्रतिशत होता है।
- जबकि भेड़ का बच्चा, भेंड, बकरा – 45 से 55 प्रतिशत होता है।

सूकर पालन को एक लाभकारी व्यवसाय के रूप में अपनाने के लिए निम्न बातों पर विशेष ध्यान देनी चाहिए:–

1. संकरण हेतु उन्नत नस्ल का प्रयोग।
2. पौष्टिक एवं संतुलित भोजन की व्यवस्था।
3. सूकर आवास की उचित व्यवस्था।
4. रोग नियंत्रण की व्यवस्था।
5. सूकरों एवं उससे उत्पादित वस्तुओं की समुचित बिक्री की व्यवस्था।

हमारे राज्य में अधिकतर सूकर देशी नस्ल के हैं जो विदेशी नस्ल से बहुत मायने में पीछे है।

1. देशी सूकर (वयस्क सूकर) का वजन 40 से 60 किलो तक ही होता है जबकि उतनी समय में विदेशी नस्ल का वजन (वयस्क) 200 से 300 किलो तक हो जाता है।
2. देशी सूकरियाँ एक बार में मात्र 4 से 7 बच्चे देती है वहीं विदेशी सूकरियाँ 10 से 15 बच्चे देती है।
3. देशी सूकरियों का वियान अंतराल 220–230 दिन का होता है वहीं संकर नस्ल का वियान अन्तराल 180 से 190 दिन का होता है।
4. देशी सूकरों को एक किलो वजन बढ़ाने के लिए संकर नस्ल की तुलना में डेढ़ गुना अधिक मिश्रण खिलाते हैं।
5. देशी सूकरों में चर्म रोग काफी होता है लेकिन संकर प्रजाति में प्रायः रोग कम होते है।
6. टी. एण्ड डी. का शरीर चिकना, कान छोटे, खड़े तथा थूथने मध्यम आकार के होते हैं। छोटानागपुर

क्षेत्र और देश के अन्य भाग के लिए काफी उपयोगी नस्ल है।

भारत में पाये जाने वाले सूकरों के नस्ल :

क. संकर नस्ल का सूकर :– टी. एण्ड डी.।

ख. संकरण हेतु विदेशी नस्ल के सूकर :–

1. लार्ज ह्वाइट योर्कशायर
2. मिडिल ह्वाइट यार्कशायर
3. लैण्ड रेस,
4. टैमवर्थ,
5. वर्कशायर,
6. हैम्पशायर,
7. ड्यूरोक,
8. पोलैण्ड चायना,
9. स्पीटेड पोलैण्ड चायना।

1. **टी. एण्ड डी.** – यह प्रजाति विदेशी टैमवर्थ नस्ल और देशी सूकर के संयोग से की गई है। यह एक काले रंग का सूकर है। यहाँ के लोग काले रंग के सूकर का माँस उजले सूकर के माँस से ज्यादा पसंद करते हैं। इसलिए यह ज्यादा महंगा बिकता है। इसका वियान अन्तराल 180 से 190 दिन का होता है। यह एक वियान में 8 से 10 बच्चे देती हैं, कभी–कभी 12 बच्चे भी देती हैं।

2. **लार्ज ह्वाईट योर्कशायर** – यह उजले रंग की नस्ल है जो इंग्लैंड की नस्ल है। इसका शरीर लम्बा तथा कान छोटे एवं खड़े होते हैं। इसका चमड़ा चिकना तथा झुर्रियों से मुक्त होता है। पैर सीधा एवं लम्बा होता है। एक जवान सूकर का वजन 300 से 450 किलो तक और सूकरी का वजन 250 से 350 किलो तक होती है। दोनों कान की दूरी लम्बी होती है। सर लम्बा होता है एवं छाती चौड़ी होती है। एक वियान में औसत बच्चों की संख्या 10 से 11 होती हैं।

3. **मिडिल ह्वाईट योर्कशायर** – यह इंग्लैंड की नस्ल है। इसका रंग सफेद होता है। सर छोटा एवं सीधा होता है। इसका शरीर छोटा होता है एवं सीधा होता है। इस नस्ल का उपयोग यहाँ भारत के स्थानीय देशी नस्ल को सुधारने के लिए किया जाता है। सूकर का वजन 270 से 360 किलो तक का होता है। एक वियान में औसत बच्चों की संख्या 10 से 11 होती हैं।

4. **लैण्डरेस** – यह डेनमार्क की नस्ल है। इसका शरीर लम्बा और चौड़ा होता है। कान लम्बे और आगे की ओर आँखों के ऊपर झुके होते हैं। इससे सबसे अच्छा बेकन बनता है। इसका रंग उजला होता है। सूकरी का वजन 150 से 200 किलो होता है। एक वियांत में औसत बच्चों की संख्या 9 से 10 होता है।

5. **टैमवर्थ** – यह इंग्लैण्ड की नस्ल जो सुनहले लाल रंग का होता है। इसका शरीर लम्बा, पैर लम्बे तथा पीछे की ओर चौड़े होते हैं। इसके कान छोटे और खड़े होते हैं। इसका शरीर कठोर और ताकतवर

होता है। ये घास ज्यादा खाते हैं। सूकर का वजन 350 से ऊपर होता हैं एवं सूकरी का वजन 250 से 300 किलो तक होता है। एक वियान में औसत बच्चों की संख्या 7 से 8 तक होती हैं।

6. **वर्कशायर** – यह इंग्लैण्ड की नस्ल है जो मध्यम आकार का है। यह काले रंग की होती हैं मगर चारों पैर, नाक और पूँछ ऊजले रंग की होती है। इसके कान खड़े होते हैं। इसका शरीर लम्बा और पैर छोटे होते हैं। सूकर का वजन 275 से 375 किलो तक होता है तथा सूकरी का वजन 200 से 290 किलो तक होता है। एक वियान में औसत बच्चों की संख्या 7 से 8 तक होती है।

7. **हैम्पशायर** – यह इंग्लैण्ड की नस्ल है। इसके शरीर का रंग काला होता है, पर एक उजले रंग की धारी इसके अगले पैर तथा पीठ को घेरती हुई पाई जाती है। यह मध्यम आकार का नस्ल है। एक वियान में औसत बच्चों की संख्या 8 से 9 तक होता है।

8. **ड्यूरोक** – यह अमेरिकी नस्ल है। इसका रंग भूरा लिए हुए लाल होता है। शरीर लम्बा तथा कान आगे की ओर झुके होते हैं। इसका वजन बहुत तेजी से बढ़ता है। यह एक साथ में 8 से 11 बच्चे देती है। सूकर का वजन 400 किलो तक होता है एवं सूकरी का वजन 350 किलो तक। एक वियान में औसत बच्चों की संख्या 9 से 10 तक होता है।

9. **पोलैण्ड चाईना** – यह चाईना का नस्ल है। इसका शरीर काले रंग के बालों से घिरा रहता है परन्तु पैर, चेहरा तथा पूँछ के छोर पर उजले रंग के बाल पाए जाते हैं। इसका वजन 500 से 550 किलो तक रिकार्ड किया गया है। एक वियान में औसत बच्चों की संख्या 7 से 8 तक होता है।

10. **स्पोटेड पोलैण्ड चाईना** – इसका शरीर उजले तथा काले रंग का चितकबरा होता हैं। रंग को छोड़कर अन्य मामले में यह पोलैण्ड चाईना के समान है। एक वियान में औसत बच्चों की संख्या 7 से 8 तक होता है।

विभिन्न प्रकार के सूकरों की आवास व्यवस्था

1. **मिश्रित आवास व्यवस्था** – इस आवास व्यवस्था में सूकर एक ही छत के नीचे सभी प्रकार के जानवरों को बांधते हैं। इस तरह के आवास व्यवस्था में सभी जानवर एक साथ रहते वक्त कुछ बीमारियों के शिकार हो जाते हैं। कुछ संक्रामक बीमारियाँ ऐसी हैं जो कि एक पशु से दूसरे में फैलती हैं। जैसे – चर्म रोग, एफ.एम.डी. (खुरहा), एंथ्रेक्स इत्यादि। जो कि जानलेवा बीमारी है।

   सभी प्रकार के जानवरों को एक साथ रखने से बच्चों के दबकर मरने की घटना भी ज्यादा होती हैं।

2. **अलग आवास व्यवस्था** – इस आवास व्यवस्था में सूकर पालक सूकरों को अलग तो रखते हैं लेकिन उन घरों में न ही पर्याप्त रोशनी आती है, न ही साफ–सफाई रहती है। जिससे बच्चों का सम्पूर्ण विकास नहीं हो पाता है। विकास और वृद्धि रूकने के साथ–साथ उनमें बीमारियाँ भी हो जाती है। इस प्रकार के घरों में भी बच्चे घूटन से मर जाते हैं।

उपयुक्त मकान की व्यवस्था :

- सूकरों के रहने के लिए घर होना चाहिए जो कि वर्षा, ठण्डक, गर्मी इत्यादि से पूर्णतः रक्षा कर सके।
- घर ऊँची जगहों पर होनी चाहिए जहाँ पानी का जमाव न हो।
- यह घर मनुष्य के मकान से 15 मीटर की दूरी पर होनी चाहिए। बाकि के जानवरों के रहने के घर से

30 मीटर की दूरी पर होनी चाहिए।

- विभिन्न प्रकार के सूकरों के लिए जगह की आवश्यकता :–

  क. नर सूकर के लिए 50–60 वर्ग फीट

  ख. प्रसूती सूकरी या बच्चा दे चुकी सूकरी के लिए 70–80 वर्ग फीट।

  ग. विसुखी सूकरी के लिए 20–25 वर्ग फीट

  घ. बढ़ते बच्चों के लिए 8–12 वर्ग फीट।

- साथ में कमरे से मिला हुआ सूकरों को घूमने के लिए खुला स्थान होना चाहिए जो दीवार से घिरा हुआ हो।
- उन्नत किस्म का सूकर आवास बनाते वक्त फर्श को पक्का एवं खुरदरा होना चाहिए जिससे सफाई में आसानी हो और जल्दी से सूख भी जाय। फर्श चिकना होने से सूकरों के फिसल कर गिरने का डर बना रहता है।
- फर्श खुरदरा एवं पक्का होने से पानी नहीं जमता है। बीमारियों के होने और फैलने का भी डर नहीं रहता है।
- घर की दीवार 3 फीट तक पक्का होनी चाहिए उसके बाद उसको मिट्टी से जोड़ाई कर सकते हैं।
- छत एस्बेस्टस का दिया जा सकता है।
- घर के बगल में पेड़ लगाना चाहिए जिससे गर्मियों में ज्यादा गर्मी नहीं महसूस हो।
- घर का अगला भाग कम–से–कम 5 सें 6 फीट ऊँचा तथा पिछला भाग 7 से 8 फीट ऊँचा होना चाहिए।
- घर को हवादार होने के लिए कुछ खिड़कियाँ या ग्रील होना चाहिए।
- सूकरों को उसके उम्र और स्थिति के अनुसार रखा जाना चाहिए।
- नर वयस्क सूकरों को अलग–अलग रखना चाहिए। अगर हो सके तो नर सूकरों को मादा के साथ रखा जा सकता है लेकिन नर को नर के साथ कभी भी नहीं रखना चाहिए। वरना नर–नर आपस में लड़कर एक–दूसरे को घायल कर देते हैं।
- गर्भवती सूकरी को बच्चा देने से 10–15 दिन पहले अलग घर में रख देना चाहिए।
- गर्भवती सूकरी को अन्य सूकर या सूकरियों के साथ नहीं रखना चाहिए अन्यथा वह बच्चों को मार दे देते हैं।
- घरों की संख्या सूकरों एवं सूकरियों की संख्या के मुताबिक बढ़ाया जाता है।
- प्रसूती गृह के निर्माण में कुछ विशेष प्रकार की बनावट करनी पड़ती है।

  क. ''क्रीप बॉक्स'' – यह बॉक्स सूकरी के बच्चो को भोजन के लिए बनाया जाता है। इसके बनाने के लिए उपयुक्त जगह एक कोना होता है। एक कोने में बॉक्स की बनावट कुछ इस तरीके की होती है, लम्बाई 4 फीट ऊँचाई 3 फीट तथा चौड़ाई 2 फीट होती है उस क्रीप बॉक्स के नीचले हिस्से में छोटे–छोटे द्वार बनाये जाते हैं, जिसकी ऊँचाई 10 इंच और चौड़ाई 8 इंच होती है। इस छोटे

से द्वार से बच्चे अन्दर दिए गए क्रीप मिक्सचर खाते हैं और बाहर आ जाते हैं।

ख. ''गार्ड रेल'' – यह बच्चों को माँ से दबकर मर जाने से बचाने के लिए बनाया जाता है। इस ''गार्ड रेल'' को बनाने के लिए लोहे के रॉड या पाइप को दीवार के चारों तरफ से मजबूती से फिक्स कर दिया जाता है। इसकी दीवार से ऊँचाई 10 ईंच और दीवार से दूरी 10 ईंच होती है। इसमें पाईप और रॉड की जगह पर बांस का भी प्रयोग कर सकते हैं। बशर्ते वह मजबूती से लगाया गया हो।

– सभी प्रकार के सूकरों के पानी पीने का टब या नाद बाहर के खुले जगह में बनाना चाहिए ताकि भीतर का बन्द जगह जो कि सूकर के रहने का जगह होता है, सूखा रह सके। सूकर को पानी भरपूर मात्रा में पिलाना चाहिए।

प्रजनन व्यवस्था

प्रजनन व्यवस्था को समझने के लिए सूकर प्रजनन से सम्बंधित कुछ ध्यान देने योग्य बातें :–

1. सर्वप्रथम पाल खिलाने की उम्र – 8 से 9 माह।
2. ऋतु चक्र – 18 से 24 दिन।
3. गर्म रहने का समय – 2 से 3 दिन।
4. पाल खिलाने का समय – लक्षण दिखने के 12–30 घंटा के बीच।
5. गाभिन रहने का समय – 112 से 116 दिन।
6. औसत कुल प्रजनन उम्र – 6 से 8 वर्ष।
7. बच्चे अलग करने के बाद सूकरियों को गर्म होने का समय – 5 से 15 दिन।
8. दो वियानों के बीच का अंतराल – 6–7 माह।
9. बच्चे देने की क्षमता – 8 से 12 बच्चे।

करीब 75 प्रतिशत सूकरियाँ प्रायः रात में ही बच्चा देती हैं। अक्सर रात में बच्चा देते समय सूकरियों को अपना झार खाने की सम्भावना बढ़ जाती है। इसके खाने से सूकरियों के :

– दूध का प्रवाह कम हो जाता है।

– दूध के अभाव में बच्चे की मृत्यु दर काफी बढ़ जाती है।

अतः इन परिस्थितियों से बचने के लिए सुकरियों को दिन में बच्चे देने की व्यवस्था को वैज्ञानिकों ने खोज निकाली है। सूकरियों से दिन में बच्चा लेने के लिए :–

– सूकरियों के अनुमानित बच्चे देने के दो दिन पहले माँस में एक मि.ली. पी.जी.एफ–2 अल्फा की सूई देनी चाहिए। ऐसा देखा गया है कि सूई देने के बाद करीब 80 प्रतिशत सूकरियाँ 20 से 30 घण्टे के अन्दर में (दूसरे दिन में) बच्चे देती हैं। इससे सूकर पालकों को निम्नांकित फायदे होते हैं। :–

  1. दिन में बच्चा देने एवं उसकी देख–भाल अच्छी तरह करने से झार खाने की सम्भावना बिल्कुल समाप्त हो जाती है।
  2. पी.जी.एफ–2 अल्फा की सूई लगाने से सूकरियों की दूध प्रवाह बढ़ जाती है जिसके चलते उसके

बच्चे स्वस्थ रहते हैं। फलस्वरूप बच्चे की बढ़ोत्तरी अधिक एवं मृत्यु दर कम हो जाती है।

3. सूकरियाँ जल्द पाल खा जाती हैं जिसके चलते एक सूकरी से साल में दो बार बच्चा आसानी से लिया जा सकता है।

सावधानियाँ :– जहाँ पी.जीएफ.–2 अल्फा के अनेक फायदे हैं वहीं इनके सूई से कई नुकसान भी हैं।

– यदि सूकरी की अनुमानित बच्चा देने की तिथि मालूम नहीं हो तो इस सूई को नहीं देनी चाहिए। अन्यथा सूकरी को गर्भपात हो जाएगा और फायदे के बदले नुकसान हो जाएगा।

– ऐसी हालत में जहाँ सूकरी की बच्चा देने की अनुमानित तिथि मालूम नहीं हो वैसी स्थिति में पी.जी. एफ–2 अल्फा की सूई सूकरी को बच्चा देने के 12 घण्टे के अंदर माँस में देनी चाहिए। ताकि सूकरी को दूध प्रवाह ज्यादा हो और बच्चे की बढ़ोतरी अधिक तथा मृत्यु दर कम की जा सके।

सामान्य निर्देश :-

– गर्भवती सूकरी को बच्चा देने के 10–15 दिन पहले से अलग घर में रख देना चाहिए। जब सूकरी अपने बच्चे के साथ रहे तब कोई भी दूसरी सूकरी को उस घर में नहीं रखना चाहिए।

– प्रसव के स्थान को अच्छी तरह साफ कर लेना चाहिए।

– प्रसव वाले कमरे में पुआल या लकड़ी का बुरादा बिछा देना चाहिए।

– प्रसव के समय सूकरी को छेड़–छाड़ नहीं करना चाहिए।

– बच्चा के बाहर आते ही उसके नाक और मुँह के ऊपर जो म्यूक्स होता है उसे अच्छी तरह से साफ कर लेना चाहिए। इससे सांस लेने में कठिनाई नहीं होगी।

– बच्चे के नाड़ी को 4–6'' की दूरी पर धागा से बाँध दें और उसके नीचे नये ब्लेड से काट कर टिंक्चर आयोडीन नामक दवाई का लेप चढ़ा दें।

– बच्चे में जन्म से ही एक प्रकार का दांत होता है जिसे ''केनाईन टीथ'' कहते हैं। जन्म के प्रथम सप्ताह में ही टूथ कटर या बोन कटर की सहायता से हटा दें। इससे सूकरी की छीमी को नुकसान होने से बचाया जा सकता है।

सूकरों की कुछ प्रमुख बीमारियाँ

1. **सूकर ज्वर (स्वाइन फीबर)** :– यह रोग सूक्ष्म विषाणु (वायरस) से होता है। जब यह तीव्र स्थिति में होता है तो बीमार सूकर ज्यादातर मर जाते हैं।

   लक्षण :– तेज बुखार होना, अरूचि, दस्त, सांस लेने में कठिनाई, शरीर पर लाल–पीले रंग के धब्बे निकल आना, चलने में डगमगाहट। अगर यह बीमारी गर्भवती सूकरी को होती है तो सूकरी को गर्भपात हो जाता है।

   रोकथाम – बीमार सूकर को झुण्ड से अलग कर देना चाहिए। उसके खाने से लेकर रहने का इंतजाम एकदम अलग में करना चाहिए। बीमार पशु के रहने के स्थान को अच्छी तरह से धोकर साफ करना चाहिए। उस स्थान को डिटॉल और फिनॉइल से अच्छी तरह से साफ एवं रोग मुक्त करना चाहिए। एक बार बीमारी हो जाने के बाद सूकरों को जिन्दा बच पाना मुश्किल हो जाता है।

   बचाव : इस बीमारी से बचने का सिर्फ एक तरीका है वह है – टीका दिलाना।

टीका का नाम : लेपीनाईजड सूकर ज्वर टीका – खुराक – 1 मिली चमड़ी में। इसे पुनः एक साल के बाद दोहराना चाहिए। यदि सूकर की मृत्यु हो जाती है तो उसके शरीर को जला देना या मिट्टी में चूना के साथ मिलाकर गाड़ देना चाहिए।

2. **खुरहा (एफ.एम.डी)** :– यह जल्द फैलने वाला संक्रमण रोग है जो विषाणु से होता है। यह हर उम्र के सूकरों में पाया जाता है।

लक्षण :– तीव्र बुखार होना, चलने–फिरने से लाचार हो जाना। ठोढ़, थुथना, जीभ, स्तन एवं खूर पर छाले निकल आते हैं। कभी–कभी तो खूर कटकर गिर जाते हैं। ठीक होने में महीनों लग जाते हैं।

रोकथाम :– बीमार पशु को साफ–सूखी जगह पर रखनी चाहिए। मुलायम तथा तरल पदार्थ खिलानी चाहिए। खूर के घाव को नीम के पत्ते की पानी में उबालकर, उसी पानी से धोना चाहिए। हिमेक्स मलहम लगानी चाहिए। घाव को हमेशा सूखा रखना चाहिए।

टीका का नाम :– रक्षा एफ.एम.डी टीका – एक मि.ली., चमड़े के नीचे।

भोजन व्यवस्था

सूकर पालन में पौष्टिक एवं संतुलित आहार की व्यवस्था

सूकरों से पूरा–पूरा फायदा उठाने के लिए उसके खान–पान पर विशेष ध्यान देनी चाहिए। संतुलित दाना मिश्रण बनाने के लिए विभिन्न प्रकार के अनाजों, अनाजों के अवशेष, खल्लियों की निश्चित मात्रा लिया जाता है। इसमें समुचित मात्रा में खनिज लवण मिश्रण एवं विटामिन मिलाया जाता है। प्रत्येक श्रेणी के सूकरों के लिए अलग–अलग लवण पोषकत्ता का मिश्रण बनाया जाता है। दो माह तक के बच्चों (10 किलो तक) को ''क्रीप'' मिश्रण दाना दिया जाता है। जिसमें प्रोटीन की मात्रा 20 प्रतिशत रहता है। 10 से 15 किलो वजन के सूकर को ''स्टार्टर'' तथा 15 से 20 किलो वजन के सूकर को ''ग्रोवर'' दाना दिया जाता है। जिसमें प्रोटीन की मात्रा क्रमशः 18 प्रतिशत तथा 16 प्रतिशत रहता है। ''फिनिशर'' दाना 50 किलो वजन से ऊपर वाले सूकरों को देते हैं। जिसमें 14 प्रतिशत प्रोटीन रहता है।

दाना मिश्रण निम्न प्रोटीन के अनुपात में

	दो माह तक के बच्चों के लिए (क्रीप मिश्रण)	*10 से 15 किलो वजन के सूकर के (स्टार्टर)*	*15 से 50 कि.व के सूकर के लिए (ग्रोवर)*	*50 कि. से ऊपर वाले सूकर के लिए (फिनिशर)*
दली हुई मकई	63.00 कि.	64.00 कि.	65.00 कि.	62.00 कि.
मूँगफली की खल्ली	20.00 कि.	18.00 कि.	15.00 कि.	10.00 कि.
गेहूँ का चोकर	5.00 कि.	11.00 कि.	14.00 कि.	24.25 कि.
मछली का चूर्ण	7.25 कि.	6.25 कि.	5.25 कि.	3.00 कि.
स्कीम मिल्क पाउडर	4.00 कि	–	–	–
नमक	1/2	1/2	1/2	1/2
सपलीभीट/कन्सीमिन/एलमाइट	1/4	1/4	1/4	1/4
कुल	**100 किलो**	**100 किलो**	**100 किलो**	**100 किलो**

सूकर के नस्लों के लिए दाना मिश्रण की मात्रा प्रतिदिन प्रति सूकर को कितने दिनों तक दी जायेगी, का विवरण निम्नलिखित टेबुल में दर्शाया गया है :-

	देशी नस्ल	*संकर नस्ल*	*विदेशी नस्ल*	*अवधि*
क्रीप मिश्रण	70—100 ग्राम	100—150 ग्राम	120—170 ग्राम	60 दिन (प्री.वीनिंग)
स्टार्टर	100—120 ग्राम	125—200 ग्राम	150—220 ग्राम	2 से 3 माह
ग्रोवर	150—200 ग्राम	200—300 ग्राम	250—350 ग्राम	3 से 5 माह
फिनीशर	200—250 ग्राम	350—450 ग्राम	400—500 ग्राम	5 से 10 माह

गर्भित सूकरियों का आहार :-

खाद्य पदार्थ	*आहार में प्रतिशत मात्रा*	
	प्रथम	द्वितीय
मक्का का दलिया	50 किलो	30.00 किलो
जौ/जई/ज्वार	—	20.00 किलो
चोकर	32.5 किलो	32.5 किलो
मूँगफली की खल्ली	10.0 किलो	10.0 किलो
मछली का चूरा	5.0	5.0
खनिज का मिश्रण	2.0 किलो	2.0 किलो
नमक	0.5 किलो	0.5 किलो
	100 किलो	**100 किलो**
आहार की मात्रा प्रतिदिन प्रति गर्भित सूकरी के लिए 2 से 2.5 किलो ग्राम।		

दूध देने वाली सूकरियों के लिए आहार :— ऊपर में जो गर्भित सूकरियों के लिए आहार है, वही आहार दूध देने वाली सूकरियों को भी दिया जाता है। लेकिन इसकी मात्रा प्रति सूकरी प्रतिदिन अधिक होती है। जो सूकरी पहली बार बच्चा दी है, उसे 4.5 से 6 किलो प्रति सूकरी प्रतिदिन आहार देना चाहिए। जो सूकरी एक या एक से अधिक वियान की है, उसे 6.5 किलो प्रति सूकरी प्रतिदिन की दर से आहार दिया जायेगा।

ऐसा देखा गया है कि सूकर उत्पादन पर पूरे खर्च का लगभग 75 से 80 प्रतिशत उसके पोषाहार पर ही पड़ता है। अतः सूकरों को पूर्णतः दाना मिश्रण पर रखने से उत्पादन कीमत काफी बढ़ जाती है। इसलिए सूकर पालन को लाभकारी व्यवसाय के रूप में अपनाने के लिए कम—से—कम 50 प्रतिशत सस्ते आहार की व्यवस्था करनी पड़ेगी।

इसके लिए शहरों में पाले जा रहे सूकरों के लिए होटल की जूठन सामग्री, सब्जी मण्डी से अनुपयोगी फल सब्जी की पत्तियाँ एवं माँस कारखानों से प्राप्त अनुपयोगी पदार्थ इत्यादि की व्यवस्था करनी चाहिए। क्योंकि सूकर इस प्रकार के खाद्य पदार्थों को भली—भांति उपयोग करने की क्षमता रखते हैं। माँस या अन्य पशुओं से प्राप्त अनुपयोगी पदार्थ को उबाल कर ही सूकरों को खिलायें। साथ—ही—साथ थोड़ी मात्रा में आवश्यकतानुसार संतुलित दाना मिश्रण भी देनी चाहिए।

ग्रामीण सूकर पालक अपने सूकरों को निम्न प्रकार के आहार दे सकते हैं :-

1. धान की भूसी जिसमें चावल के कुछ अंश मिश्रित होते हैं। इसे सूकरों के उम्र के अनुसार 1/2 से 1 1/2 किलो प्रति सूकर प्रति दिन देना चाहिए।
2. रसोई घर की जूठन सामग्री।
3. स्थानीय शराब यानि हड़िया बनाने के बाद बचे हुए चावल को सूखा कर।
4. फुलगोभी, बन्दगोभी, आलू, सकरकंद, मूली आदि की हरी पत्तियाँ एवं विभिन्न प्रकार के हरे घास मौसम के अनुसार।
5. इसके अतिरिक्त सूकर पालकों को कम–से–कम तीन घण्टे के लिए खुले मैदान में चरने के लिए छोड़ देनी चाहिए।

सूकर पोषण में जल का महत्व

प्रत्येक प्राणी के शरीर में जीवन क्रिया संचालन के लिए जल अनिवार्य है। जल न मिलने पर जीवित रहना असंभव है। जल सबसे महत्वपूर्ण पोषक है और इसकी कमी से मृत्यु होने की सम्भावना अधिक है।

जल ग्रहण प्रभावित करने वाले कारण :-

1. सूकर की आयु : आयु के साथ सूकर की जल की दैनिक मात्रा बढ़ती जाती है।
2. आहार का प्रकार : शुष्क आहार होने पर पेय जल की आवश्यकता अधिक होती है।
3. जलवायु : गर्मी में शरीर के जल की अधिक ह्रास होती है, इसलिए शरीर में जल का संतुलन रखने के लिए अधिक पेय जल की आवश्यकता होती है।

सूकरों में टीकाकरण

क्रमांक	रोग	प्राथमिक टीकाकरण	नियमित टीकाकरण	मात्रा एवं बिधि
1.	स्वाइन	6–8 सप्ताह	सलाना	1 मिली माँस में
2.	खूरपका, मुँहपका	4–8 सप्ताह बूस्टर – प्राथमिक टीकाकरण के 3 सप्ताह उपरांत	प्रत्येक छः महीना	2 मिली त्वचा के नीचे
3.	गलघोटु	3 महीना के उपरांत	मानसून से पहले	2 मिली त्वचा के नीचे
4.	स्वाइन एनफ्लूंजा	प्रभावित स्थान पर		

मद, चक्र, उसके लक्षण एवं प्रजनन संबंधी जानकारी

सामान्यतः प्रथम बार मादा सूकरी की ऋतु काल 8 से 10 माह की आयु में आती है जो कि प्रायः 2 से 3 दिन तक की होती है। एक बार ब्याई हुई सूकरी बच्चों को अलग करने के एक सप्ताह बाद पुनः ऋतुमयी होती हैं। सुकरियों से स्वस्थ एवं अधिक से अधिक बच्चे प्राप्त करने हेतु पशुपालकों को निम्न जानकारी होना आवश्यक है।

क) सूकरी के गर्म होने के लक्षणः

1. मादा के प्रजनन अंगों में लालिमा आना ओर सफेद स्त्राव आना।
2. योनि से स्त्राव निकलना।

3. जल्दी जल्दी मूत्र त्यागना।
4. भुख की कमी।
5. दूसरी मादा पर चढ़ने का प्रयास करना।
6. बेचैनी।
7. सूकरी के पिछले भाग पर दबाव डालने पर उसका खड़ा रहना या स्थिर रहना।

प्रजनन एवं उसका प्रबंधन

साधारणतः ऋतुमयी होने के लक्षण बच्चों के अलग करने के एक सप्ताह बाद दिखाई देते हैं। ऋतु में आने के बाद मादा सूकरी को नर बाड़े में ले जाना अधिक उत्तम हैं क्यांकि इससे नर सूकर अपने बाड़े में सूचारू रूप एवं आसानी से प्रजनन कर सकता है। मादा को 3 दिन तक नर सूकर के बाड़े में छोड़ सकते हैं।

नर सूकरों का चुनाव, रख रखाव एवं प्रजनन

नर सूकर को समान्यतः अलग–अलग बाड़ों में रखना चाहिए। आवश्यकतानुसार सामान आचरण वाले अधिक से अधिक दो सुअर को एक साथ एक बाड़े में रखा जा सकता है।

प्रजनक सूकर :

1. आयताकार साफ बिना चर्बीयुक्त सिर।
2. खुली एवं चमकदार आँखें।
3. गर्दन छोटी, मोटी एवं मजबूत कंधा।
4. लंबी तथा माँस से भरी पीठ।
5. लंबा, चौड़ा एवं गोलाकार पुठ्ठा।
6. शरीर गहरा तथा माँसल।
7. बड़ा, बराबर तथा मुलायम अंडकोष।
8. मजबूत पिछला पैर।

प्रबंधन

1. नर को आवश्यकता से अधिक मोटा नहीं होने देना चाहिए।
2. दानें के मिश्रण में 15–16 प्रतिशत प्रोटीन हो।
3. व्यायाम हेतु खुली जगह पर्याप्त मात्रा में हो।

विभिन्न अवस्थाओं में सूकरों की देखरेख :

गाभिन सूकरी की देखरेख :

1. सूकरों का गर्भकाल 114 दिन का होता है यदि मादा सूकर नर सूकर के संयोग के बाद दुबारा गर्म नहीं होती है तो उसे गाभिन माना जाता है।
2. दो महीने के गाभिन सूकरी को दूसरे गाभिन सूकरी के साथ रखा जा सकता है।

3. गाभिन सूकरी के खुराक की मात्रा बढ़ा देनी चाहिए।
4. गर्भकाल के दौरान उसे हरा चारा देना चाहिए।
5. दिन में बच्चा लेने के लिए सूकरी में ब्याने से 2 दिन पहले 1 मिली पी.जी.एफ.–2 की सूई माँस में दें।
6. संभावित तिथि से 15 दिन पहले सूकरी को अलग बाड़े में ले जाना चाहिए।
7. बाड़े को अच्छी तरह से साफ पानी और संभव हो तो फिनाईल से धो लें।
8. बिछावन के लिए पुआल, जई और गेहूँ की भुसी उपयोग में लानी चाहिए।
9. आवास सूखा, स्वच्छ एवं हवादार हो और उसमें गर्मी एवं सर्दी से बचाव हो।
10. शावकों में अनीमिया से बचाव हेतु सूकरी के थनों में फेरस सल्फेट (0.5 प्रतिशत) का लेप लगावें।

शावकों की देखभाल :

1. शावकों की मृत्यु उसके मुँह पर श्लेष्मा के फंसे रहने एवं श्वास रूकने के कारण हो जाती हैं। अतः शावकों के पैदा होने के तुरंत बाद उनके नाक, कान, मुँह तथा आँख से झिल्ली एवं म्युक्स को तुरंत नरम साफ कपड़े से साफ कर देना चाहिए।
2. आवश्यकतानुसार शरीर से दो इंच की दूरी से नाल को साफ ब्लेड से काट देना चाहिए।
3. सर्दी से बचाव हेतु कृत्रिम उष्मा (200 वाट बल्व) की व्यवस्था करनी चाहिए।
4. शावकों में जन्म के समय 2 जोड़े नुकीले सूहिचका दंत होते हैं। इन दंतों से मादा सूकरी में घाव एवं थनैला रोग होने की संभावना रहती है अतः इन्हें पूर्ण सावधानी पूर्वक एण्टीसेप्टिक दवा का प्रयोग करते हुए दांत काटने वाली मशीन से काट कर हटा दें।
5. खीस जितनी जल्दी हो सके बच्चों को पिलाना चाहिए। इसमें वसा, विटामिन, खनिज लवण के साथ–साथ प्रोटीन एवं प्रतिरोधी क्षमता होती है जिससे बच्चों में मृत्यु की दर कम हो जाती है, अतः खीस पिलाना अतिआवश्य है।
6. दूध तीसरे सप्ताह में अपने उच्चतम अवस्था में रहता है इसके बाद इसका दूध कम होना शुरू हो जाता है एवं आठवें सप्ताह में यह अपने निम्नतम स्तर पर पहुँच जाता है। अतः इस अवस्था में बच्चों को क्रीप राशन 20 प्रतिशत प्रोटीन देना चाहिए ताकि शावकों की शरीर वृद्धि सुचारू रूप से बनी रहे।
7. शावकों की संख्या अधिक होने की दशा में सूकरी को पर्याप्त मात्रा में संतुलित आहार देना चाहिए अन्यथा शावकों के पोषण पर फर्क पड़ता है एवं इसकी शरीर भार वृद्धि में विपरीत प्रभाव पड़ता है। दूसरी सूकरी के खीस प्रायः रात के समय पर पिलाना चाहिए ताकि सूकरी को दूसरे बच्चे का आभास न हो सके।
8. रक्त अल्पता को रोकने के लिए 3 से 5वें दिन की आयु पर 1 मि.ली. इम्फेरॉन माँस में सूई दें तथा 7वें दिन पुनः दें।
9. जन्म के समय शावक में ग्लूकोज/शर्करा की कमी हो जाती है, जिससे शावक मर भी सकते हैं। इससे बचने के लिए बच्चे पैदा होते ही एक सप्ताह तक 10–15 ग्राम ग्लूकोज प्रति दिन 2–3 खुराक मे बांट कर देते हैं।

10. कमजोर शावकों को आगे के स्तन से दूध पिलाना चाहिए क्योंकि इसमें दूध की मात्रा अधिक होती है।
11. 2–3 सप्ताह की आयु में प्रजनन के उपयोग में न आने वाले नर सूकर को बधिया कर देते हैं जिससे उसकी शरीर भार में बृद्धि तेजी से होती रहे।
12. रोगों से बचाव के लिए टीकाकरण एवं कृमिनाशक दवा का प्रयोग शावकों में अवश्य करना चाहिए।
13. वीनिंग – बच्चों को उसके मां से अलग करने की विधि को विनिंग कहते हैं। वीनिंग के उपरांत मादा सूकर में ऋितुचक्र के लक्षण पुनः दिखाई देते हैं। वीनिग साधारणतः 8 सप्ताह में करनी चाहिए।

वृद्धिशील सूकरों का प्रबंधन

आठ सप्ताह के बाद शावकों में शरीर भार में तीव्र गति से वृद्धि होती है जिस कारण उन्हें अधिक पोषण तत्व से भरपुर लगभग 18 प्रतिशत प्रोटीन देना चाहिए। शरीर वजन भार के 35 किलो होने के उपरांत भी उन्हें 18 प्रतिशत प्रोटीनयुक्त राशन देना चाहिए।

विपणन योग्य सूकरों का प्रबन्धन

सूकर जब 60 किलो का हो जाए तो उसे विपणन किया जा सकता है। वैसे अच्छे खान–पान एवं प्रबन्धन द्वारा उन्नत नस्ल का सूकर 1 साल में लगभग 80 किलो का हो जाता है।

सूकरों का रख-रखाव एवं विभिन्न क्रिया कलाप

सूकर एक बहुत तेजी से बढ़ने वाला पशु है एवं यह गलत रख रखाव एवं पोषण से बहुत ज्यादा प्रभावित होते हैं। अतः इसके रख–रखाव एवं पोषण के बारे में जानना बहुत आवश्यक है।

आवास व्यवस्था – अधिक से अधिक लाभ प्राप्त हेतु आवास वैज्ञानिक रूप से बनाया जाना चाहिए। यहाँ इस बिन्दू पर ध्यान रखें कि कम खर्च पर अधिक सुविधाजनक आवास बनाया जाय। इससे निम्नलिखित लाभ होते हैं।

1. सूकरों का निरीक्षण एवं उसका उपचार आसानी से हो सकता है।
2. प्रजनन सुचारू रूप से हो सकता है।
3. सूकरों को पर्याप्त आराम मिल सकते हैं।
4. स्वच्छ पानी एवं आहार पर्याप्त मात्रा में एवं आसानी से मिल सकता है।
5. खराब वातावरण में भी सूकरों को बचाया जा सकता है।

सूकर बाड़ा

आयु, लिंग एवं शारीरिक बनावट के आधार पर सूकरों को विभिन्न बाड़ों में रखा जाता है, परन्तु मुख्यतः इन्हें तीन प्रकार के बाड़े में रखते हैं – खुले बाड़ा, बन्द बाड़ा, मिश्रित बाड़ा

1. **खुले बाड़ा** – ये सामान्यतः छायादार स्थानों पर निर्मित रहता है। हालांकि कम खर्च पर इसका निर्माण होता है और सूकर को पर्याप्त व्यायाम, सुर्य का प्रकाश व स्वच्छ वायु तो उपलब्ध होते हैं परन्तु संतुलित

एवं नियंत्रित आहार नहीं मिल पाते हैं तथा इन प्रकार के बाड़ों में उन्हें वर्षा, गर्मी एवं ठंड के मौसम में बचाव हेतु कुछ विशेष व्यवस्था करनी पड़ती है। इस प्रकार के बाड़े में प्रजनन एवं स्वास्थ्य पर कुछ विपरीत प्रभाव पड़ता है।

2. **बन्द बाड़ा** – बन्द बाड़े में उनके खाने पीने की व्यवस्था रहती है एवं आयु, लिंग एवं शारीरिक बनावट के आधार पर विभिन्न बाड़ा बनाया जाता है।

3. **मिश्रित बाड़ा** – इसमें सूकरों को कुछ सीमा तक बंद बाड़ों एवं कुछ समय तक खुले बाड़ों में रखा जाता है। इन तीनों प्रकार के बाड़ा में सूकर एवं सूकरपालक के लिए सबसे अच्छा मिश्रित बाड़ा होता है।

सूकरी गृह के विभिन्न प्रकार : आयु, लिंग एवं शारीरिक बनावट के आधार पर सूकरों को विभिन्न सूकर उपगृह बना कर रखा जाता है।

1. नर सूकर बाड़ा
2. मादा सूकर बाड़ा
3. बच्चा देने वाली सूकरी का बाड़ा
4. माँस हेतु सूकर पालने का पाड़ा
5. बीमा सूकर हेतु पाड़ा
6. शिशु सूकर (शावक) हेतु बाड़ा

अलग-अलग उम्र व प्रकार के सूकर के लिए खुले एवं ढके क्षेत्र का नाप निम्नवत है।

सूकर के प्रकार	ढका क्षेत्र वर्ग मी.	खुला क्षेत्र वर्ग मी.
नर सूकर	6.25–7.5	8.0–12.0
नर सूकर	1.8–2.7	8.0–12.0
बच्चा देने वाली सूकरी	7.5–9.0	8.0–12.0

प्राथमिक उपचार

किसी भी बीमारी के आगमन के साथ ही पशुओं में बेचैनी, खाना–पीना छोड़ना या कम कर देना, पेशाब व मल में परिवर्तन, पशु की चाल, स्वभाव व आवाज में परिवर्तन व आलस आदि लक्षण देखे जा सकते हैं। प्राथमिक उपचार के साथ–साथ उसे तुरंत पशु चिकित्सक से अवश्य दिखावें।

पाचन संबंधी रोग : पाचन संबंधी रोग में पशु को पतला मल होता है, उसका पेट फुलता है, जमीन में लेटने लगता है। दस्त रोकने के लिए गुड़, नमक व जौ का आटा मिलाकर घोल बना उसे खिलाते रहना चाहिए। इसके अलावे चावल का माड़, खड़िया 25 ग्राम और कत्था 50 ग्राम मिलाकर पशु को देना चाहिए। यदि मल कड़ा हो तो, 15 ग्राम काला नमक, 25 ग्राम सादा नमक, 5 ग्राम हींग और 5 ग्राम सौंफ लेकर 250 ग्राम गुड़ मिलाकर दिन में कई बार पिलाना चाहिए। इसके अलावे 150 ग्राम मैंगसल्फ और 150 मिली अरण्डी का तेल एक बार पिलाना चाहिए।

चोट संबंधी रोग

घाव – घाव को पहले रूई से साफ कर हाइड्रोजन परऑसाईड या पोटाशियम परमैगनेट घोल से साफ कर लेना चाहिए। यदि घाव बहुत पुराना हो तो किसी एंटीबायोटिक पाउडर डाल कर उस पर मलहम लगा दें। नए घाव को साफ कर एंटीबायोटिक पाउडर डाल कर उसे पट्टी बांध दें।

फोड़ा – यदि फोड़ा पका नहीं हो तो उसे मैगसल्फ को गर्म पानी में मिला कर साफ सुथरे कपड़े से सेंकना चाहिए। यदि फोड़ा का मुँह बन गया हो तो उसे और पकने देना चाहिए। पूरा पकने के बाद उससे मवाद निकालने के उपरांत उसे पोटाशियम परमैगनेट से सिंचना चाहिए तथा आयोडीन के घोल में गॉज को भिंगो कर मवाद निकाले हुए गढ़े में भर देना चाहिए।

रक्तस्त्राव – आपस के लड़ाई या आक्समिक चोट से कभी कभी खून बहने लगता है एवं अगर रोका नहीं जाए तो वह जानलेवा हो सकता है। सबसे पहले खून बहने वाले स्थान को पट्टी से बांधकर रखना चाहिए। अगर पैर में खून बह रहा हो तो उसके उपर पट्टी से कस कर बांध दें तथा टिंक्चर आयोडीन के घोल से घाव को साफ करें।

सर्दी एवं गर्मी का प्रभाव

सर्दी लगने पर नीमोनिया से पशु ग्रसित हो सकते हैं। ठंड रोकने के लिए सही प्रकार का बिछावन एवं हीटर या अधिक वॉट का बल्ब बाड़े के हर कोने में लगाना चाहिए। आवश्यकतानुसार बाड़े को चारों ओर से बंद करना या ढकना चाहिए।

अधिक गर्मी होने पर पशुओं का बीमार दिखना, कम खाना–पीना तथा कोने में लेटने जैसा लक्षण दिखाई देता है। अधिक गर्मी में सूकर के शरीर में स्वच्छ पानी का छिड़काव दिन में तीन से चार बार करना चाहिए अगर तालाब हो तो पशुओं को उसमें खुला छोड़ना चाहिए।

खनिज लवण एवं विटामिन की कमी से होने वाले रोग

क. अनीमिया या खून की कमी :

यह आयरन, कॉपर, कोबाल्ट तथा विटामिन की कमी से होता है।

लक्षण : भूख नहीं लगना, दुर्बलता, सांस लेने के तकलीफ एवं सिर एवं कंधों में सूजन एवं अंत में मृत्यु। दूध पीने वाले बच्चों में इस रोग की संभावना काफी रहती है। बड़े पशु पत्थर भी चाटते हैं।

उपचार :

1. भोजन में फेरस सल्फेट देना चाहिए।
2. 0.5 किलोग्राम फेरस सल्फेट+0.5 किलोग्राम कॉपर सल्फेट 100 ग्राम शहद + 0.5 लीटर पानी के मिश्रण को मादा के थन पर लगा देना चाहिए।
3. 1 मि.ली. आयरन डेक्स्ट्रान का इंजेक्शन तीसरे दिन एवं 1 सप्ताह की आयु पर देना चाहिए।

ख. पैराकेटोसिस (जिंक अल्पता)

लक्षण : त्वचा सामान्य से अधिक मोटी एवं खुरदरी हो जाती हैं। प्रभावित त्वचा का बाल गिरने लगता हैं। सूकर का वजन कम हो जाता है। जिंक की कमी का लक्षण बहुत कुछ स्केबीज, जुँ अथवा मैंज के लक्षण से मिलते हैं।

उपचार

खनिज लवण मिश्रण एग्रोमिन फोर्ट पर्याप्त मात्रा में उसके राशन में देना चाहिए।

ग. आयोडिन की अल्पता :

शरीर के विकास के लिए यह अत्यंत आवश्यक है।

लक्षण : आयोडिन की अल्पता से घेघा रोग होता है। सूकर आहार में नाइट्रेट, थायोसाइनाइट या ग्लूकोसाइनाइट होने से भी आयोडीन की अल्पता के लक्षण दिखाई देते हैं। आयोडीन की कमी से बच्चों में शरीर के बाल नहीं उगते हैं।

उपचार :

1. आयोडिन का इंजेक्शन।
2. आयोडिन युक्त नमक।
3. खनिज लवण मिश्रण 3 किलोग्राम प्रति 100 किलोग्राम भोजन में देना चाहिए।

घ. विटामिन 'ए' की अल्पता : यह राशन में कमी के कारण या पूर्णरूप से आंतों द्वारा अवशोषण नहीं होने के कारण होता है।

लक्षण :

1. रतौंधी तथा दिमाग का ठीक से विकास नहीं होना।
2. त्वचा का खुरदरा हो जाना एवं आँखों का श्वेतपन होना।
3. शरीर भार में कमी एवं बच्चे पैदा करने में असमर्थता।
4. तुरंत उपचार के अभाव में ये सारे लक्षण स्थाई हो सकते हैं।

उपचार :

1. 440 अंतर्राष्ट्रीय युनिट विटामिन 'ए' प्रति किलो शरीर भार से माँस में इंजेक्शन सप्ताह में तीन दिन देना चाहिए।
2. विटामिन – 'ए' से बचाव हेतु रेटिनॉल 0.3 माइक्रोग्राम या 5–8 माइक्रोग्राम बीटा कैरोटीन प्रति किलोग्राम की दर से दे सकते हैं।

सूकर की प्रमुख बीमारियाँ एवं उनका निदान

क. सूकर ज्वर

1. विषाणु जनित रोग
2. अन्य नामः सूकर बुखार, सूकर पैराटाइफाइड, स्वाइन फीवर, सूकर प्लेग
3. यह एक भयानक संक्रामक रोग है जो बहुत तेजी से फैलता है। वृद्ध सूकरों के अपेक्षा कम आयु के सूकरों में यह रोग तेजी से फैलता है तथा रोग लगने के बाद पशु को बचाना बहुत मुश्किल हो जाता है। अतः रोग से बचाव हेतु पशु को टीकाकरण आति आवश्यक है।
4. लक्षण : तेज बुखार होना, अरूची, तन्द्रा, कै, दस्त, कमजोरी, सांस लेने में कठिनाई, लड़खड़ाना,

पलकों का चिपक जाना, शरीर पर लाल तथा पीले धब्बे निकल आना इस रोग के मुख्य लक्षण हैं।

5. फैलाव यह बीमारी मल–मूत्र, नाक एवं मुँह के स्त्राव, दुषित खाद्य पदार्थ एवं पानी के सेवन, नए संक्रमित जानवर या कर्मचारी के संपर्क में आने से फैलता है।
6. नियंत्रण : क. सूकर बाड़ो की सफाई ख. संक्रमण मुक्त बाड़ा एवं बर्तन
7. बचावः स्वाइन फीवर टीका प्रत्येक साल लगावें। प्रतिरोधी क्षमता एक साल तक रहता है। गर्भकाल के आखरी समय एवं दो माह के बच्चे को यह टीका नहीं लगाना चाहिए।

ख. खुरहा

1. विषाणु जनित संक्रामक रोग जो हर प्रकार एवं उम्र के सूकर को प्रभावित करता है।
2. लक्षणः तीव्र बुखार, चलने फिरने में असमर्थ, ओंठ, थुथना, जीभ, स्तन एवं खुर पर छाले निकल जाना आदि इस रोग के मुख्य लक्षण हैं।

नियंत्रण :

1. रोगी पशु के मुँह को फिटकरी या पोटाशियम परमैगनेट के घोल से धोना चाहिए।
2. पॉली वेलेन्ट एफ.एम.डी. का पहला टीका जन्म के दो माह के अन्दर लगा देना चाहिए।
3. सूकर बाड़ो की सफाई
4. संक्रमण मुक्त बाड़ा एवं बर्तन

ग. सूकर पराटाईफाइड :

1. जीवाणु जनित रोग
2. लक्षण : बुखार, भूख न लगना, शरीर पर लाल या बैगनी धब्बे निकल आना इस रोग के मुख्य लक्षण हैं।
3. नियंत्रण : क. सूकर बाड़ों की सफाई ख. संक्रमण मुक्त बाड़ा एवं बर्तन

घ. एरिसिपेलस रोग/डायमंड त्वचा रोग

1. जीवाणु जनित रोग (एरिसिपेलोथ्रिक्स रूजियोपैथी)
2. लक्षणः बुखार, शरीर के जोड़े सुज जाते हैं और पशु लंगड़ा हो जाता है।
3. नियंत्रण : क. सूकर बाड़ों की सफाई ख. संक्रमण मुक्त बाड़ा एवं बर्तन

ङ. स्वाइन पॉक्स

1. विषाणु जनित रोग
2. फैलाव : हवा, खान–पान द्वारा। यह बीमारी हिमैटोपाइन्स सुइस (सूकर जूँ) द्वारा फैलता है।
3. लक्षण : पशु को हल्का बुखार रहता है। कुछ दिनों के उपरांत शरीर के नीचले भाग, पैर के उपरी भाग, चेहरा तथा पीठ के पीछले भाग पर छोटे–छोटे दाने निकल आते हैं। कभी–कभी इन दानों में मवाद भर जाते हैं जो अंत में फुट कर पपड़ी बन जाते हैं।

4. नियंत्रण :
   क. रोगग्रस्त पशु को अलग रख कर उन्हें हल्का भोजन देना चाहिए।
   ख. सूकर बाड़ों की सफाई
   ग. सूकर जूँ पर नियंत्रण एवं रोग ग्रस्त पशु का वध कर देना चाहिए।
   घ. संक्रमण मुक्त बाड़ा एवं बर्तन

च. संक्रामक गर्भपात (ब्रुसेल्ला रोग)

1. जीवाणु जनित (ब्रुसेल्ला स्विस)
2. ग्रसित सूकर का वध कर देना चाहिए।
3. गर्भपात के उपरांत जन्में बच्चे को जमीन के अंदर गाड़ देना चाहिए।

छ. गलाघोंटु

1. जीवाणु जनित
2. अन्य नाम – गलफुल्ली, गलघोटा, गलारूकना, डकहा
3. प्रभावित पशु – गाय, बैल, भैंस, बछड़ा, भेड़, बकरी इत्यादि
4. समय एवं प्रभावित क्षेत्र – वर्षाकाल के समय
5. मृत्यु दर – 80–90 प्रतिशत
6. रोग के कारण – दुषित वायु भोजन पानी रोग फैलाने में अचानक खराब मौसम अस्वास्थ्य वातावरण पशु थकान एवं कुपोषण तथा वातावरण की आर्द्रता विशेष रूप से सहायक होती है।
7. उद्भावन अवधि – रोग के लक्षण प्रायः 1 से 3 दिन के अंदर प्रकट हो जाते हैं।
8. रोग के लक्षण सारांश में
   क. प्रथम तापक्रम – 104–108^{0}F तक
   ख. सुस्त, डिप्रेशन, अरूचि एवं एक स्थान पर खड़ा होना
   ग. अधिकांश में सिर गला एवं गर्दन में सूजन
   घ. सूजन सख्त गरम एवं पीड़ायुक्त
   ङ. मुंह से लार का बहना एवं निगलने में कष्ट
   च. प्रायः जीभ में सूजन
   छ. जीभ दातों के बीच में अथवा मुख से बाहर लटकी हुई
   ज. सांस लेने में कष्ट
   झ. पहले कब्ज एवं बाद में दस्त
   ञ. गले में गड़गड़ाहट अथवा घुर्र–घुर्र की आवाज
   ट. आँख से आँसू का बहना एवं कीचड़ आना

ठ. श्वास कष्ट के साथ कीचड़ आना

ड. त्वरित चिकित्सा के अभाव में मृत्यु

चिकित्सा :

1. पोटाशियम परमैगनेट पानी में मिलाकर दें।
2. पोटाशियम आयोडाइड 1 ग्राम को 300 मिली साफ पानी में मिलाकर त्वचा में इन्जेक्शन दें।
3. इन्जेक्शन टेट्रासाइक्लीन, टेरामाइसिन/ऑक्सीट्रेट्रासाइक्लीन 10 मि.ग्रा/किलोग्राम वजन भार की दर से तीन दिन तक दें।
4. इन्जेक्शन इन्रोफलोक्सासिन 2.5–5 मि.ग्रा/किलोग्राम वजन भार की दर से माँस में तीन दिन तक दें।
5. इन्जेक्शन सल्फाडिमीडिन 1.50 मिग्रा/किलोग्राम वजन भार की दर से नस में तीन दिन तक सूई दें।

राहत दवा

1. सूई वेटाल्जीन/एनाल्जीन 20–30 मिली माँस में सूई दें।
2. एंटीहिस्टामिनिक जैसे एभिल/एन्टास्टामिनिक 5–10 मिली, माँस में सूई दें।
3. गाय में नस द्वारा 1–2 लीटर नार्मल सलाइन या डी.एन.एस प्रतिदिन चढ़ावें

सावधानी/बचाव

1. प्रभावित पशु को अन्य स्वस्थ पशु से अलग रखें। रोगी पशु का स्थानान्तरण, बाजार ले जाना या पशु प्रदर्शनी एकदम बंद हो।
2. मरे पशु को जलाया या दफनाया जाए।
3. दूषित पानी का प्रभावी ढंग से परित्याग करें।
4. पशु गृहशाला को असंक्रमित करें।

टीकाकरण : मानसून शुरू होने से पहले जून में एलम प्रेस्पिटेट–एच, एस टीका त्वचा में दें।

खरगोश

खरगोश पालन बहुत ही प्राचीन समय से घरेलु तौर पर अपनाया जाता रहा है। धीरे–धीरे यह व्यवसाय का रूप लेता जा रहा है। इसका उपयोग माँस, ऊन तथा चमड़े के लिए किया जाता है। खरगोश का माँस ''सफेद माँस' के नाम से जाना जाता है। पहले–पहल जंगली खरगोश का शिकार किया जाता था। सन् 1940 में पहली बार भारत के दक्षिणी भाग में 'न्युजीलैंड व्हाईट'' खरगोश पालन शुरू किया गया।

खरगोश पालन की कुछ उपयोगी बातें:

1. यह बहुत ही कम लागत में शुरू किया जाने वाला व्यवसाय है। इसे हम अपने घर से शुरू कर सकते हैं।
2. खरगोश को हम अपने जुठन पर भी पाल सकते हैं। इसमें मनुष्यों के भोजन से किसी तरह की कोई प्रतियोगिता नहीं होती है।
3. यह अन्य पशुओं की तरह हरे चारे के विचरण पर ही आश्रित रह सकता है।
4. खरगोश में भोजन को माँस में बदलने की क्षमता मुर्गा–मुर्गी के बाद सबसे अधिक होती है।
5. यह एक ऐसा पशुधन है जो जल्द ही मुनाफा लौटाने लगता है, क्योंकि इसकी शारीरिक वृद्धि दर अत्यधिक तेज होती है।
6. इसमें अन्य पशुओं की तुलना में बीमारी कम होती है।
7. खरगोश के माँस में प्रोटीन की मात्रा ज्यादा होती है तथा वसा, कालेस्ट्रॉल और सोडियम की मात्रा कम होती है।
8. रोएं वाले खरगोश के ऊन की गुणवत्ता श्रेष्ठ होती है जो कि गर्म, महीन तथा हल्की होती है।
9. इसके मल–मूत्र में ज्यादा नाईट्रोजन, फॉस्फोरस तथा पोटाश होने की वजह से इसे उत्तम रसायनिक खाद के रूप में उपयोग में लाया जाता है।
10. इसकी माँस की गुणवत्ता अच्छी होती है तथा इसे बिना किसी धार्मिक बाध्यता के उपयोग किया जा सकता है।

भारत में पाये जाने वाली प्रजातियाँ

भारत वर्ष में दो तरह के खरगोश का पालन शुरू किया गया है:

1. **ऊन के लिए :** ऊन उत्पादन के लिए मुख्य रूप से अंगोरा नस्ल को पाला जाता है। यह 20^0 से. से 36^0 से. तक के तापमान पर जीवित रहता है। हालांकि इसके लिए अनुकूल तापमान 15^0 से.–18^0 से. है।
2. **माँस तथा चमड़ा के लिए :** माँस तथा चमड़ा के लिए मुख्य रूप से न्यूजीलैंड व्हाईट नस्ल का पालन किया जाता है। यह 20^0 से. से 40^0 से. तक के तापमान को सहन कर सकता है।

ऊन उत्पादन हेतु उपयुक्त प्रजातियाँ:

1. **जर्मन अंगोरा** – इस जाति के खरगोश का शरीर प्रायः गोल होता है। इसे जैएंट अंगोरा के नाम से भी जाना जाता है। इसकी उत्पत्ति स्थान जर्मनी है। यह ऊन उत्पादन के हिसाब से काफी अच्छा है

जो कि प्रति वर्ष 800–900 ग्राम ऊन उत्पादन करती है। इसके बच्चे का वजन 280 से 340 ग्राम तक होता है। वयस्क का वजन 2.5 से 4.5 किलो तक होता है।

2. **ब्रिटिश अंगोरा** – इसका शरीर पतला तथा लंबा होता है। इसकी सिर छोटी तथा चौड़ी होती है। इसकी कान साधरणतः छोटी होती है। इसके मादा का वजन 3 किलो से 3.5 किलो ग्राम तक होता है। इससे प्रति वर्ष 500–550 ग्राम ऊन उत्पादन होता है। इसके बच्चे का वजन 40 से 60 ग्राम होता है तथा वयस्क का वजन 2.5 से 3 किग्रा होता है।

3. **रसियन अंगोरा** – यह बड़े वजन की जाति है। इसे ऊन उत्पादन के लिए पाला जाता है। इसकी ऊन थोड़ी रूखड़ी होती है। मादा का वजन 3.5 किलो तक होता है। इस जाति के खरगोश से 400–500 ग्राम ऊन प्रति वर्ष प्राप्त होता है।

4. **अंगोरा संकर नस्ल** – संकर नस्ल की जाति का ऊन उत्पादन में काफी सहयोग होता है। इस जाति से ऊन उत्पादन 350–450 ग्राम तक होता है।

माँस तथा चमड़ा उत्पादन हेतु उपयुक्त प्रजातियाँ :

1. **न्युजीलैंड व्हाईट** – इस प्रजाति की उत्पत्ति कैलिफोर्निया में हुई है। सामान्यतः वयस्क का वजन 3.5 – 4.5 कि. तक होता है। यह माँस एवं चमड़े के लिए सबसे उपयुक्त प्रजाति है। इसका शारीरिक वजन 2 किलो तक सिर्फ 7 सप्ताह में पहुँच जाता है। इसका रंग उजला, चमड़ी गुलाबी (पर्पल) और आँखें भी गुलाबी होती है।

2. **व्हाईट जैएंट** – इस प्रजाति की उत्पत्ति रसिया में 1978 में हुई। इसका रंग सफेद होता है और न्यूजीलैंड व्हाईट प्रजाति से काफी समानता लिए होता है। परन्तु इसका शरीर भारी, पैर लम्बा एवं शरीर चौड़ा होता है। इसकी चमड़ी तथा आँखें गुलाबी होती है। इसके वयस्क का वजन 3.5 – 4.5 कि. तक होता है।

3. **ग्रै जैएंट** – यक काफी फुर्तीली प्रजाति है। यह भूरे लाल रंग का होता है। इसकी शारीरिक बनावट जंगली खरगोश की तरह ही होती है। आकार मध्यम, शरीर गठीला, चमड़ी काले रंग की और आँखें भूरे रंग की होती है। वयस्क का वजन 3–4 किलो का होता है।

4. **सोवियत चिंचिला** – यह जंगली तथा हिमालयन का संकर नस्ल है। इसकी पहचान उत्कृष्ट माँस की वजह से है। रंग काला और ऊजला का सम्मिश्रण होता है तथा आँखें काली होती है। इसके वयस्क का वजन 2.5–3 किलो होता है।

5. **डच** – इसकी उत्पत्ति हालेंड में हुई है। शारीरिक रचना गठीली होती है। यह छोटे आकार की प्रजाति है लेकिन इससे माँस का उत्पादन ज्यादा होता है। रंग आधा ऊजला तथा आधा काला होता है और कभी–कभी दोनों का मिश्रण होता है। वयस्क का वजन 2.5–3 किलो तक होता है।

6. **ब्लैक ब्राउन** – यह संकर नस्ल है जिसकी उत्पत्ति सोवियत चिंचिला तथा ग्रे जैएंट से हुई है। यह माँस के लिए उपयुक्त जाति है। रंग काला तथा काले–भूरे का मिश्रण होता है। बनावट गठीली होती है तथा इसमें जल्दी वयस्क हो जाने का गुण होता है। वयस्क का वजन 3.5–4 किलो तक होता है।

7. **फलेमिसे जैएंट** – यह प्रजाति बड़े आकार की होती है तथा इसका प्रचलित नाम ''जैएंट'' है। यह माँस के लिए उपयुक्त प्रजाति है। इसका रंग हल्का भूरा होता है। कभी–कभी यह नीला या सफेद रंग का भी होता है। शरीर पीछे की तरफ चौड़ा होता है। वयस्क का वजन 5–6.5 किलो का होता है।

खरगोश की साप्ताहिक वजन वृद्धि	
पहला सप्ताह – 100 ग्राम	दूसरा सप्ताह – 200 ग्राम
तीसरा सप्ताह – 350 ग्राम	चौथा सप्ताह – 500 ग्राम
छठा सप्ताह – 700 ग्राम	आठवाँ सप्ताह – 900 ग्राम
दसवाँ सप्ताह – 1200 ग्राम	बारहवाँ सप्ताह – 1400 ग्राम
वयस्क का वजन 2.5 –3 किलो	

स्वस्थ खरगोश एवं बीमार खरगोश की पहचान		
मानदंड	*स्वस्थ्य खरगोश*	*बीमार खरगोश*
लक्षण	चंचल, फुर्तीला	सुस्त
बाल / रोंआ	चमकीला	रूखड़ा
आँखें	चमकीला	किच्ची, पानी बहता हुआ
भोजन	सामान्य	कम या बंद
श्वास	साधारण	तेज या कम

खरगोश में होने वाली आम बीमारियां

1. **श्वास की बीमारी :** खरगोश में श्वांस की तकलीफ होना आम बात है जो कि खरगोश के रहने के स्थान पर ज्यादा भीड़–भाड़ रहने के कारण होता है। इस बीमारी की वजह से श्वांस तेज चलने लगता है, नाक से पानी आने लगता है तथा नाक से पतला से गाढ़ा स्राव निकलने लगता है।
2. **कोक्सीडियोसिस :** यह बीमारी खरगोश में आंतरिक परजीवी के कारण होता है जिसका नाम कोक्सीडिया है। इस बीमारी के प्रमुख लक्षण हैं – भूख की कमी, सुस्ती, पतला पैखाना, शरीर दुबला, चमड़ी रूखड़ी, पेट फुलना, लीवर बढ़ जाना और अकस्मात मृत्यु हो जाना।
3. **रोंआ बॉल बनाना :** खरगोश द्वारा अपने शरीर को चाटते–चाटते रोंए का ज्यादा भाग पेट के भीतर चला जाता है जो कि धीरे–धीरे एक बॉल का आकार ले लेता है। इसके कारण भूख खत्म हो जाती है, पैखाना पतला होने लगता है तथा पेट में गैस बनने लगता है। इस वजह से खरगोश दांत पीसने लगता है और रोंए की चमक खत्म हो जाती है।
4. **आँख आना :** आँखों की बीमारी धूल–कण के साथ–साथ विटामिन की कमी के कारण भी होती है जिसमें आँखें फुल जाती है, पानी आने लगता है, किच्ची आने लगती है और आँखें लाल हो जाती हैं।
5. **मेंज बीमारी :** यह बीमारी खरगोश में आम है। इसका कारण है– रहने की जगह के नीचे पानी का जमाव होना। इसके मुख्य लक्षण हैं – चमड़ी का फटना, रोंआ खत्म होने लगना इत्यादि।

खरगोश पालन की कुछ ध्यान देने योग्य बातें :

1. वयस्कता – वह अवस्था है जब नर और मादा का शरीर क्रमशः शुक्राणु तथा अंडाणु उत्पन्न करने की स्थिति में आ जाते हैं। साधारणतः खरगोश पूर्ण वयस्क 4–5 महीनों में ही हो जाते हैं। मगर प्रजनन के लिए तैयार होने में 6–10 महीने लग जाते हैं।

2. छोटे नस्ल के नर और मादा जल्द ही प्रजनन के लिए तैयार हो जाते हैं। छोटे नस्ल के खरगोश 5–6 माह, मध्यम नस्ल के 6–7 माह तथा बड़े नस्ल के खरगोश 8–10 महीनों में प्रजनन हेतु तैयार होते हैं।
3. मादा खरगोश नर खरगोश के पास पहुँचकर ही गर्म होती है अन्यथा नहीं। इस गुण को ''इण्ड्यूस्ड ओभील्यूटर'' कहा जाता है।
4. प्रजनन के लिए मादा खरगोश को नर के पिंजरे में ले जाना चाहिए क्योंकि मादा अपने पिंजरे में दूसरे खरगोश को पसंद नहीं करती और लड़ाई होने लगता है।
5. खरगोश की गर्भावस्था 30–32 दिनों की होती है। मादा खरगोश बच्चे के जन्म से 1–2 दिन पूर्व अपने शरीर से रोंआ नोच कर घोसला बनाने लगती है।
6. मादा बच्चों को दिन में सिर्फ एक ही बार दूध पिलाती है। माता से बच्चों को 6–7 सप्ताह में ही अलग करना चाहिए।
7. एक मादा से साल में 5 बार बच्चा लिया जा सकता है। रोंआ वाले प्रजातियों में गर्भावस्था 28–38 दिनों का होता है, जबकि माँस वाले में यह 30–32 दिनों का होता हे।
8. गर्भाधान हमेशा सुबह या शाम ठंडे वातावरण में कराना चाहिए।
9. भ्रामक गर्भाधान : इसमें मादा में बच्चा देने के सभी लक्षण दिखते हैं जैसे, मादा अपने फर से बच्चों के लिए घोंसला बनाने लगती है, पेट फुल जाता है तथा छीमी से दूध आने लगता है। यह लक्षण 15–18 दिनों तक चलता है।
10. बच्चा देने वाली मादा को 24 दिनों में गद्देदार बच्चा बक्से में स्थांतरित कर देना चाहिए।
11. छोटे बच्चों की आँखें 10–12 दिनों बाद खुलती है तथा उसी समय उनके कान भी काम करने शुरू करते हैं।
12. खरगोश मुख्यतः शाकाहारी होते हैं। इनके भोजन में दाना, घास, रसोई घर का बचा खाना, खराब फल, हरा चारा इत्यादि होते हैं। अच्छे उत्पादन के लिए इसे 100–120 ग्राम दाना प्रतिदिन देना चाहिए।
13. खरगोश को हरा चारा सूखा कर देना चाहिए नहीं तो ज्यादा पानी की मात्रा से पेट खराब होने की संभावना रहती है।
14. वर्षा के समय में दाना को 15 दिनों से ज्यादा समय का दाना स्टोर करके नहीं देना चाहिए। बच्चों का वजन 40–60 ग्राम तक होता है। जो भी बच्चा 40 ग्राम से कम हो उस पर ज्यादा ध्यान दिया जाना चाहिए।
15. बच्चों को ठंढा तथा गर्मी से बचाना चाहिए क्योंकि बच्चों में रोंआ चार दिनों बाद आना शुरू होता है। बच्चों को माँ से बिलगाव के बाद शुरू के 12–19 दिनों तक दाना 8–10 ग्राम तक देना चाहिए।
16. बच्चों को माँ से अलग करने को ही विनिंग कहते हैं जो कि 4–6 सप्ताह बाद किया जाता है। माँस प्रजाति में विनिंग 28 दिनों पर किया जाता है।
17. मादा को एक बार बच्चा देने के बाद 30 दिनों तक आराम देना चाहिए। विनिंग के बाद नर तथा मादा को अलग–अलग किया जाता है जिसे सेक्सिंग कहा जाता है।
18. माँस उत्पादन के लिए खरगोश को 12 सप्ताह में प्रयोग में लाना चाहिए।

मछली पालन

तालाब में मछली का बीज संचय करने के पूर्व तालाब की तैयारी कर लेनी चाहिए ताकि उसमें मछली का प्राकृतिक भोजन उपलब्ध रहे। मछली का प्राकृतिक भोजन प्लैंकटन है जिसकी प्रचुर मात्रा में उपलब्धता होनी चाहिए क्योंकि मछलियाँ पानी में उपलब्ध प्लैंकटन को दौड़ कर नहीं पकड़ती हैं बल्कि यह श्वसन प्रक्रिया के दौरान स्वतः उनके मुख में जाता है जहाँ चुनाव होता है और फिर पाचन तंत्र में जाता है इसलिए जीरा संचय के पूर्व तालाब की अच्छी तैयारी होनी चाहिए ताकि प्रचुर मात्रा में प्लैंक्टन तैयार हो सके।

पानी भरने के पूर्व तालाब की तैयारी

- तालाब के मिट्टी की जाँच करवा लें।
- तालाब के सतह की सफाई करवा लें, पेड़–पौधों की जड़, बड़े पत्थर इत्यादि को हटवा दें।
- तालाब की मिट्टी को ढीली कर दें।
- फिर चूना डालकर इसे मिट्टी के साथ बराबर अच्छी तरह मिला लें। आधा एकड़ के लिए 20 किलो चूना, (40 किलो / एकड़) डालें। चूना की मात्रा मिट्टी के पी.एच. एवं उर्वरा शक्ति पर निर्भर करेगा।
- अब उसमें पानी भर दें या बरसात के पानी को भरने के लिए छोड़ दें।

खाद का प्रयोग क्यों?

- तालाब की मिट्टी को उपजाऊ बनाने के लिए खाद का प्रयोग करना जरूरी है।
- खाद के प्रयोग से मछली के प्राकृतिक भोजन की उपज अच्छी होती है।
- नये तालाब की मिट्टी भूरभूरी होती है इसके प्रयोग से मिट्टी की संरचना में सुधार आता है।
- इसके प्रयोग से तालाब के पानी का रिसाव भी कम होता है।

विभिन्न प्रकार के खाद का प्रयोग

तालाब में मुख्यतः दो प्रकार की खादों का उपयोग किया जाता है–

- **कार्बनिक खाद** – जैविक पदार्थों के सड़ने–गलने से जो खाद प्राप्त होता है। जैसे – मवेशियों का खाद, सड़े–गले पत्ते–पत्तियों का कम्पोस्ट।
- **अकार्बनिक खाद** – इसमें नाइट्रोजन, फॉस्फोरस, पोटाश युक्त खाद आते हैं।

खाद का प्रयोग कैसे करें?

तालाब में खाद का प्रयोग, मिट्टी में उपस्थित जैविक कार्बन की उपस्थिति के आधार पर की जाती है। प्रारम्भिक तैयारी (जीरा संचयन के 15 दिनों पूर्व) कार्बनिक खाद तालाब में दी जाने वाली खाद की कुल मात्रा का 20 प्रतिशत भाग देना चाहिए। यदि सदाबहार तालाब में विष के रूप में महुआ खल्ली इस्तेमाल की गई हो तो खाद की मात्रा आधी कर देनी चाहिए। बाकी बचे 80 प्रतिशत खाद को दस भागों में बाँट कर प्रतिमाह देनी चाहिए जबकि रासायनिक खाद को 10 बराबर भागों में बाँट कर तालाब के चारों ओर पानी में घोलकर छिड़काव करना चाहिए। खाद की बड़ी मात्रा डालने के बदले छोटी–छोटी मात्रा में (15–15 दिनों के अन्तराल पर) प्रयोग करना उचित होता है। रासायनिक खाद का प्रयोग, कार्बनिक खाद के प्रयोग करना उचित होता है। रासायनिक खाद

का प्रयोग, कार्बनिक खाद के प्रयोग के 4–5 दिनों बाद करना चाहिए। तालाब में जैविक खाद के रूप में किसी भी मवेशी के खाद का प्रयोग किया जा सकता है जैसे – मुर्गी, सूकर, गाय, बैल इत्यादि। चूँकि कुछ खादों की उर्वराशक्ति अधिक होती है इसलिए उनको कम मात्रा में प्रयोग करना चाहिए। साथ ही खाद का प्रयोग सूर्योदय के बाद ही करना चाहिए। साधारणतः तालाब में भैंस के गोबर के प्रयोग की मनाही की जाती है क्योंकि उसमें एक प्रकार का रंग होता है जो पानी के रंग को काला कर देता है जिससे प्रकाश संश्लेषण में बाधा होती है जिससे पानी में ऑक्सीजन के उत्पादन में कमी आ जाती है। गाँवों में मवेशी का गोबर प्रचूर मात्रा में उपलब्ध होता है इसलिए तालाब में गोबर के उपयोग की सलाह दी जाती है। कुछ किसानों का अनुभव है कि तालाब की तैयारी के समय गोबर के साथ–साथ यदि तालाब में पुआल भी उपयोग किया जाय तो प्लैंक्टन का उत्पादन अच्छा होता है।

गोबर का प्रयोग

- जीरा संचय से 15 दिन पहले तालाब में गोबर डालें, आधा एकड़ के तालाब में शुरू में 500 किलो गोबर डालें, (1000 किलो/एकड़) और फिर प्रति माह 400 किलो/एकड़ करके डालते जाएँ।
- गोबर का तालाब के किसी एक कोने में डलवा दें जहाँ से यह धीरे–धीरे बह कर पानी में घुलता जाएगा।

डीएपी का प्रयोग

मिट्टी की जाँच के परिणाम के अनुसार अगर फॉस्फेट की कमी हो तो मछली संचय के प्रथम माह में डीएपी 8 किलो/एकड़ डालें। फिर प्रति माह 12 किलो/एकड़ डालते जाएँ। रासायनिक खाद का प्रयोग हमेशा पानी में घोलकर पूरे तालाब में छीट कर करना चाहिए ताकि पानी में अच्छी तरह घुल सके। तालाब में पानी के अन्दर लकड़ी का मचान बनाकर उस पर रासायनिक खाद रख देने से यह धीरे–धीरे पानी में घुलता रहेगा और उसका अच्छा उपयोग हो सकेगा।

खाद का प्रयोग कब करें?

- मछली संचय के 15 दिन पूर्व गोबर का प्रयोग करें।
- हर महीने।
- पानी का रंग का जब मटमैला हो जाए।
- अगर प्रर्याप्त प्राकृतिक भोजन की उपज न हो, जो पानी के रंग से भी पता चल जाएगा, (अगर हरा–भूरा है तो ठीक है) तभी खाद का प्रयोग करें।

खाद का प्रयोग कब न करें?

- अगर पानी का रंग अत्यधिक हरा हो गया हो या सतह पर काई का जमाव हो जाए तो खाद का प्रयोग बंद कर दें।
- पानी से बदबू आने पर।
- मछलियों में बीमारी के लक्षण दिखने पर।
- ठंढ के मौसम में जब पानी का तापमान बहुत कम हो।

– पानी में ऑक्सीजन की कमी होने पर।

चूना का प्रयोग क्यों?

- चूना पानी की छारीयता को बढ़ाता है और मिट्टी में कैल्शियम की उपलब्धता बढ़ाता है।
- चूना पानी को साफ करता है।
- ऑक्सीजन की कमी के कारण दूसरे विषैले गैसों को नियंत्रित करता है।
- गोबर को सड़ाने में मदद करता है।
- मछलियों को बीमारी से बचाता है।
- पानी की उर्वरा शक्ति को बढ़ाता है और प्राकृतिक भोजन के निर्माण में मदद करता है।

चूना की मात्रा एवं प्रयोग विधि

- आधा एकड़ के तालाब के लिए संचय से पहले 20 किलो चूना (40 किलो/एकड़) एवं संचय के बाद प्रति माह 5 किलो चूना (10 किलो/एकड़) डालें।
- तालाब में मोटा कीचड़ जमा होने से अधिक मात्रा में चूने का प्रयोग करना चाहिए, जब तल बलुई/पतला कीचड़युक्त हो तो कम मात्रा में चूना की आवश्यकता होगी।

प्रयोग विधि

संचय से पूर्व सूखे तालाब की मिट्टी में मिलाकर अथवा पानी है तो समान रूप से पूरे तालाब में डलवा दें। यदि तालाब में काफी कीचड़ जमा हो तो उसमें कली चूना डाल कर अच्छी तरह मिला दें। चूना मिलाने के लिए यदि तालाब में चूना छिड़काव के बाद गाय–बैल को जाने दिया जाय तो उनके पैर से रौंदने के कारण चूना अच्छी तरह मिट्टी में मिल जायेगा।

मिश्रित मछली पालन

कौन मछली पालें और क्यों?

- जो मछली खाने में स्वादिष्ट हो।
- जिसका जीरा (मत्स्य बीज) आसानी से उपलब्ध हो।
- जिसकी माँग बाजार में हो।
- जिसकी बढ़त तालाब में अच्छी हो।
- तालाब के लिए उपयुक्त मछली है – रोहु, कतला, मृगल, कॉमन कार्प (पहाड़ी)। बाजार में इनकी माँग भी अच्छी है एवं खाने में भी ये स्वादिष्ट है।
- इसके साथ–साथ सिल्वर कार्प भी पाल सकते हैं। तालाब में प्राकृतिक रूप से घास उपलब्ध है तो ग्रास कार्प भी पालें।

ग्रास कार्प मछली क्यों पालें?

यदि आपके तालाब में जलीय मुलायम घास हों तो ग्रास कार्प उसकी सफाई कर देगी और साथ ही यह दूसरे मछलियों की तुलना में काफी तेजी से बढ़ने वाली मछली है। यह प्रतिदिन अपने वजन के बराबर घास खाती है। इतना अधिक खाने के कारण यह सभी खाने को पचा नहीं पाती है और अनपचा भोजन उसके मल से निकलता

है जो दूसरी मछलियों जैसे कॉन कार्प एवं मृगल के लिए भोजन होता है अर्थात एक मछली ग्रास कार्प को भोजन देने से तीन मछलियों को अपने आप ही भोजन प्राप्त हो जाता है।

ग्रास कार्प को क्या दें और कैसे दें

यदि तालाब में समुचित मात्रा में मुलायम घास उपलब्ध न हो तो फल–सब्जी के पत्ते, बरसीम, केले के पत्ते इत्यादि दे सकते हैं। खाना देने के लिए बाँस को बाँध कर चौकोर बना लें एवं एक बाँस तालाब में गाड़ कर उसमें फंसा दें। अब जो भी घास/पत्ता देना हो तो इस चौकोर में डालें।

यदि 2–3 घंटे में चौकोर का घास/पत्ता खत्म हो जाय तो दी गयी भोजन की मात्रा ठीक है परन्तु यह और जल्दी खत्म हो जाय तो इसकी मात्रा बढ़ा दें। यदि 5–7 घंटे में वह खत्म न हो तो दी जाने वाली मात्रा कम कर देना चाहिए।

मछलियों के बीज की मात्रा

1. मछलियों के बीज की मात्रा उसकी लम्बाई पर निर्भर करती है।
2. अगर 1 इंच का जीरा डाल रहे हैं तो आधा एकड़ के लिए 5000 जीरा डालें (10,000 प्रति एकड़ की दर से)।
3. अगर 2.5 इंच का जीरा डाल रहे हैं तो आधा एकड़ में 2000 जीरा डालें (4000 प्रति एकड़ की दर से)।
4. किसानों का यह मानना है और उपयुक्त भी लगता है कि तालाब में यदि अधिक मात्रा में जीरा डाल दिया जाय और कुछ महीनों में ही यदि इसे निकाल कर बेचना शुरू कर दिया जाय तो मत्स्य पालक को जल्दी आमदनी मिलनी शुरू हो जाती है। यह पद्धति काफी प्रचलित हो रही है लेकिन इसका ध्यान रखें कि मछलियाँ बहुत छोटी नहीं रह जायें।

चूँकि तालाब में मछलियों के स्थान एवं भोजन निश्चित हैं इसलिए पाली जाने वाली मछलियों का अनुपात भी निश्चित होना चाहिए। तालाब में सभी छः प्रकार की मछलियों का पालन करना चाहिये ताकि तालाब के सभी जगहों का समुचित उपयोग हो सके। साथ ही साथ सभी प्रकार के भोज्य पदार्थ का उपयोग हो सके। तालाब में कम से कम तीन प्रकार की मछलियों का संचय अवश्य करना चाहिए। देखा गया है कि सिल्वर कार्प का अनुपात अधिक होने पर कतला की बढ़त पर प्रभाव पड़ता है इसलिए इसकी मात्रा कतला से कम रखनी चाहिए। यदि तालाब में ग्रास कार्प के लिए उपयुक्त घास नहीं हो तो ग्रास कार्प का संचय कम करना चाहिए। सुविधानुसार यदि 3, 4, 5 या 6 प्रकार की मछलियों का संचयन करना हो तो निम्न तालिका का प्रयोग कर सकते हैं–

1. कतला : रोहु : मृगल – 40:30:30
2. कतला : रोहु : मृगल : कॉमन कार्प – 30:30:15:25
3. कतला : रोहु : मृगल : कॉमन कार्प : ग्रास कार्प – 30 : 15 : 25 : 20 : 10
4. कतला : सिल्वर कार्प : रोहु : मृगल : कॉमन कार्प : ग्रास कार्प – 10 : 25 : 15 : 20 : 20 : 10

बीज संचयन में सावधानियाँ

1. जीरा ऑक्सीजन पैक वाली पॉलीथीन में लायें, इससे परिवहन के दौरान हुई मृत्यु दर कम होती है।
2. संचयन प्रातः काल या सूर्यास्त के समय करना चाहिए, जब पानी ठंढा हो।

3. प्लास्टिक के थैली में भरे जीरे को सीधे पानी में न डालें, इसे थोड़ी देर तालाब के पानी में रखें ताकि थैली तथा तालाब के पानी का तापमान समान हो जाए।
4. जीरों को स्वतः थैली से तालाब में जाने दें।
5. संचयन के दिन तालाब में पूरक आहार न छींटे।
6. एक गमछा को पानी में डुबाते हुए चारों कोनों पर पकड़े एवं इसके ऊपर मछलियों को छोड़े। यदि पोटाशियम परमैंगनेट के घोल में जीरा को उपचारित कर दिया जाय तो इनकी जीवितादर भी अच्छी होती है।

मछलियों का प्राकृतिक आहार

मछलियों का प्राकृतिक आहार प्लैंक्टन (छोटे–छोटे जलीय जीव) हैं जिन्हें खुली आँखों से नहीं देख सकते हैं। तालाब के पानी के रंग को देखकर पता लगाया जा सकता है कि मछलियों का प्राकृतिक आहार प्रर्याप्त है या नहीं। अगर पानी का रंग भूरा है तो प्राकृतिक आहार प्रर्याप्त है या नहीं। अगर पानी का रंग भूरा है तो प्राकृतिक आहार ठीक मात्रा में है। इन्हें देखने के लिए पानी को किसी शीशे के बरतन में (ग्लास या बोतल) में भरकर गौर से देखें, बहुत सारे एक ही जैसे छोटे–छोटे जीव आएँगे, ये प्लैंक्टन दो तरह के होते हैं यदि जंतु समूह के होंगे तो इन्हें जू–प्लैंक्टन और यदि पौधा समूह के होंगे तो इन्हें वनस्पति प्लैंक्टन कहते हैं। मछलियों के प्राकृतिक भोजन की उपलब्धता की जाँच के लिए (प्लैंक्टन नेट) के माध्यम से 50/100 ली. पानी तालाब के विभिन्न भागों से लेकर छाने। पानी तो जाली से बाहर निकल जाएगा लेकिन प्लैंक्टन शीशे की नली में जमा हो जाएगा। इस शीशे की नली में नमक के 2–4 दाने डाल दें। सारे प्लैंक्टन मर कर नीचे बैठने लगेंगे। यदि बैठने के बाद इनकी मात्रा लगभग एक मि.ली. है तो तालाब में समुचित प्लैंकटन है अन्यथा उचित व्यवस्था करनी चाहिए।

मछलियों के लिए पूरक आहार

प्राकृतिक आहार क साथ–साथ मछलियों के उचित बढ़वार के लिए पूरक आहार भी देना चाहिए। अगर तालाब में प्राकृतिक आहार की मात्रा संतोषजनक न हो तो खाद डालें और पूरक आहार की मात्रा बढ़ा दें। साधारणतः पूरक आहार निम्न तालिका के अनुसार देनी चाहिए–

माह	किलो/एकड़	माह	किलो/एकड़
1 माह	2	2 माह	3
3 माह	4	4 माह	5
5 माह	6	6 माह	7
7 माह	8	8 माह	9
9 माह	10	10 माह	11
11 माह	12	12 माह	13

1. चावल का कोढ़ा एवं सरसों की खल्ली 1:1 के अनुपात में यानि आधा–आधा मिलाकर, दिए गए तालिका के अनुसार दें। (सरसों की खल्ली की जगह मूँगफली की खल्ली भी दे सकते हैं) खाना सुबह–शाम एक निश्चित समय एवं जगह पर ही डालें। इसके साथ ही मिनरल मिक्सचर भी भोजन में एक प्रतिशत की दर से देना चाहिए।

क. बोरा में खाना डालकर, उसमें छेद कर दें और उसे तालाब में लटका दें। इसके लिए प्लास्टिक के बोरे का इस्तेमाल करें। जैसे ही खाना खत्म होगा बोरा हल्के हो जाने के कारण अपने आप ऊपर आ जाएगा। एक एकड़ के तालाब में इस तरह तीन चार जगह खाना देने की व्यवस्था करनी चाहिए।

ख. केला के तना के साथ भी बोरा बाँध सकते हैं ताकि तना बहता रहेगा और भोजन पूरे तालाब में फैलेगा।

ग. खाना को सुबह–शाम निश्चित समय, स्थान एवं मात्रा में दें।

2. गेहूँ का चोकर, जौ का चूर्ण, अन्य अनाज की खल्ली, मकई का चूर्ण, सोयाबीन का चूरा आदि पूरक आहार में इस्तेमाल कर सकते हैं।

3. माँस का चूरा, हड्डी का चूर्ण, घोंघा, सितुआ एवं पानी के अन्य कीड़ों का चूर्ण आदि भी खाने में मिला कर दिया जा सकता है।

समन्वित मछली पालन

मछलीयों के साथ पशुपालन को समायोजीत करने से मछलियों की भोजन की समस्या हल हो जाती है तथा इसे समन्वित मछली पालन कहते हैं। समन्वित मछली पालन से लाभ –

एक निर्धारित जगह का उपयोग हम 4–5 गुणा ज्यादा करके अपनी आमदनी को भी उसी अनुपात में बढ़ा सकते हैं जिसमें तालाब के मुंडेर पर साग–सब्जी तथा पौधे लगा सकते हैं। तालाब से जानवरों के पानी की समस्या का समाधान तथा जानवरों तथा जानवरों द्वारा विर्सजीत अवयवों द्वारा मछलियों की भोजन की समस्या का समाधान हो जाता है।

मछली - सह- धान की खेती क्यों और कैसे?

मछली–सह–धान की खेती से किसानों को अतिरिक्त फायदा है। धान के खेतों में डेढ़ से दो महीने पानी रहता है, इस पानी में मछली पालने से अतिरिक्त आय तो होती ही है साथ–साथ धान की उपज में भी 5–15 प्रतिशत तक की वृद्धि होती है। धान–सह–मछली पालन के लिए खेत की तैयारी महत्वपूर्ण है। खेत के चारों तरफ 3 फीट चौड़ा एवं 3 फीट गहरा गड्ढा बनाएँ। खेत के बीच में या किसी तरफ एक या दो गड्ढा भी बना सकते हैं ताकि खेत में पानी सूख भी जाए तो गड्ढे में पानी बचा रहे और मछलियाँ उसमें आ–जा सके। जब खेत पूरी तरह सूख जाता है तो मछलियाँ गड्ढे में चली जाती हैं। वहाँ से आप इन्हें इच्छानुसार निकाल सकते हैं। मछली–सह–धान की खेती से, खेत में उपलब्ध अतिरिक्त जगह एवं पानी का उचित उपयोग हो जाता है। मछली–सह–धान की खेती के लिए कॉमन कार्प (पहाड़ी) मछली का चुनाव करें। धान के खेतों में कॉमन कार्प मछली की बढ़त बहुत अच्छी होती है। ये मछली खेत की मिट्टी को खोदती रहती है जिससे धान की खेती को फायदा होता है। पहाड़ी के अलावा दूसरी मछलियाँ एवं झींगा (प्रॉन) भी पाल सकते हैं। अगर खेत निचली जगह पर बनी हुई है तो मांगूर, सिंघी आदि भी पाल सकते हैं।

खेत की तैयारी

धान–सह–मछली पालन में मछली के लिए अलग से तैयारी नहीं करनी पड़ती है बल्कि धान की फसल लगाने के लिए जो तैयारी होती है उसी जैविक खाद से मछलियों के लिए प्राकृतिक भोजन तैयार होता है। यदि प्लैंक्टन की कमी लगे या समुचित मात्रा में प्लैंक्टन तैयार न हो सके तो गड्ढे में धान–सह–मछली की खेती शुरू करने

के 15–20 दिन बाद गोबर एवं चूना डाल सकते हैं। (चूना 40 किलो/हे. एवं गोबर 400 किलो/हे. की दर से)। पुनः 15 दिन के बाद इसी मात्रा में चूना और गोबर का प्रयोग करें। इस व्यवस्था में साधारणतः दो से तीन महीने तक ही मछली पालन किया जाता है। इस दौरान मछलियाँ लगभग 150 ग्राम से 200 ग्राम तक की हो जाती है, जिसे बाजार में आसानी से बेचा जा सकता है।

मत्स्य बीज का संचयन

1. मत्स्य बीज का संचयन 2.5 इंच का जीरा 2500/एकड़ की दर से करें।
2. संभव हो तो कॉमन कार्प (पहाड़ी मछली) का भी संचय करें, अन्यथा रोहु–कतला–मृगल 30:30:40 के अनुपात से संचय करें।
3. धान की रोपनी के 10–15 दिन बाद ही जीरा का संचय करें, ताकि धान के पौधे की जड़ मिट्टी में जम जाए और मछलियाँ इन्हें कोई क्षति न पहुँचा पाएं।

मछलियों का पूरक आहार

खेतों में प्रचूर मात्रा में उर्वरक रहने के कारण मछलियों को प्राकृतिक आहार मिल जाता है तथा जिन खेतों में पानी हमेशा रहता है वहाँ मछलियों को आहार तैयार मिलता है। मछलियों की अच्छी बढ़त के लिए चावल का कोढ़ा एवं सरसों खल्ली की बराबर मात्रा मिलाकर मछलियों के वजन के 2–3 प्रतिशत की दर से छींटकर सुबह–शाम दें।

मछली-सह-धान की खेती में सावधानियाँ

1. रासायनिक कीटनाशक का प्रयोग कम करें।
2. ग्रास कार्प का संचय न करें।
3. खेत में पानी के प्रवेश एवं निकासी की अच्छी व्यवस्था हो तथा उसमें जाली भी लगी होनी चाहिए ताकि मछलियाँ निकल न सकें।

मछली-सह-बत्तख पालन

मछली के साथ बत्तख पालन से मत्स्य पालको को डेढ से दो गुना तक आर्थिक लाभ मिलता है। बत्तख जो तालाब में मल–मूत्र का त्याग करता है वह खाद का काम करता है। जिससे तालाब में अलग से खाद डालने की आवश्यकता नहीं होती है। बत्तख के पानी में तैरने से ऑक्सीजन पानी में धुलता है जिससे पानी में ऑक्सीजन की कमी नहीं होती है। इन सबके बदले बत्तख सिर्फ तालाब से कीड़े–मकोड़ों एवं उनके बच्चे, मेढ़क का बच्चा, घोंघा एवं, जलीय घास आदि को खाता है। बत्तख में तैरते हुए मत्स्य बीजों (4 ग्राम से ज्यादा) को खाने की क्षमता नहीं होती। तालाब के क्षेत्रफल के अनुसार ही बत्तख पालन करना चाहिए (120–160 देशी बत्तख अथवा 80–120 विदेशी बत्तख/एकड़ की दर से) ताकि उचित मात्रा में खाद मिल सके। बत्तख के अंडे से अतिरिक्त आय की प्राप्ति होती है।

बत्तख का आवास निर्माण

- बत्तख का आवास तालाब के किनारे कम खर्च में बाँस और लकड़ी से बनाया जा सकता है।
- बत्तख का आवास साफ–सुथरा एवं सूखा होना चाहिए। साथ ही साथ रोशनी की उचित व्यवस्था होनी चाहिए।

- एक बत्तख को 0.3 से 0.5 वर्ग मीटर जगह की जरूरत पड़ती है, ध्यान रखें कि बत्तख को समुचित जगह उपलब्ध हो कम जगह में बत्तख की वृद्धि अच्छी नहीं होती एवं अंड़ों की संख्या भी घट जाती है।
- बत्तख के आवास से तालाब तक नाली की व्यवस्था हो ताकि आवास का धोवन तालाब तक जा सके।
- इस तरह के आवास के नीचे काफी मात्रा में खाद जमा हो जाता है इसलिए उसे बीच–बीच में जाल चलाकर फैलाते रहना चाहिए।

बत्तख की आहार व्यवस्था

बत्तख सारे दिन तालाब में घूमती रहती है। वहाँ उपलब्ध सितुओ और अन्य कीड़े–मकोड़े खाती है तथा धान के कटने के बाद वहाँ गिरे अनाजों का सेवन करती है।

बत्तख का आहार

- बत्तख को थोड़ी बहुत ऊपरी आहार की भी जरूरत पड़ती है।
- बत्तख सभी प्रकार का कच्चा एवं पका भोजन खा सकता है।
- घर के बचे हुए भोजन को भी बत्तख को खिलाया जा सकता है।
- बाजार से खरीदा हुआ मुर्गी आहार एवं चावल का कोढ़ा 1:2 के अनुपात में अधिकतक 100 ग्राम/बत्तख/दिन के हिसाब से दें।
- सुबह के समय तालाब के किनारे भोजन की व्यवस्था करें एवं रात में बत्तख के आवास में भोजन दें।
- भोजन को हमेशा पानी में मिला कर दें।

तालाब की तैयारी

तालाब की तैयारी मिश्रित मत्स्य पालन की तरह ही होगा। इस व्यवस्था में अतिरिक्त खाद डालने की जरूरत नहीं होती है।

तालाब में जीरा संचयन

- कतला और कॉमन कार्प की बढ़त मछली–सह–बत्तख पालन में अच्छी होती है।
- संचय अनुपात में कतला और कॉमन कार्प का संचय दर बढ़ा दें।
- संभव हो तो 4 ग्राम से बड़ा जीरा संचय करें।
- यदि छोटे जीरों का संचय कर रहे हों तो तालाब में बत्तख के लिए अलग घेरा बना दें। बत्तख पूरे तालाब में न जाने पाए और मछलियों 4 ग्राम होने तक सुरक्षित रहे। (रात में बत्तख के जाने के बाद घेरा हटा दें) या फिर 1000–2000 जीरों की संख्या बढ़ाकर ही संचय करें।

मछली-सह-बत्तख पालन में तालाब की देखभाल (सावधानियाँ)

- जीरा के संचय के एक महीना बाद ही बत्तखों को तालाब में छोड़ें।
- चूँकि बत्तख तथा उसके बच्चों को बिल्ली, कुत्ता, सियार, चील या अन्य जंगली जानवर खा सकते हैं अतः उनकी उचित देखभाल और निगरानी करना आवश्यक है।

- बत्तख का घर साफ–सुथरा एवं सूखा हो तथा रोशनी की व्यवस्था हो अन्यथा बत्तख को बीमारी हो सकती है।
- बत्तख के आवास में ज्यादा भीड़ न हो, प्रत्येक बत्तख को एक निश्चित जगह मिले।
- संचय के लिए अँगुलिकाओं का चयन करें।
- बत्तखो ंको 10 बजे के बाद ही बाहर चरने के लिए भेजना चाहिए क्योंकि 9 बजे तक बत्तख अण्डा देती है, इससे अण्डा खोने का डर नहीं रहता है।

बत्तखों में होने वाली प्रमुख बीमारियाँ

बत्तखों में मुर्गियों की अपेक्षा बहुत कम बीमारी होती है फिर भी कुछ जानलेवा रोग है जिसका टीकाकरण करना उचित होता है बत्तखों में मुख्यतः दो बीमारियाँ होती हैं।

प्लेग

यह बीमारी वयस्क बत्तखों में वायरस के कारण होती है। इसमें बत्तख सुस्त हो जाता है। पंख बिखरा हुआ दिखाई देता है। आँख एवं नाक से स्राव होता है। आँखें फूल जाती है एवं पलक एक दूसरे से चिपक भी सकती है। हरा सफेद पतला दस्ता होता है। प्यास बढ़ जाती है। मृत्युदर 5–100 प्रतिशत तक हो सकती है।

इस बीमारी के लिए कोई कारगर दवा नहीं है। टीकाकरण द्वारा बीमारी से रक्षा हो सकती है। टीकाकरण आठ सप्ताह में किया जाता है।

डक वायरस हेपेटाइटिस

यह रोग 2–3 सप्ताह के चूजों में वायरस द्वारा होने वाला रोग है। इसमें बत्तख आँखें बद कर बैठी रहती है और बाद में गिर जाती है। मृत बत्तख का सिर पीछे की ओर मुड़ा हुआ पाया जाता है। बीमारी के कारण मृत्युदर 50 से 56 प्रतिशत तक हो सकती है। इस बीमारी का इलाज संभव नहीं है लेकिन बचाव के लिए टीकाकरण सबसे अच्छा तरीका है। बीमारी की रोकथाम के लिए एक दिन के चूजे के पंजे में टीका दिया जाता है। प्रजनन के लिए रखी गई मादा बत्तखों को 8–9 माह की आयु पर टीकाकरण से अण्डों के जर्दी द्वारा अवरोधक क्षमता चूजों में चली जाती है।

इसके अलावे बत्तखों में चेचक पाराटायफायड़ कोलरा (हैजा) एसपरजीलोसिस, कॉक्सीडियोसिस बीमारियों के साथ आंतरिक एवं बाह्य परजीवी द्वारा भी परेशानी होती है। बत्तखों के बीमार पड़ते ही उसे स्वस्थ बत्तखों के झुंड से अलग कर देना चाहिए। बत्तखों में टेढ़ा पेर/गर्दन देखा जाता है। ऐसे में विटामिन तथा मिनरल मिक्सचर देने से इससे निजात पाया जा सकता है।

मछली-सह-सूकर पालन

- सूकर के मल–मूत्र के प्रयोग से मछली का उत्पादन ज्यादा होता है। जो लोग सूकर पालन करते हैं उनके लिए मछली सह–सूकर पालन अतिरिक्त आय का अच्छा स्रोत है।
- सूकर ज्यादा खाने की वजह से पचाता कम है और अनपचा भोजन मल–मूत्र के साथ निकलता है जो पोषक तत्व से भरपूर रहता है। इसे मछली बड़े चाव से खाती है तथा पचा हुआ भोजन तालाब के खाद के रूप में काम आता है जिसके कारण खाद एवं पूरक आहार के खर्च से बचा जा सकता है।

- सूकर को खिलाये जाने वाले भोजन के बचे हुए जूठन का उपयोग मछलियों को खिलाने में किया जाता है जिससे भोजन का समुचित उपयोग हो जाता है।
- तालाब के तल के कीचड़ का प्रयोग खेतों में भी किया जा सकता है। यह बहुत ही अच्छा खाद है।

सूकर की आवास व्यवस्था

सूकर की आवास व्यवस्था तालाब के किनारे करें। आवास से तालाब तक नाली की व्यवस्था करें ताकि आवास का धोबन मल–मूत्र आदि तालाब में बह कर जा सके। सूकर के घर की जमीन पक्की तथा खुरदरी हो, घर की दीवार कम से कम 3 फीट तक पक्का हो। घर के सामने खुला बरामदा होना चाहिए जहाँ सूकर घूम–फिर सके। वहीं एक कोने में पीने के पानी की व्यवस्था करें। सूकर के बढ़ते बच्चों को कम से कम 8–12 वर्ग फीट जगह मिलनी चाहिए। वयस्क सूकर को 60–70 वर्ग फीट जगह की आवश्यकता होती है। गर्मी से सूकर को बचाने की जरूरत है, इसलिए सूकर के आवास के पास वृक्षारोपण करें।

सूकर की आहार व्यवस्था

सूकर सब कुछ खाता है फिर भी बढ़त के लिए उचित आहार पर ध्यान देना जरूरी है।

- धान की भूसी, चावल का कोढ़ा आधा किलो छोटे बच्चों के लिए प्रतिदिन प्रति बच्चे के हिसाब से दें, उम्र के अनुसार भोजन की मात्रा बढ़ाते जाएँ। बड़े सूकरों को 15 किलो/दिन/सूकर दें।
- इसके अलावा रसोई घर का बचा हुआ खाना (जूठन) आलू, शकरकन्द, मूली की पत्तियाँ जानवरों का चारा एवं घास की जड़ दें।
- बूचड़खाने से प्राप्त अनुपयोगी माँस, पशुओं से प्राप्त अन्य पदार्थ उबाल कर दें।
- होटल के जूठन को भी सूकरों के भोजन के रूप में बहुत अच्छी तरह उपयोग किया जा सकता है।

तालाब की तैयारी

तालाब की तैयारी मिश्रित मत्स्य पालन की तरह करें तथा अन्य खाद के बदले सूकर के खाद का प्रयोग करे। सूकर के खाद में जैविक तत्व नाइट्रोजन, फॉस्फोरस तथा पोटाश की मात्रा अन्य खादों की अपेक्षा अधिक होती है जिससे मिट्टी की उर्वरता भी बनी रहती है।

तालाब में जीरा संचयन

- मछली–सह–सूकर पालन में कॉमन कार्प (पहाड़ी) मछली की बढ़त अच्छी होती है, इनका संचयन कर साल में दो बार फसल लिया जा सकता है।
- फरवरी–मार्च में सिर्फ पहाड़ी मछली के बीजों का संचय करें और जुलाई–अगस्त में मिश्रित बीजों का संचय करें परन्तु पहाड़ी मछली के बीजों का संचय अनुपात बढ़ा दें। जैसे रोहु : कतला : कॉन कार्प 20:20:60 या 20:30:50 के अनुपात में डालें।

मछली-सह-सूकर पालन में देखभाल

- सूकर के मल–मूत्र जाने के लिए उनके आवास से तालाब तक नाली बना लें।
- यदि पानी का रंग हरा हो गया हो तो खाद/आहार तुरंत बंद कर देना चाहिए।
- तालाब में चूने का प्रयोग समय–समय पर करें।

- सूकर को संक्रमण से बचाने के लिए सूकर के आवास का रख–रखाव ठीक होना चाहिए। स्वच्छता, प्रकाश एवं छाया की उचित व्यवस्था होनी चाहिए।
- सूकर को अच्छी तरह नहलाना चाहिए।
- आवास की सफाई प्रतिदिन की जानी चाहिए सप्ताह में एक दिन कीटाणुनाशक का प्रयोग करें।
- सूकर का टीकाकरण समय से करवाएँ।
- जरूरत पड़ने पर पशुचिकित्सक की राय लें।
- गर्भवती सूकरी को प्रसव से 10–15 दिन पहले अलग रखने की व्यवस्था करें तथा उस घर में चारो ओर गार्ड रेल दीवार से 10 इंच दूर एवं जमीन से 10 इंच ऊपर लोहे या लकड़ी की 3–4 मोटी बल्ली के प्रयोग से बनाएँ ताकि नवजात बच्चे गार्ड रेल में रह सके और प्रसूती सूकरी और दीवार के बीच में आकर नवजात बच्चे दब कर मर न जाएँ।

सूकरों में होने वाली प्रमुख बीमारियाँ

साधारणतः सूकरों में बीमारियाँ कम होती है लेकिन सही देखभाल के अभाव में बीमारी से सूकर पालन में काफी नुकसान हो सकता है। इनमें बीमारी के मुख्य कारण खनिज लवण एवं विटामिन की कमी, जीवाणु जनित, विषाणु –जनित एवं परजीवी रोग मुख्य है।

खनिज लवण एवं विटामिन की कमी से होने वाले रोग

जिंक अल्पता

जिंक की कमी से पाराकैरोटोसिस नामक रोग होता है। इस बीमारी के लक्षण सूकरों की त्वचा में देखने को मिलते हैं। त्वचा सामान्य से अधिक मोटी और खुरदरी हो जाती है। प्रभावित हिस्सा भूरा हो जाता है तथा पानी जैसा तरल पदार्थ का श्राव होने लगता है। त्वचा के प्रभावित हिस्सों से बाल गिरने लगते हैं। कभी–कभी संपूर्ण बाल गिर जाते हैं। सूकर की वृद्धि दर में कमी आ जाती है तथा शारीरिक भार कम होने लगता है। सूकर आहार में जिंक मिला देने से रोग तेजी से ठीक होने लगता है।

लौह (आयरन) अल्पता

लौह तत्व रक्त निर्माण में सहायक होते हैं और अतः इसकी कमी से रक्त की कमी होती है जिसे एनीमिया रोग कहते हैं। यह मुख्यतः सूकरों के नवजात छौनो में पाया जाने वाला रोग है। छौनों की श्लेष्म झिल्ली श्वेत हो जाती है, सूकर सुस्त रहता है, भूख में कमी तथा शारीरिक भार में अत्यंत कमी हो जाती है। एनीमिया को ठीक करने हेतु जन्म लेने के तीसरे तथा चौदहवें दिन आयरन की सूई 1 मि.ली. माँस में देना चाहिए या फिर मादा सूकरी के थन में फेरस सल्फेट (450 ग्रा) कॉपर सल्फेट (75 ग्राम) शर्करा (45 ग्राम) को दो लीटर पानी में घोलकर कई दिनों तक लेप लगायें।

ताँबा (कॉपर) अल्पता

कॉपर की कमी से शरीर का पिछला हिस्सा कमजोर हो जाता है। सूकर को चलने में कठिनाई होती है तथा टांगे आपस में लड़ती हुई लड़खड़ाती है तथा इसकी कमी से एनीमिया भी हो सकता है क्योंकि इसकी आवश्यकता रक्त निर्माण के समय भी होती है। कॉपर की कमी को दूर करने के लिए 125 से 250 मि.ग्रा. कॉपर सल्फेट/किलो आहार में मिलाकर खिलायें।

आयोडीन की कमी

आयोडीन शरीर के उचित विकास के लिए अत्यंत आवश्यक है। आयेडीन की कमी से नवजात शिशु के शरीर में बाल नहीं उत्पन्न होते हैं। कई शिशु सूकर पैदा होते ही मर जाते हैं। बचे हुए बच्चों में घेघा रोग हो जाता है। आयोडीन की कमी से पैरों में कमजोरी होती है तथा चलने में कठिनाई होती है। इसकी कमी को दूर करने के लिए गर्भवती मादा सूकरी को 200 मि.ग्रा. पोटाशियम आयोडाइड/किलो शरीर के भार के हिसाब से आहार में देना चाहिए। शिशु सूकर के आहार में भी पोटाशियम आयोडाइड की अल्पमात्रा (50 मि.ग्रा.) प्रतिदिन के हिसाब से दी जा सकती है या आयोडीन का पेंट मादा के थनों पर दिन में दो बार कर सकते हैं।

कैल्शियम अल्पता

जब सूकर के आहार में कैल्शियम की कमी होने लगती है तो सूकर सुस्त दिखने लगता है उसे भूख कम लगती है हड्डियाँ कमजोर हो जाती है। आहार में कैल्शियम एवं फॉस्फोरस संतुलित मात्रा में मिलाने से लक्षण दूर हो जाते हैं।

विटामिन की अल्पता

इससे उत्पन्न बीमारी को रिकेट्स के नाम से जाना जाता है जो प्राय छोटे छौनों में अधिक देखा जाता है। इससे छौनों के पैर टेढ़े व कमजोर हो जाते हैं। बीमारी से बचाव के लिए बढ़ते हुए सूकरों की प्रचुर मात्रा में विटामिन डी का होना अत्यंत आवश्यक है। इसके लिए सूकरों को प्रतिदिन कम से कम 30 मिनट सुबह की धूप में रखना चाहिए। धूप में रहने से सूकर आवश्यक विटामिन–डी बना लेते हैं। इसके साथ–साथ कैल्शियम तथा फॉस्फोरस का मिश्रण आहार के साथ मिला कर देना चाहिए।

विटामिन 'ए' की अल्पता

विटामिन 'ए' की कमी से बढ़ते छौनों में दिमाग का विकास ठीक ढंग से नहीं होता है और वयस्क में रतौंधी नामक रोग हो जाता है। त्वचा खुरदरी हो जाती है, आँखों की पुतली में श्वेतपन आ जाता है, शारीरिक भार में कमी हो जाती है तथा प्रजनन क्षमता कम हो जाती है। विटामिन – 'ए'/किलो भार के अनुसार सूई के रूप में दे सकते हैं। इस बीमारी से बचाव के लिए 50–60 दिन के अन्तराल में 3000–6000 अन्तर्राष्ट्रीय युनिट विटामिन – 'ए'/किलो शारीरिक भार की दर से भी राशन में मिलाकर देना चाहिए।

जीवाणु जनीत रोग

नवजात छौनों में दस्त यानी डायरिया की समस्या अत्यधिक रहती है। दस्त से छौनों के शरीर में पानी की कमी हो जाती है, बच्चा कमजोर हो जाता है और मर जाता है। छौनों में दस्त का मुख्य कारण जीवाणु होता है जो दूषित आहार या पानी द्वारा आहार नाल में पहुँचकर रोग पैदा करता है।

इस बीमारी का इलाज एन्टीबायोटीक के द्वारा कर सकते हैं साथ ही साथ शरीर में पानी की कमी को पूरा करने के लिए इलेक्ट्रोलाइट का घोल एक–एक घंटे पर पिलाते रहें। एन्टीबायोटीक में इनरोफ्लोक्सासिन काफी असरदार होता है। जिसे डाक्टर की सलाह से दे सकते हैं।

गलाघोंटू

यह रोग पारचुरेला मल्टोसीडा नामक जीवाणु से फैलता है। यह बच्चों में ज्यादा होता है। यह रोग दूषित पानी पीने और दूषित चारागाह में चरने से होता है। इस रोग में तीव्र बुखार के साथ–साथ नाक और मुँह

से पानी गिरने लगता है। गले में सूजन आ जाती है और जानवर खाना–पीना त्याग देता है। सूजन आने पर सूकर घड़घड़ाहट की आवाज करने लगते हैं।

इलाज हेतु ऑक्सीटेट्रासाईक्लिन का इंजेक्शन 6–8 घंटे पर 5 से 7 दिन तक देना चाहिए। रोगग्रस्त जानवर को अन्य जानवरों से अलग कर दें। सूकर के आवास को नियमित फिनाइल से साफ कर चूने आदि का छिड़काव करें।

विषाणु जनित रोग

स्वाइन फीवर/सूकर ज्वर

सूकर ज्वर विषाणु से होने वाला अत्यंत संक्रामक रोग है जो केवल सूकरों में ही होता है। इस बीमारी के होने से सूकर पालकों को काफी क्षति होती है। यह बीमारी के होने से सूकर पालकों को काफी क्षति होती है। यह बीमार सूकरों के मल–मूत्र दूषित खाना, पानी तथा बीमार पशु को स्वस्थ सूकर के साथ रखने आदि से फैलता है।

बिना किसी लक्षण के मृत्यु तेज बुखार (106–107^{0}F) भूख की कमी, कमजोरी, चलने में लड़खड़ाहट कब्ज के बाद दस्त तथा उल्टी का होना, शरीर की त्वचा पर लाल धब्बा दिखना, आँखें लाल होना आदि इस बीमारी के प्रमुख लक्षण है। इस बीमारी का इलाज संभव नहीं है लेकिन बचाव के लिए सूकरों में टीकाकरण सबसे अच्छा तरीका है। यह टीका ''स्वाईन फीवर'' टीका के नाम से बाजार में उपलब्ध है। इसका पहला टीका बच्चों में 8 सप्ताह की उम्र के बाद लगा सकते हैं जो एक वर्ष तक बीमारी से बचाव करता है। एक वर्ष के बाद पुनः टीकाकरण करना पड़ता है। इसकी 1 मि. ली. मात्रा चमड़े में देते हैं।

खुरपका-मुँहपका रोग (एफ.एम.डी. रोग)

यह पशुओं का भयानक संक्रामक रोग है। यह मुख्यतः गो–पशु, भेड़, बकरी तथा सूकरों में होता है। यह विषाणु, मुँह, जीभ तथा खुरों के आस–पास की त्वचा पर आक्रमण करता है। संक्रमण के स्थान पर छाले बन जाते हैं। रोगी पशु को बुखार आने लगता है, खाना नहीं खाता है तथा प्यास बहुत लगती है। मुँह और पैरों पर छाले दिखाई देते हैं। पैरों में लंगड़ापन शुरू हो जाता है, पशु अक्सर अपने पैरों के बीच के भाग को चाटता है एवं शिशु के मुँह से लार टपकने लगता है।

इस रोग के नियंत्रण हेतु स्वच्छता पर पूरा ध्यान देना चाहिए। रोगी पशु के मुँह को 2 प्रतिशत फिटकरी के घोल या 5 प्रतिशत पोटाशियम परमैगनेट के घोल से धोना चाहिए। इसके अलावा ग्लिसरीन एवं शहद को 1:7 के अनुपात में मिलाकर जीभ के छालों पर लगाने से पशुओं को दर्द से राहत मिलती है तथा घाव भरने में सहायता मिलती है। रोगग्रस्त सूकरों को नर्म एवं आसानी से पचने वाला उपयुक्त चारा खाने के लिए देना चाहिए। इसके अलावे चावल का मांड एवं गेहूँ का दलिया, गुड़ के साथ काफी लाभप्रद होता है।

इस बीमारी में एन्टीबायोटीक व सल्फाग्रुप की दवाइयाँ काफी आराम देती है। इस रोग से बचाव के लिए आवास के बाहर चूना छिड़क दें या जूट के बोरे को 2–4 प्रतिशत फॉर्मेलीन या 4 प्रतिशत सोडियम हाइड्रॉक्साइड के घोल में भिंगोकर पशुओं के बाड़े के दरवाजे के सामने बिछा दें तथा प्रवेश द्वार में यदि 1–2 इंच गहराई तक उपरोक्त घोल भर दें तो बाहर से आने वाले लोगों से संक्रमण आने की संभावना कम रहेगी।

इस रोग के बचाव के लिए सूकरों को समय–समय पर खुरपका– मुँहपका के टीके लगवाना चाहिए। कलोभैक्स नामक टीका बाजार में उपलब्ध है। इसका पहला टीका बच्चे में 8 सप्ताह की उम्र के बाद लगा सकते हैं। दूसरा टीका 5 माह के बाद फिर वर्ष में एक बार टीकाकरण करते रहें।

परजीवी रोग

गोल कृमि

यह सूकरों में मुख्य रूप से पाया जाता है और आर्थिक हानि का बड़ा कारण माना जाता है। गोलकृमि सूकरों की छोटी आँत में पाया जाता है। यह लगभग 15–40 से.मी. लम्बा होता है। सूकरों में इसका संक्रमण संक्रमित पशुओं के मल के साथ निकले अंड़ों को ग्रहण करने से होता है। संक्रमित सूकरों में बेचैनी, दस्त या कब्ज, श्रावयुक्त खांखी, वृद्धि एवं प्रजनन क्षमता में कमी आदि लक्षण पाये जाते हैं। अधिक संख्या में पाये जाने पर यह आंत को पूर्णरूप से अवरूद्ध भी कर सकता है जिससे सूकर के भार में कमी तथा मृत्यु भी हो जा सकती है।

लक्षण दिखने पर मल परीक्षण कराकर उचित दवा से उपचार कर सकते हैं। इसके उपचार के लिए फेन्बेन्डाजोल, एलबेंडाजॉल आदि दवा का उपयोग डॉक्टर की सलाह से करना चाहिए।

पर्ण कृमि

सूकरों में मुख्यतः फैस्योलेरिसस नामक पर्णकृमि पाया जाता है। यह सूकर की आंत में पाया जाता है इससे संक्रमित सूकरों में दस्त, पेट दर्द, बेचैनी जैसे लक्षण पाये जाते हैं। इसके निदान हेतु पशुओं का नियमित रूप से मल परीक्षण करवाना चाहिए तथा संक्रमित सूकरों का उपचार उचित औषधियों जैसे–एलबेंडाजॉन, निकलोसामाईड आदि से करना चाहिए।

फीताकृमि

टीनिया सोलियम नामक फीता कृमि सूकरों के शरीर में पाया जाता है यह अवस्था टीनिया सोलियम के अंडे खाने से उत्पन्न होती है। इस समय सूकर में कोई लक्षण दिखाई नहीं देते हैं। परन्तु टीनिया सोलियम से ग्रसित सूकर का माँस बिना पूर्ण रूप से पकाये हुए खाने से मनुष्यों में टीनिया सोलियम नामक फीताकृमि उत्पन्न हो जाता है। इसके अंडे मनुष्य से संक्रमित हो जाता है। अतः दूसरों को इस अवस्था से बचाने के लिए मानव मल नहीं ग्रहण करने देना चाहिए।

कॉक्सिडियोसिस

यह सभी उम्र के सूकरों में पाया जाता है परन्तु नवजात छौनों में इस रोग के लक्षण दिखाई पड़ते हैं और उनकी मृत्यु का कारण भी बन जाते हैं। दूषित जल एवं आहार ग्रहण करने से यह रोग फैलता है। नवजात सूकरों में अधिकतर यह रोग 5–15 दिन के बीच में होता है जिसके कारण पीला दस्त और पेचिश हो जाता है। जानवर सुस्त हो जाता है, दूध पीना बन्द कर देता है। इससे नवजात सूकरों का पूरा समूह प्रभावित हो सकता है। दस्त कई दिनों तक रहने के कारण शरीर में पानी की कमी हो जाती है और जानवर मर जाता है।

इसके उपचार के लिए सल्फाडाईमिडिन, नाईट्रोफ्यूरॉन, एम्प्रोलियम आदि दवाओं का प्रयोग चिकित्सक की सलाह से करनी चाहिए।

बाह्य परजीवी

सूकरों में विभिन्न प्रकार के बाह्य परजीवी पाये जाते हैं। ये सूकर की त्वचा पर पाये जाते हैं और खून चूसकर सूकर के स्वास्थ्य को हानि पहुँचाते हैं तथा इनकी उत्पादन क्षमता को कम करते हैं। ये विभिन्न रोगों के लिए रोगवाहक का कार्य भी करते हैं।

मीठा जल झींगा पालन

झींगा क्या है?

झींगा आर्थोपोडा जाति का जलीय जीव है जो एक्वाकल्चर क्षेत्र में अपना खास स्थान बनाये हुए हैं। आर्थिक दुष्टिकोण से यदि देखा जाए तो झींगा पालन मुनाफे का व्यवसाय है।

झींगा पालन क्यों करें?

मीठा जल झींगा प्रजातियों में माईक्रोब्रैकियम रोजनबर्गाई जिसे स्काम्पी भी कहा जाता है, 7–8 महीने में करीब 100 से 200 ग्राम की हो जाती है। पालन के दौरान इसका औसत उत्पादन 600–2000 कि.ग्रा./हे./वर्ष पाया गया है। किसानों को मछलियों की तुलना में झींगा उत्पादन से इकाई क्षेत्र और समय में 8–10 गुणा ज्यादा मुनाफा मिलता है।

झींगा का जीवन चक्र

मीठा जल झींगा 4 महीनों में परिपक्व हो जाती है। वैसे तो रोजनबर्गाई सालों भर अंडा देती है परन्तु भारत में अंडा देने का समय मुख्यतः जुलाई से दिसम्बर महीना है। परिपक्व मादा अपने पेट के निचले हिस्से के अग्र पैरों के बीच अनिषेचित अंडों को गुच्छों को संजोये रखती है। अंड़ों का बाह्य निषेचन के पश्चात अंडा से बच्चा 18–20 दिनों के अंतराल में आता है। शुरूआती दौर में अंड़ों का रंग नारंगी होता है फिर धीरे–धीरे यह भूरा, फिर गहरे भूरे रंग का हो जाता है। गहरे भूरे रंग के होने के 3–4 दिनों में बच्चा निकल आता है। अंडा धारण करने वाली मादा झींगा को 'बेरिड मादा' कहा जाता है। बेरिड मादा नदियों से नमकीन जल की ओर बढ़ती है क्योंकि अंडों से निकले लार्वो को नमकीन पानी की जरूरत होती है यहाँ लार्वा अपने जीवन के विभिन्न चरणों को पार कर 20 से 35 दिनों में पोस्ट लार्वा चरण में पहुँचती है। यह पोस्ट लार्वा पुनः नदियों में आकर अपने जीवन का शेष भाग गुजारती हैं। कृत्रिम तरीके से हैचरी में मीठा जल झींगा के लार्वा का उत्पादन किया जाता है लेकिन अभी यह समुद्र तटीय राज्यों में ही अधिक सफल है। झींगा पालन मीठे जल में भी बहुत सफलतापूर्वक किया जा सकता है लेकिन इसके बीज के लिए हमेशा समुद्रतटीय राज्यों पर निर्भर रहना पड़ेगा इसलिए इसके जीरा का मूल्य अधिक हो जाता है।

स्थान का चयन

किसी भी तालाब में झींगा पालन आरंभ करने के लिए उचित योजना बनाना आवश्यक है। इसके लिए तालाब की गहराई 15–20 मी. तक होनी चाहिए। नजदीक में पानी की सुविधा झींगा के बीज की उपलब्धता, खाना, बाजार तथा पूँजी की उपलब्धता होनी चाहिए।

पानी की गुणवत्ता

मछली पालन की तरह झींगा पालन में भी पानी का स्थायी श्रोत होना आवश्यक है। नदी का पानी, नहर, कुँआ या बोरिंग झींगा पालन हेतु इस्तेमाल किया जा सकता है। नीचे दिया गया पानी का मापदण्ड झींगा पालन के लिए उपयुक्त माना गया है।

पानी का तापमान	25–32^0 से.
घुलित ऑक्सीजन	5–7 पी.पी.एम.
पारदर्शिता	40 से.मी. (करीब)
पानी का रंग	भूरा से हल्का हरा
पी.एच.	7–8.5
क्षारीयता	50–100 पी.पी.एम.
खारापन	0
अमोनियम	15 पी.पी.एम.
हाइड्रोजन सल्फाइड	2 पी.पी.एम.
लोहा	2 पी.पी.एम.
नाइट्राइट	1 पी.पी.एम.
नाइट्रेट	20 पी.पी.एम.
कीटनाशक	0

बीज की उपलब्धता

झींगा के बीज हमें समुद्रतटीय राज्यों से उपलब्ध हो सकते हैं। जैसा पहले कहा गया कि झींगा अपने जीवन चक्र का कुछ भाग (अण्डा देने से पोस्ट लार्वा–45 दिनों तक) नमकीन पानी में व्यतीत करता है। लार्वा के बाद का जीवन मीठे जल में गुजरता है। देश के तटीय भागों में हैचरी पद्धति से झींगा बीज उत्पादन का कार्य किया जा रहा है। पोस्ट लार्वा चरण पार करने के बाद कृषक इन क्षेत्रों से झींगा का बीज प्राप्त कर सकते हैं। राज्य मत्स्य विभाग भी इन क्षेत्रों से झींगा बीज लाकर किसान को उपलब्ध करा रहा है।

झींगा का आहार

बाजार में झींगा का बना–बनाया खाद्य उपलब्ध है। किसान अपने पास उपलब्ध स्थानीय सामग्री से भी खाद्य तैयार कर सकते हैं। ये हैं–घोंघा, सितुआ का माँस या बेकार मछलियों का चूरन, सरसों की खल्ली, चावल का कोढ़ा, चावल का आटा तथा मिनरल मिक्सचर। इनको 20:25:44:10:1 के अनुपात में मिलाकर झींगा का पूरक आहार बनाया जा सकता है।

तालाब किस तरह का हो?

झींगा पालन के लिए तालाब का क्षेत्रफल 0.5–10 हेक्टेयर तक हो सकता है। आयताकार होने से मछली निकालने में सुविधा होती है। तालाब का बाँध 1–1.5 मी. ऊँचाई तक होना चाहिए जिससे तालाब में जल स्तर के बढ़ने की स्थिति में आने पर भी 50 से.मी. तक ऊपर खाली रहे। ऊपर से बाँध की चौड़ाई 1–1.5 मी. तथा ढलान 1:1.5 (चिकनी मिट्टी के लिए) तथा 1.1 (बलुई लोम) के लिए रहना चाहिए। तालाब में पानी निकासी तथा प्रवेश द्वार की व्यवस्था होनी चाहिए। तालाब के चारों ओर 4 मि.मी. प्लास्टिक के जाल का घेरा होना आवश्यक है जिससे झींगा को बाँध से भागने का मौका न मिले।

तालाब की तैयारी

तालाब की तैयारी निम्नलिखित चरणों में की जा सकती है–

तालाब को सूखाकर बेकार/खाऊ मछलियों का उन्मूलन (यदि सूखाना संभव न हो तो चूना/महुआ की खल्ली डाल कर तालाब की सही ढंग से सफाई करें।)

चूना का प्रयोग

चूना के प्रयोग से तालाब की उत्पादकता में वृद्धि होती है। चूना का इस्तेमाल पानी के लिए पी.एच. पर निर्भर करता है। चूना का प्रयोग 200 कि.ग्रा. से 1000 कि.ग्रा./हे. की दर से करना चाहिए। चूना के अलावा सितुआ/घोंघा के कवच का चुर्ण भी डाला जा सकता है।

खाद का प्रयोग

तालाब में कार्बनिक और अकार्बनिक खाद का प्रयोग कर सकते हैं। झींगा चूँकि वनस्पति प्लावक नहीं खाता है इसलिए तालाब में ज्यादा खाद की आवश्यकता नहीं होती है। झींगा जलीय कीड़े–मकोड़े, जन्तु प्लावक सैवाल, आदि खाता है इसलिए खाद का कुछ ही मात्रा में प्रयोग करना चाहिए। जैसे–

मवेशियों का गोबर–	1000 कि.ग्रा./हे.
मुर्गी का खाद –	500 कि.ग्रा./हे.
सुपर फॉस्फेट –	100 कि.ग्रा./हे.

झींगा के संरक्षण की आवश्यकता

झींगा का अपने शरीर के पुराने केंचुल को त्यागने एवं नये केंचुल के आने की प्रक्रिया को मॉल्टींग कहते हैं। मॉल्टींग के दौरान झींगा काफी कमजोर एवं आलसी हो जाता है तथा अन्य झींगों एवं पानी में उपस्थित अन्य जलीय माँसाहारी जीवों द्वारा खाये जाने का डर रहता है। मॉल्टींग के दौरान झींगा छिछले पानी, किसी कोने में या गड्ढों में छिप जाता है इसलिए तालाब में झींगों के छिपने की जगह बनानी चाहिए। पत्थरों को एक जगह इकट्ठा कर रखना चाहिए, तालाब में जगह–जगह पर टाइल्स, ईंट, ह्यूम पाइप खपड़ा आदि रखें। इसके अलावे जलकुम्भी, पीस्टिया तथा डकवीड आदि तैरने वाले जलीय पौधे भी झींगों को छुपने की जगह प्रदान करते हैं।

पोस्ट लार्वा का परिवहन

झींगों के माँसाहारी प्रवृति के कारण उनके परिवहन में समस्या आती है। परिवहन के दौरान मरे हुए झींगों को जीवित झींगे अपना भोजन बना लेते हैं।

- 18–20 ली. के पॉलीथिन बैग का इस्तेमाल किया जाता है।
- बैग में 5–6 ली. पानी लार्वा टैंक से भर दिया जाता है।
- पानी में बर्फ डालकर उसका तापमान 20^0 से. कर दिया जाता है।
- बैग में प्लास्टिक के कुछ टुकड़ों को डाल देने से झींगों को पकड़ने की सतह मिल जाती है जिससे ये एक–दूसरे पर आक्रमण नहीं करते हैं।
- इस बैग को मोटे कागज के डिब्बे में डालकर परिवहन किया जाता है। लम्बी यात्रा के दौरान बैग में कुछ भोजन भी डाल दिया जाता है।
- रात्रि का समय परिवहन के लिए सर्वोत्तम है।

तालाब का संचयन

स्वस्थ झींगा (7–10 दिन का पोस्ट लार्वा) हल्के भूरे रंग का होता है जो काफी चुस्त होता है। इन्हें कपड़े में इकट्ठा कर तालाब के पानी में कुछ देर (10–15 मिनट) हल्के से डुबा कर रखा जाता है। संचयन के लिए सूर्योदय तथा सूर्यास्त का समय बेहतर माना गया है। 15,000–20,000 पोस्ट लार्वा को एक हेक्टेयर के तालाब में संचय किया जा सकता है।

बीमारियों की रोकथाम

झींगों में मुख्यतः पानी की गुणवत्ता में कमी तथा आहार में असंतुलन की वजह से बीमारियाँ होती है इसलिए यदि इनका ध्यान रखा जाय तो बीमारी की संभावना कम हो जायेगी।

झींगा का निष्कासन एवं उसका व्यवसाय

जब झींगा 100 ग्रा. का हो जाता है तब यह बाजार में बेचने के योग्य हो जाता है। निष्कासन के दौरान छोटे आकार के झींगों को पुनः तालाब में डाल देना चाहिए। संचय के 6 महीनों के बाद निष्कासन प्रक्रिया शुरू कर देनी चाहिए। निष्कासन फेंका जाल या खींचा जाल से करना चाहिए। निष्कासन के पहले तालाब में रखे गए सारे सुरक्षित या छिपने की जगहों को हटा देना चाहिए। निष्कासन प्रातः या सूर्यास्त के समय करना चाहिए।

निष्कासन झींगों को सर्वप्रथम साफ पानी से धो दें और इसे बर्फ में 1:1 के अनुपात में रखकर बाजार में ले जा सकते हैं।

झींगा-सह-मछली पालन

मछली पालन के साथ–साथ झींगा पालन भी किया जा सकता है। ऐसा देखा गया है कि मछली के साथ थोड़ी संख्या में यदि झींगा पाला जाय तो किसान को अच्छी आमदनी प्राप्त होगी। इसमें थोड़ी सावधानी की आवश्यकता होती है। झींगा तालाब के निचले तल में रहने वाला जीव है इसलिए मछली–सह–झींगा पालन में निचले तल में रहने वाले मछलियों जैसे–कॉमन कार्प और गगल की संख्या कम कर देनी चाहिए।

झींगा पालन में सावधानियाँ

- हमेशा एक उम्र का ही झींगा तालाब में संचय करना चाहिए क्योंकि झींगा में एक दूसरे को खाने की प्रवृत्ति होती है। बड़ा झींगा छोटे को मार कर खा जाता है।
- झींगा एक सुस्त जीव है जो तालाब के निचले तल में रहता है और माँस खाना पसंद करता है इसलिए इसे उसी प्रकार का भोजन देना चाहिए।
- झींगा पालन में तालाब के निचले तल में ऑक्सीजन की अधिकता रहनी चाहिए इसलिए कम से कम जैविक खाद का उपयोग करना चाहिए और साथ–साथ निचले तल में ऑक्सीजन बढ़ाने के लिए वायु प्रवाहक (एयरेटर) का उपयोग करना चाहिए।
- झींगा रेंगने वाला जीव है जो दिन में कभी–कभी रेंगते हुए तालाब के बाँध पर भी आ जाता है और पक्षियों द्वारा खा लिया जाता है इसलिए पक्षियों को डराने के लिये तालाब के ऊपर चमकदार फीता लगाया जाता है।
- मछली की तरह झींगा को तालाब से बाहर निकालकर देखना थोड़ा कठिन है इसलिए यदि देखना चाहें तो रात में तालाब के किनारे तेज रोशनी जलायें जिससे झींगा आकर्षित होकर बाहर आयेगा।

वायुश्वासी मछली-मांगूर

मांगूर मछली की विशेषता

मांगूर एक कैटफिश किस्म की वायुश्वासी मछली है यानि अन्य मछलियों की तरह इसमें गलफड़ा के अलावा श्वासी अंग होता है। जिसकी वजह से ये मछली पानी में घुलित ऑक्सीजन की कमी में भी जिन्दा रह सकती है। अतः किसान गंदे एवं कीचड़युक्त पानी में भी मांगूर की खेती कर सकता है। अतिरिक्त श्वास अंग के कारण ये मछलियाँ बाजार में जिंदा बेची जाती है जिससे इन्हें अधिक दामों में बाजार में बेचा जाता है। इस मछली में औषधीय गुण भी है तथा इसका पाचन आसानी से होने के कारण अस्वस्थ व्यक्ति को भी मांगूर खाने की सलाह दी जाती है।

मांगूर के बीज की उपलब्धता

देशी मांगूर धान के खेतों में, छिछले पानी में तथा सदाबहार तालाब में पायी जाती है। प्राकृतिक रूप से यह मछली स्वतः प्रजनन कर इन स्थानों में अण्डे देती है। मांगूर के बीज की उपलब्धता थोड़ी कठिन है क्योंकि अण्डा देने की संख्या अन्य मछलियों की अपेक्षा कम होती है तथा बच्चों की मृत्यु दर भी अधिक होती है। साथ ही भोजन की कमी होने पर यह अपने बच्चों को भी खा जाती है। धान के खेतों में यह बहुतायत में पाया जाता है परन्तु कीटनाशक दवाईयों के प्रयोग से इनकी संख्या घटती जा रही है। बीज की उपलब्धता एक समस्या है लेकिन अब इन्हें हैचरी में प्रजनन कराकर इनका बीज उपलब्ध कराया जा रहा है।

तालाब में मांगूर पालन

तालाब की व्यवस्था

मांगूर की खेती छोटे और छिछले तालाब में हो सकती है। वैसे तालाब जिसमें काफी कीचड़ हो, जंगली पौधे हों तथा पानी कम हो अर्थात जिस तालाब में सामान्य मछली (रोहू, कतला, मृगल) को पालना कठिन है वहाँ मांगूर आसानी से पाला जा सकता है। चूँकि इस मछली को साँस लेने के लिए हमेशा पानी की सतह पर आना पड़ता है इसलिए तालाब की गहराई अधिक नहीं होनी चाहिए अन्यथा सतह पर आने–जाने में उनकी काफी ऊर्जा खत्म हो जायेगी जिससे बढ़त अच्छी नहीं होगी। बरसात में मांगूर के भागने की आदत की वजह से तालाब की मेढ़ के चारों ओर बाँस का घेरा बना दिया जाता है। एक हेक्टेयर के तालाब में 50.000–70.000 अंगुलिकायें/हे. की दर से संचयन किया जा सकता है।

तालाब में खाद का प्रयोग

खाद का प्रयोग उसी प्रकार करना चाहिए जिस प्रकार मिश्रित मछली पालन के दौरान किया जाता है।

मांगूर पालन में आहार की व्यवस्था

मांगूर एक माँसाहारी जीव है। यह तालाब में उपस्थित कीड़े–मकोड़े तथा कीचड़ में पाये जाने वाले भोजन को खाता है। पूरक आहार के रूप में इसे सरसों की खल्ली, चावल का कोढ़ा, मछली का चूरन, बूचड़खाने के अवशेष, घोंघा/सितुआ के माँस का गोला बनाकर शारीरिक भार के हिसाब से 3–5 प्रतिशत की दर से तालाब में अलग–अलग जगहों पर किसी टोकरी या बर्तन में लटका कर दिया जाता है। पूरक आहार में 30–35 प्रतिशत प्रोटीन की मात्रा जरूरी है।

मांगूर का निष्कासन एवं उसका बाजार

7–8 महीनों में मांगूर बाजार में बेचने लायक हो जाती है। इस समय तक इसका वजन 100–120 ग्रा. तक हो जाता है। तालाब की मिट्टी में रहने के कारण इसका निष्कासन कठिन होता है। तालाब का पानी सूखा देने से हाथ द्वारा इसे आसानी से निकाला जा सकता है।

बाजार में जीवित बिक्री किये जाने के कारण दूर–दराज में भी भेजा जाना संभव है। ताजा होने के कारण इसे बाजार में अधिक मुनाफा मिल जाता है। इसकी कीमत रेहू, कतला, मृगला की अपेक्षा 2 से 2.5 गुणा ज्यादा मिलती है।

मत्स्य बीज की तैयारी

मत्स्य अंगुलिकाओं की संचय के वक्त यह हमेशा ध्यान में रखना चाहिए कि बड़े अंगुलिकाओं में मृत्यु दर काफी कम होती है। मृत्यु दर कम होने की वजह से हमेशा बड़ी अंगुलिकाऐं ही चुनने चाहिए। अगर हम चाहें तो मत्स्य बीज खुद ही तैयार कर सकते हैं तथा गाँव के अन्य किसानों को भी बीज उपलब्ध करा सकते हैं। इसके लिए सबसे पहला कार्य यह होता है कि प्रजनन प्रक्षेत्र से स्पॉन (तीन दिन का मत्स्य बच्चा) लेकर 15–20 दिनों तक का पालना होता है। जिस तालाब में स्पॉन से मत्स्य जीरा का उत्पादन किया जाता है उसे नर्सरी तालाब कहते हैं।

नर्सरी तालाब के लिए हम वैसे तालाब को ले सकते हैं जहाँ कि मात्र 3–4 महीने तक ही पानी रहता है क्योंकि ऐसे तालाब में खाऊ एवं अनुपयोगी मछली नहीं होती हैं। तालाब की तैयारी के लिए चूना का प्रयोग करना चाहिए। चूना पानी की क्षारीयता को बढ़ाता है और मिट्टी में कैल्सियम की उपलब्धता बढ़ाता है। चूना पानी को साफ करता है ऑक्सीजन की कमी के कारण दूसरे गैसों को नियंत्रित करता है। गोबर को सड़ाने में मदद करता है। मछलियों को बीमारी से बचाता है। पानी की उर्वरा शक्ति को बढ़ाता है और प्राकृतिक भोजन के निर्माण में मदद करता है। इसलिए चूना का प्रयोग जीरा संचय से पहले करना चाहिए। आधा एकड़ के तालाब के लिए 20 किलो चूना तथा जीरा संचय के बाद प्रति माह 5 किलो डालना चाहिए। खाद का प्रयोग तालाब की मिट्टी को उपजाऊ बनाने के लिए जरूरी होता है। खाद में मछली के लिए प्राकृति भोजन उपलब्ध होती है। खाद से तालाब के पानी का रिसाव रूकता है। तालाब में दो प्रकार के खादों का उपयोग किया जाता है। कार्बनिक एवं अकार्बनिक खाद को तालाब में डाला जाता है।

कार्बनिक खाद के तौर पर मवेशियों का खाद, सड़े–गले पत्ते–पत्तियों का कम्पोस्ट तथा अकार्बनिक खाद– इसमें नाइट्रोजन, फास्फोरस, पोटाश युक्त खाद डाले जाते हैं। गोवर जीरा संचय से 15 दिन पहले तालाब में डालें। गोवर की मात्रा प्रति आधे एकड़ के लिए 500 किलो ग्राम प्रति माह 200 किलो करके डालना चाहिए।

डी.ए.पी. खाद मिट्टी की जाँच के बाद ही करना चाहिए। पहले पहल डी.ए.पी. 4 किलो प्रति 1/2 एकड़ तथा 6 किलो प्रति माह डालना चाहिए अगर फास्फेट की कमी हो तब।

पानी में खाद का प्रयोग तब करना चाहिए जब तालाब का रंग मटमैला हो जाए।

अगर नर्सरी तालाब में सालों भर पानी रहती है तब खर–पतवार के साथ–साथ खाऊ एवं बेकार की मछलियों को भी निकाल लेना चाहिए। खाद एवं चूने का प्रयोग उपर बताऐ तरीके से ही करना चाहिए। तालाब में उपस्थित जलीए कीड़ों–मकोड़ों को निकालने के लिए 54 लीटर/हे. तथा एक कि. साबुन पाउडर मिलाकर छीड़काऊ करना चाहिए।

मत्स्य स्पॉन की संचय मात्रा एवं उसमें बरतने वाली सावधानियाँ– मत्स्य स्थान का संचय दस लाख/एकड़ की दर से देना चाहिए। स्पॉन का संचय सुबह के समय करना चाहिए जबकि तालाब का तापमान कम हो। जलीय कीड़ों के उनमूलन के लिए डाले गए डीजल एवं साबुन के द्वारा पानी घुले जहर की जांच कर लेनी चाहिए।

मत्स्य स्पॉन को दिए जाने वाले पूरक आहार को महीन पीस कर महीन कपड़े से छान कर देना चाहिए। पूरक आहार के तौर पर चावल का कोढ़ा एवं सरसों की खल्ली 1:1 के अनुपात में देना चाहिए। इसके अलावे खनिज लवणों का मिश्रण 1–2ः तक देना चाहिए।

साधारणतः स्पॉन से 1 इंच का जीरा 15 दिनों में तैयार हो जाता है।

1 से 5 दिन भोजन की मात्रा 600 ग्राम/दिन/लाख स्पॉन

6 से 10 दिन भोजन की मात्रा 1200 ग्राम/दिन/लाख स्पॉन

11 से 14 दिन भोजन की मात्रा 1800 ग्राम/दिन/लाख स्पॉन

जीरा निकालने से 1 दिन पहले खाना बंद कर देना चाहिए।

स्पॉन संचय के लिए 16वें दिन जीरा निकालना चाहिए। जीरा को हमेशा सुबह के समय निकालना चाहिए। मत्स्य बीजों को पॉलीथीन बैग में 2/3 भाग पानी एवं 1 भाग ऑक्सीजन डालना चाहिए।

मछली पालन के दौरान असाधारण लक्षण, विषम परिस्थितियाँ एवं मुख्य बीमारियाँ

पानी ही मछली के जीवन का आधार है। सामान्यतः पानी को देखने से ऐसा नहीं लगता है कि पानी खराब हो गया है लेकिन पानी के वातावरण में थोड़ा भी बदलाव मछलियों के लिए परेशानी का कारण बनता है और मछलियों के लिए परेशानी उत्पन्न करता है। मछलियों में बीमारी होने के कई कारण हैं जिसमें भोजन में आवश्यक तत्वों की कमी, वातावरण में परिवर्तन या बीमारी उत्पन्न करने वाले जीव मुख्य हैं। मछलियों में अच्छी जीवनदर एवं बढ़त के लिए आवश्यक है कि उसके भोजन में उचित मात्रा में आवश्यक अवयव रहे। मछली के जीवन चक्र के विभिन्न अवस्थाओं में अलग–अलग मात्राओं में विभिन्न अवयवों की आवश्यकता होती है जो निम्न तालिका में वर्णित है।

तालिकाः पालने योग्य मछलियों के भोजन में विभिन्न अवयवों की आवश्यक मात्रा

अवयव	जीरा (1'' आकार का मत्स्य बीज)/अंगुलिकायें	बढ़ते मछलियों के लिए	प्रजनक के लिए
प्रोटीन	40–45	35–40	30
कार्बोहाइड्रेट	22–26	15–20	10–15
वसा		6–8	5–5
विटामिन	1	1	1
खनिज लवण	1	1	1

इन खनिज लवणों एवं विटामिन में सभी लवण एवं विटामिन आते हैं जिनकी कमी के कारण मछलियों में तरह–तरह की बीमारियाँ होती हैं तथा दूसरे प्रकार की बीमारी बहुत जल्द हावी हो जाती है जिससे मछलियाँ रोग ग्रसित हो जाती है। विटामिन एवं लवण के मिश्रण बाजार में अलग–अलग नामों से मिलते हैं। मत्स्य पालकों को मछलियों में दिये जाने वाले भोजन में इन खनिज लवणों एवं विटामिन मिश्रण को अवश्य ही शामिल करना चाहिए।

मछलियों पर पर्यावरण का असर

वैज्ञानिक पद्धति से मछली पालन करने के बावजूद भी कभी–कभी विषम परिस्थितियाँ आती हैं और मछलियों में असाधारण लक्षण दिखाई देते हैं तथा उनकी मौत भी हो जाती है। ऐसी स्थिति उत्पन्न कैसे हुई तथा इसका स्थायी उपचार कैसे करें ताकि यह परिस्थिति पुनः उत्पन्न न हो इसके लिए यदि मत्स्य पालक सुबह सूर्य निकलने से पूर्व तालाब के किनारे घूमें और मछलियों को देखें तो उनकी गतिविधियों से ज्ञात होगा कि मछली स्वस्थ है या अस्वस्थ तथा उनको उचित आहार मिल रहा है या नहीं। उदाहरण के लिए:

1. मछलियाँ साधारणतः अकेले नहीं घूमती हैं यदि कोई मछली अकेले घूमें तो समझना चाहिए कि वह मछली बीमार है। यदि ऐसी कोई मछली दिखे तो तुरंत उसे पकड़ें और उसके शरीर का ध्यान पूर्वक निरीक्षण करें। साथ ही उसे किसी विशेषज्ञ को दिखायें।
2. यदि मछलियाँ समूह में पानी के ऊपरी सतह पर घूमे तो समझें कि वह भोजन की तलाश में है और उसे दिया जाने वाला भोजन आवश्यकता से कम है अतः पूरक आहार की मात्रा बढ़ा दें। यह स्थिति खासकर उस समय होती है जब तालाब में प्राकृतिक भोजन की मात्रा भी कम होती है और पानी एकदम साफ होता है। इस स्थिति में जैसे ही पानी में थोड़ी भी हलचल की जायेगी तो मछलियाँ जल्द ही भाग जाती हैं।

इसी तरह ऐसे अनेक छोटे–छोटे लक्षण होते हैं जो मछलियों में होने वाली परेशानी तथा असाधारण लक्षण को दर्शाते हैं। उनका यदि सही उपचार न किया जाय तो पाली गयीं मछलियों को बीमारी तथा मौत भी हो सकती है। एक बार यदि मछलियों में बीमारी हो गयी तो कुछ मछलियाँ अवश्य ही मर जायेंगी।

मछलियों में होने वाली मुख्य बीमारियों के लक्षण के आधार पर उनका निदान करना चाहिए। अच्छे उत्पादन के लिए तालाब के वातावरण को अनुकूल रखना आवश्यक है। मछलियों में पायी जाने वाले मुख्य बीमारियों एवं विषम परिस्थितियों का वर्णन यहाँ किया जा रहा है।

तालाब में मछलियों का सूरज निकलने से पूर्व हवा में मुँह खोलना

यह स्थिति तभी उत्पन्न होती है जब पानी में ऑक्सीजन की मात्रा काफी कम हो जाती है। अन्य जीवों की तरह मछलियों को भी साँस लेने के लिए ऑक्सीजन की आवश्यकता होती है। यह ऑक्सीजन पानी में मुख्यतः वायु से एवं प्रकाश संश्लेषण से प्राप्त होता है। प्रकाश संश्लेषण की क्रिया दिन में सूर्य की रोशनी में होती है। छोटे–छोटे जलीय पौधे प्रकाश संश्लेषण क्रिया द्वारा ऑक्सीजन उत्पन्न करते हैं तथा रात में दूसरे जीवों की तरह ऑक्सीजन लेते हैं और कार्बनडाइऑक्साइड छोड़ते हैं। जब तालाब में इनकी संख्या काफी कम या अधिक हो जाती है और दूसरे जीवों की संख्या अधिक हो जाती है तो इस परिस्थिति में पानी में ऑक्सीजन की कमी हो जाती है और मछलियाँ पानी की सतह पर आकर वायु में श्वास लेने की कोशिश करती हैं। यह प्रायः सुबह सूरज निकलने से पहले या बरसात के दिनों में जब लगातार आकाश में बादल लगे हों या रूक–रूक कर वर्षा हो रही हो या गर्मी के दिनों में जब तालाब में पानी कम हो तथा पानी गर्म हो गया हो या गर्मी के बाद जब पहली बारिश होती है और तालाब में पानी बाहर से बहकर आता है। उसके बहाव से नीचे जमे कीचड़ उखड़ कर पानी में घुल जाते हैं और उनके सड़ने की प्रक्रिया तेज हो जाती है तब ऐसी स्थिति उत्पन्न होती है। पानी का तापमान अधिक होने के कारण ऑक्सीजन का अधिक उपयोग होता है जिससे मछलियों के लिए ऑक्सीजन की उपलब्धता घट जाती है। एक किसान ने गर्मी के दिनों में अपने तालाब में उगे पौधों की सफाई करा दी। पौधों की सफाई से जड़ में लगे मिट्टी एवं खाद उखड़कर पानी में घुल गये जिससे इनकी सड़ने की प्रक्रिया तेज हो गयी और ऑक्सीजन का

अधिक शोषण होने लगा। गर्मी के दिनों में जब पानी का तापमान अधिक रहता है तो उसमें ऑक्सीजन कम घुला रहता है और उसी समय अधिक ऑक्सीजन की खपत होने लगी जिससे ऑक्सीजन की कमी के कारण मछलियाँ मर गईं। इस तरह मरने वाली मछलियों में सबसे पहले कतला और सिल्वर कार्प नामक मछलियाँ मरती हैं।

इस परिस्थिति में सबसे पहले पानी में ऑक्सीजन की मात्रा को बढ़ायें इसके बाद पानी में होने वाले ऑक्सीजन की कमी के कारणों का पता लगायें एवं उसके समाधान का उपाय करें।

- तत्काल में पानी में ऑक्सीजन बढ़ाने के लिए तालाब में ऑक्सीजन युक्त पानी डालें।
- यदि ऐसी व्यवस्था संभव न हो तो उसी तालाब का पानी पम्प द्वारा उसी तालाब में फेंके ताकि पानी छोटी–छोटी बूँदों के रूप में गिरे। इससे पानी में ऑक्सीजन बढ़ेगी।
- तालाब में चूना एवं पोटाशियम परमैंगनेट का प्रयोग करें। इनके प्रयोग से पानी में सीधे तौर पर ऑक्सीजन तो नहीं बढ़ेगी लेकिन ऑक्सीजन की कमी के कारण जो दूसरे गैस विषैले हो जाते हैं उनका असर कम हो जायेगा। जैसे यदि पानी में ऑक्सीजन समुचित मात्रा में हो तो कार्बनडाइऑक्साइड की थोड़ी अधिक मात्रा जहरीली नहीं होती लेकिन जैसे ही ऑक्सीजन की मात्रा घटेगी कार्बनडाइऑक्साइड और दूसरी गैस जहरीली हो जाती है जिससे मछलियाँ मरने लगती हैं।
- तालाब में केले के तने को काटकर डालने, बाँस से पीटने या तेजी से ऊपर ही ऊपर जाल चलाने से भी फायदा होता है।
- ऐसी स्थिति में यदि मछलियों को पूरक आहार दे रहे हैं तो उसकी मात्रा कम कर दें या बंद कर दें।

यह तो मछलियों को बचाने का तुरंत उपचार विधि है लेकिन इस समस्या का स्थायी समाधान जरूरी है ताकि यह समस्या पुनः न होने पाये। इस समस्या के निम्नलिखित मुख्य कारण हो सकते हैं–

- तालाब का पानी बहुत हरा है जिसमें ऑक्सीजन उत्पादन करने वाले पौधे काफी हैं ये पौधे दिन में तो ऑक्सीजन उत्पन्न करते हैं लेकिन रात में ऑक्सीजन का शोषण करते हैं जिससे पानी में सूरज निकलने के पूर्व ऑक्सीजन की कमी हो जाती है।
- तालाब का पानी एकदम साफ है अर्थात ऑक्सीजन उत्पन्न करने वाले पौधे कम हैं और ऑक्सीजन लेने वाले जलीय जीव अधिक हैं जिससे ऑक्सीजन की कमी हो जाती है।

इन दोनों ही अवस्थाओं में तालाब का सही प्रबंधन आवश्यक है। पहली वाली अवस्था में जब पानी का रंग बहुत हरा है तो उसका हरापन कम करना आवश्यक है तथा जब पानी का रंग बिल्कुल साफ हो तो पानी को हरा करना आवश्यक है ताकि ऑक्सीजन उत्पन्न करने एवं उपयोग करने वाले जीवों में सामंजस्य हो। पानी के हरापन को दूर करने के लिए

- तालाब से पानी निकालें तथा साफ पानी को तालाब में भरें।
- यदि ऐसा संभव न हो (खासकर जो तालाब वर्षा पर निर्भर है) तो हरा शैवाल को मारने के लिए बाजार में उपलब्ध रसायन (2, 4 डी.) का भी उपयोग कर सकते हैं लेकिन इन रसायनों का उपयोग जानकार व्यक्ति की उपस्थिति में ही करना चाहिए।
- यदि तालाब में लाल मिट्टी घोलकर डाल दें तो भी पानी गंदा हो जायेगा जिससे सूर्य की रोशनी वनस्पति प्लावक को नहीं मिल पायेगी और वह मर जायेगा लेकिन यह काम पूरे तालाब में एक ही

बार नहीं करना चाहिए क्योंकि इससे पूरे वनस्पति प्लाावक का एक ही बार में मरने की संभावना बढ़ जाती है। तालाब में मिट्टी के उपयोग के बाद जब प्लैंक्टन मर जाये तो उसमें चूना का प्रयोग अवश्य करें।

– तालाब को ढकने से भी वनस्पति प्लावक मर जाते हैं। इसके लिए किसान अपने तालाब को कमल के पत्ते से ढक दें। ऐसा करने से वनस्पति प्लावक को धूप नहीं मिल पायेगी और वे मर जायेंगे।

यदि तालाब का पानी एकदम साफ हो तो उसे हरा बनाने के लिए उसमें लगातार जैविक खाद का प्रयोग करना चाहिए। इसका प्रभाव धीरे–धीरे होगा अतः शुरू से ही इसका ध्यान रखना आवश्यक है। तुरंत प्लैंक्टन उत्पादन के लिए तालाब में डीएपी का प्रयोग करना आवश्यक होगा। इसके लिए डीएपी को पानी में घोल कर पूरे तालाब में छीटना चाहिए। जितना पतला घोल होगा और अधिक से अधिक तालाब के पानी में मिलाया जायेगा उतना ही अधिक फायदा होगा। अतः शुरू से ही यह ध्यान रखना चाहिए कि पानी का रंग हरा–भूरा बना रहे। इसके लिए समय–समय पर खाद एवं चूना का प्रयोग करते रहें।

यदि आपके तालाब में बड़ी मछलियाँ हो तो उन्हें निकालकर बेच दें ताकि ऑक्सीजन ग्रहण करने वालों की संख्या कम हो।

मछलियों में असाधारण लक्षण, उपचार एवं बचाव

1. लक्षणः पानी का अत्यधिक ठंडा/गर्म होना

कारण - वातावरण के तापमान में परिवर्तन।

समय - जाड़े के मौसम में सामान्यतः पानी ठंडा एवं ग्रीष्म ऋतु में गर्म हो जाता है।

उपचार - बड़े जलक्षेत्र में ठंडा/गर्म पानी मिलाना या तालाब के ऊपर प्लास्टिक से ढँककर पानी के तापमान को सामान्य बनाना संभव नहीं है। पानी की गुणवत्ता को बरकरार रखना होगा तभी मछलियों के मृत्युदर को कम किया जा सकता है।

रोकथाम - यदि पानी का तापमान 1.1 डिग्री से कम हो जाता है तो मछलियाँ शिथिल पड़ जाती हैं तथा भोजन लेना कम कर देती हैं। उसी प्रकार तापमान बढ़ जाने पर घुलित ऑक्सीजन में कमी आ जाती है तथा कार्बनडाइऑक्साइड का अनुपात बढ़ जाता है जिसके कारण पानी का पीएच कम हो जाता है और मछलियाँ मरने लगती हैं। साधारणतः पानी के तापमान को कम या अधिक करना व्यावहारिक तौर पर आसान नहीं है लेकिन पानी को इतना अनुकूल रखना आवश्यक होगा ताकि मछलियाँ मरे नहीं। जब पानी का तापमान कम हो तो तालाब में पूरक आहार न दें। जब तापमान अधिक हो तो खाद का प्रयोग न करें क्योंकि अधिक तापमान के कारण पानी में ऑक्सीजन की घुलनशीलता कम होती है और जैविक खाद के उपयोग से ऑक्सीजन की आवश्यकता बढ़ जायेगी जिससे स्थिति और खराब हो सकती है।

2. लक्षणः मछलियों का झुण्ड में पानी की सतह पर घूमना

कारण - तालाब में भोजन की कमी।

उपचार - पानी में पूरक आहार की मात्रा बढ़ायें।

रोकथाम - तालाब में प्राकृतिक भोजन के उत्पादन में वृद्धि के लिये कार्बनिक खाद का उपयोग करें।

3. लक्षणः मछलियों की अचानक मृत्यु/तालाब के कीचड़ से सड़े अंडे की तरह गंध आना।

कारण - पानी में अमोनिया की सान्द्रता बढ़ने के कारण यह हो सकता है। तुरंत इसकी जाँच करायें।

उपचार - तालाब के 25–50 प्रतिशत पानी को बदलें। पानी में जियोलाइट मिलायें। जिप्सम डालकर पानी का पीएच कम करें, कुछ दिनों में कली चूना का उपयोग कर उसे अच्छी तरह मिलवायें।

रोकथाम - अमोनिया पानी में दो प्रकार से मौजूद रहता है – आयनिक एवं अआयनिक। आयनिक अमोनिया अआयनिक अमोनिया से अधिक जहरीला होता है। पानी का पीएच बढ़ने से अआयनिक अमोनिया आयनिक अमोनिया में परिवर्तित हो जाता है जो मछली के मृत्युदर को बढ़ा देता है। अमोनिया जहर मुख्यतः सूर्यास्त के समय उत्पन्न होता है जब पानी का पीएच, तापमान और अआयनिक अमोनिया अधिकतम होता है। यह जाड़े में बढ़ता है जब कम तापमान के कारण शैवाल और जीवाणु में उपापचय क्रिया कम होती है क्योंकि शैवाल और नाइट्रोसोमोनास जीवाणु अमोनिया के मुख्य ग्राहक हैं।

4. लक्षणः मछली मर जाती है। गलफड़ का रंग भूरा हो जाता है।

कारण - ऐसा मछलियों की अत्यधिक संख्या के होने या नाइट्राइट के जहर के कारण हो सकताा है।

उपचार - पानी में क्लोराइड मिलायें। पानी में ऑक्सीजन के उच्चतम स्तर को बनाये रखें। क्लोराइड के मिलाने से नाइट्राईट का असर कम होता है। सोडियम क्लोराइड सस्ता एवं प्रभावी है। कैल्शियम क्लोराइड का भी उपयोग कर सकते हैं।

रोकथाम - तापमान में कमी के कारण नाइट्राईट का प्रभाव पड़ता है क्योंकि नाइट्रीफाइंग जीवाणु को जीने के लिए एक निश्चित तापमान की आवश्यकता होती है। नाइट्राईट रक्त प्रवाह में चला जाता है और हिमोग्लोबिन को ऑक्सीकृत कर मेटाहिमोग्लोबिन में परिवर्तित कर देता है जो रक्त में ऑक्सीजन परिवहन की शक्ति को बाधित करता है तथा ऊतकों में ऑक्सीजन की कमी होने लगती है जिससे गलफड़े का रंग लाल से भूरा हो जाता है। एनीमिया के कारण भी मछलियाँ मरती हैं जिसमें गलफड़े का रंग लाल रंग लिये हुए पीला पड़ जाता है।

5. लक्षण : मछली के शरीर में श्लेष्म का अत्यधिक श्राव।

कारण - पीएच का कम होना हो सकता है।

उपचार - बफर (प्रतिरोधक) मिलायें। मछलियों की संख्या कम करें।

रोकथाम - तालाब का पीएच पानी की गुणवत्ता, प्रकाश संश्लेषण एवं मिट्टी के पीएच पर निर्भर करता है। जलीय पौधें प्रकाश संश्लेषण क्रिया में कार्बन डाइऑक्साइड का उपयोग करते हैं और सूर्यास्त तक पीएच चरम पर पहुँच जाता है। रात में जब प्रकाश संश्लेषण नहीं होता है, कार्बनडाइऑक्साइड की मात्रा में वृद्धि होने से पीएच कम हो जाता है। कम क्षारीय तालाब में पानी के निम्न प्रतिरोधक क्षमता के कारण पीएच में काफी उतार–चढ़ाव होता है इसलिए पानी की पीएच को नियंत्रण में रखना आवश्यक है।

6. लक्षणः गलफड़े एवं चमड़े में धुंधलापन होना।

कारण - पीएच का अधिक होना।

उपचार - बफर मिलायें। कम क्षारीयता वाले तालाब में कैल्शियम एवं अधिक क्षारीय तालाब में फिटकरी मिलायें। पानी में उपलब्ध शैवाल को मार दें जिससे पानी में कार्बनडाऑक्साइड का उपयोग कम होगा और

पीएच घटने लगेगा। शैवाल को मारने के लिए रसायन के उपयोग की सलाह नहीं दी जाती है क्योंकि इसका खराब प्रभाव भी पड़ सकता है इससे ऑक्सीजन स्तर के कम होने की संभावना रहती है इसलिए ऑक्सीजन के स्तर का ध्यान रखना आवश्यक होगा। पश्चिम बंगाल के कुछ मत्स्य पालकों का मानना है कि तालाब में ईमली के पत्ते का भी बंडल बनाकर डाल देने से पानी का पीएच कम होता है और जब पीएच संतुलित हो जाता है तो इसे पानी से बाहर निकाल दिया जाता है।

7. लक्षणः मछली का स्वाद मिट्टी/कीचड़ जैसा होना।

कारण - इसका मुख्य कारण मिट्टी में मौजूद जीवाणु, औद्योगिक कचड़ा, घरेलू गंदे पानी का बहाव, फिनॉल एवं पेट्रोलियम उत्पाद हैं।

उपचार - मछली को पूरक आहार दें तथा तालाब में नियमित कली चूना का प्रयोग करें।

8. लक्षणः तालाब की मिट्टी का सड़े अंडे की तरह महकना/मरी मछली का गलफड़ा बैंगनी होना।

कारण - तालाब के तल का कार्बनिक पदार्थों के अत्यधिक सान्द्रता के कारण अवायवीय होना।

उपचार - पानी में ऑक्सीजन की मात्रा को बनाये रखने से हाइड्रोजन सल्फाइड के बनने की प्रक्रिया को रोका जा सकता है। यह पोटाशियम परमैंगनेट उपचारित करने पर खत्म किया जा सकता है तापमान में कमी एवं पीएच के मान को बढ़ाकर भी हाइड्रोजन सल्फाइड के असर को कम किया जा सकता है।

9. लक्षणः तालाब में पानी के प्रवेश मार्ग के नजदीक मछलियों का मरना।

कारण - खेतों से कीटनाशक के बह कर तालाब में आने से हो सकता है।

उपचार - तालाब में जहर पहचान पाना मुश्किल है। अन्य जलीय जीव जैसे – मेढ़क, कछुआ, साँप और पक्षियों की मृत्यु से जहर का अंदाजा लगाया जा सकता है। अधिकांश तालाब के पानी को बदल दें। इसके जहर का असर कम होगा तालाब से बड़ी मछलियों को निकाल लें।

रोकथाम - तालाब में पानी के प्रवेश मार्ग पर घना वनस्पति लगायें जिससे कीटनाशक के रिसाव को रोका जा सके। तालाब में आने वाली पानी की दिशा बदलने के लिए अवरोधक बनायें।

10. लक्षणः एक मछली का तालाब के किनारे घूमते हुए पाया जाना।

कारण - सामान्यतः कार्प मछलियाँ अकेले नहीं घूमती है, अगर ऐसा है तो वह बीमार है। उसे पानी से बाहर निकालें और असामान्य लक्षण की जाँच करें।

उपचार - निरीक्षण के बाद ही उपचार संभव है।

रोकथाम -सही जाँच के बाद ही उचित इलाज करें।

11. लक्षण : मछली की असामान्य बढ़त। सिर का आकार शरीर की तुलना में बड़ा होना।

कारण - कुपोषण या आन्तरिक परजीवी के कारण हो सकता है।

उपचार - पूरक आहार की मात्रा एवं गुणवत्ता को बढ़ायें या बदल दें। कार्बनिक खाद का उपयोग करें ताकि प्राकृतिक भोजन में वृद्धि हो।

रोकथाम - पूरक आहार की मात्रा एवं गुणवत्ता को बढ़ायें।

12. लक्षण : मछलियों का तालाब के किनारे घूमना एवं शरीर को किनारे पर रगड़ना। शरीर पर कहीं-कहीं रक्त के धब्बे होना।

कारण - आरग्यूलस का संक्रमण। शरीर का मुलायम भाग जैसे – पंख की जड़, पूँछ के अग्र भाग एवं गलफड़ पर आरग्यूलस का संक्रमण।

उपचार - तालाब में जगह–जगह बाँस के फट्टी को गाड़ दें ताकि मछलियाँ उस पर शरीर रगड़ सकें जिससे आरग्यूलस बाँस में चिपक जायें। कुछ समय बाद बाँस को तालाब से बाहर निकाल कर नमक या ब्लीचिंग पाउडर के घोल से धोकर तेज धूप में सूखायें जिससे सभी आरग्यूलस मर जायेंगे। पुनः बाँस को तालाब में गाड़ दें।

रोकथाम - आरग्यूलस को खत्म करने की कोई दवा नहीं है। गर्मी के मौसम में तालाब के पानी को सूखाकर मिट्टी कोड़ दें जिससे आरग्यूलस के बचे–खुचे अंडे धूप से मर जायें। साधारणतः तालाब के सतह में पाये जाने वाले पत्थरों की दरारों या वारिश के पानी के साथ आरग्यूलस तालाब में आते हैं। पत्थरों को तालाब से निकाल दें तथा पानी के प्रवेश मार्ग के पास चूना का भरा बैग रखें ताकि पानी बैग से होकर जाएं।

13. लक्षणः तालाब से मछली की तरह बू आना।

कारण - मछली के शरीर से अत्यधिक श्लेष्म का श्राव।

उपचार - तालाब के कुछ पानी को बदल दें तथा चूने का प्रयोग करें।

रोकथाम - गर्मी के मौसम में तालाब की कुछ मिट्टी निकाल दें।

14. लक्षण : मछली के शरीर पर लाल-लाल चकते का होना।

कारण - यदि ये धब्बे पिन की नोंक के बराबर हों और पूरे शरीर पर फैले हों तो यह आरग्यूलस का प्रकोप है किन्तु यदि धब्बे बड़े हों तो किसी और कारण से हो सकता है।

उपचार - रोगग्रस्त मछली को 5 पीपीएम पोटाशियम परमैंगनेट से उपचारित करें।

रोकथाम - यदि यह आरग्यूलस के कारण है तो पहले बतायें तरीके से तालाब को चूने से उपचारित करें तथा आरग्यूलस से बचाव का उपाय करें।

15. लक्षण : पानी का हरा होना।

कारण - वनस्पति प्लावक की अत्यधिक मात्रा। यह तालाब के ऑक्सीजन को कम करता है। जो मछली के मृत्यु का कारण बनता है।

उपचार - तालाब का 25–50 प्रतिशत पानी बदल दें। अगर यह संभव न हो तो पानी में लाल मिट्टी का घोल डालें या जानवरों को तालाब में छोड़ें जिससे उनके खुर से तालाब में कीचड़ फैल जाए। ऐसा करने से पौधा प्लावक मर जायेगा क्योंकि इन्हें सूर्य का प्रकाश नहीं मिल पायेगा। चूना का प्रयोग करें जिससे तालाब में पौधों के सड़ने में मदद मिलेगी।

16. लक्षणः पानी का अत्यधिक पारदर्शी होना।

कारण - तालाब में प्राकृतिक आहार का कम होना।

उपचार - तालाब में कार्बनिक खाद एवं चूना का लगातार प्रयोग करें।

17. लक्षणः पानी का अत्यधिक मटमैला होना।

कारण - तालाब के पानी में अत्यधिक कीचड़ होना, बहकर आये हुए पानी में अत्यधिक धूलकण होना।

उपचार - पानी में समय–समय पर चूना एवं कार्बनिक खाद का प्रयोग करें।

रोकथाम - चूना एवं कार्बनिक खाद के लगातार प्रयोग से तालाब में स्थित धूलकण भी बैठता है तथा कीचड़ को सड़ने में मदद मिलती है जिससे वह एक बहुत ही अच्छा जैविक खाद के जैसा काम करता है।

18. लक्षणः तालाब से मछली पकड़ने के क्रम में कुछ मछलियों का नहीं होना।

कारण - पोषक तत्वों की कमी के कारण हो सकता है।

उपचार - पूरक आहार में वृद्धि कर दें।

रोकथाम - लगातार पूरक आहार एवं खाद का प्रयोग करें।

19. लक्षणः मछलियों की असामान्य वृद्धि/वृद्धि दर में कमी

कारण - तालाब में खाने की अनुपलब्धता/आहार में आवश्यक एमीनो अम्ल की कमी/आनुवांशिक कारणों के कारण।

उपचार - पूरक आहार में वृद्धि/तालाब में कार्बनिक खाद प्रयोग की अधिक आवश्यकता है।

रोकथाम - कार्बनिक खाद एवं चूने का लगातार प्रयोग/पानी का पारामीटर, मुख्यतः पीएच की जाँच करें। आनेवाले साल में मछली के जीरा का श्रोत बदल लें।

20. लक्षणः पानी में प्लैंक्टन की कमी।

कारण - तालाब के नये होने के कारण/गर्मी में तालाब के सूख जाने के कारण/जीर्णोद्धार के कारण।

उपचार - कार्बनिक खाद के प्रयोग के बाद दूसरे तालाब से प्लैंक्टन लाकर डालें।

रोकथाम - प्लैंक्टन डालने के बाद लगातार कार्बनिक खाद का प्रयोग करें।

21. लक्षणः मछली के शरीर से अत्यधिक चिपचिपे का श्राव

कारण - मछली का बाह्य परजीवी से ग्रसित होना/पीएच कम होना।

उपचार - मछली के बाह्य परजीवी की जाँच करें तथा पीएच नियंत्रित रखें। यदि पीएच कम हो तो चूने का प्रयोग करें।

रोकथाम - पानी की पीएच की लगातार जाँच करें।

22. लक्षणः कुछ मछलियों का बीमार होना।

कारण - दूसरे तालाब से पानी का प्रवेश/उचित बहाव एवं स्वच्छता का अभाव।

उपचार - तालाब में लगातार चूने तथा पोटाशियम परमैंगनेट का प्रयोग करें।

रोकथाम - गर्मी के मौसम में तालाब को सूखा दें तथा हल चलाकर मिट्टी को उलट/पलट करवा दें। लगातार चूने का प्रयोग करें।

23. लक्षणः तालाब की सभी मछलियों का मरा हुआ होना

कारण - पानी में ऑक्सीजन की अत्यंत कमी/तालाब से जहरीली गैस का निकलना।

उपचार - तालाब के जहरीले पानी की जाँच करें। इसके लिए हापा में कुछ मछलियों को रखें। यदि मछली का जीरा दो दिनों तक जिंदा रहता है तो पानी जहरीला नहीं है। अब मछलियाँ तालाब में रखी जा सकती हैं। तालाब में गंदगी का अत्यधिक जमाव हो गया हो तो चूना डालकर कीचड़ में अच्छी तरह मिला दें।

रोकथाम - अगर तालाब में अत्यधिक कीचड़ जमा हो गया हो तो आने वाली गर्मी के महीने में इसकी सफाई कर दें। कीचड़ कृषि योग्य खेतों में उपयोग किया जा सकता है। यह फसल के लिए एक अच्छा खाद है। गर्मी में तालाब से अधिक से अधिक पानी निकालकर 300 कि./हे. की दर से पानी में डालकर मवेशियों को तालाब में छोड़ दें। मवेशियों के तालाब में चलने से चूना उनके खुर से अच्छी तरह मिल जाएगा जिससे कीचड़ से निकलने वाले जहरीले गैस का असर कम होगा। आयनिक अमोनिया जहरीला नहीं होता है। पानी के साथ अमोनिया मिल कर अमोनियम हाइड्राक्साइड बनाता है जो जल्दी ही टूटकर NH4+ और OH- में बदल जाता है लेकिन यह प्रक्रिया पानी के तापमान एवं पीएच पर निर्भर करता है। यदि पीएच अधिक है तो अमोनिया का निर्माण होगा। उसी तरह कार्बनडाइऑक्साइड भी अम्लीय जल में जहरीला हो जाता है।

24. लक्षणः तालाब की सारी मछलियों एवं प्लैंक्टन का मरा हुआ पाया जाना।

कारण - तालाब में रासायनिक जहर का असर।

उपचार - तालाब के पूरे पानी को हटाना एवं चूना का प्रयोग करना लाभदायक होगा लेकिन सभी मछलियों को बचाना संभव नहीं है।

रोकथाम - तालाब के पूरे पानी को बहा दें। चूना का प्रयोग करें। पुनः स्वच्छ जल तालाब में डालें।

25. लक्षणः तालाब में जीरा डालने के कुछ दिनों के बाद ही जीरा का मरना।

कारण - पानी का जहरीला होना। अनावश्यक मछली को मारने के लिए ब्लीचिंग पाउडर/महुआ की खल्ली के उपयोग से जहर का असर पानी में रह जाता है/तालाब में अत्यधिक कीचड़ के जमा होने से जहरीले गैस जैसे अमोनिया, हाइड्रोजन सल्फाइड का निकलना।

उपचार - चूना का प्रयोग करें। यदि तालाब में कीचड़ हो तो उसमें अच्छी तरह चूना मिला दें।

रोकथाम - जीरा डालने के पूर्व पानी के पीएच की जाँच करें।

26. लक्षणः मछली के पूँछ एवं पंख का किनारे की तरफ सड़ना/भूरभूरा होकर टूटना।

कारण - मछलियों की अत्यधिक संख्या/असामान्य आहार/तापमान में उतार–चढ़ाव के कारण हो सकता है। साधारणतः यह बीमारी एक प्रकार के जीवाणु के कारण होता है।

उपचार - प्रभावित मछली को 500 पीपीएम कॉपर सल्फेट के घोल में एक मिनट के लिये उपचारित करें।

रोकथाम - बीमारी को हटाने के लिये उचित देखभाल।

27. लक्षणः अल्सर

कारण - शरीर पर खुला घाव।

उपचार - 5 पीपीएम, पोटाशियम परमैंगनेट के घोल में 2 मिनट के लिये उपचारित करें। तालाब में 100 किग्रा. मछली के लिये 500 मिग्रा. ऑक्सीटेट्रासाइक्लिन सात दिनों तक उपयोग करें।

रोकथाम - तालाब में बाहर से पानी के बहाव को रोकें। जीरा डालने के पहले एवं बाद में तालाब के प्रबंधन पर ध्यान दें।

28. **लक्षणः मछली के शरीर से चोंयटा का गिरना/एक्सोथेमिया/शरीर में पानी का जमाव।**

कारण - पानी के बहाव एवं स्वच्छता में कमी/अत्यधिक मछलियों की संख्या/आहार में विटामिन ई की कमी।

उपचार - मछलियों को 5 पीपीएम पोटाशियम परमैंगनेट के घोल में 2 मिनट तक उपचारित करें।

रोकथाम - तालाब में चूने का लगातार प्रयोग करें।

29. **लक्षणः आँखें बाहर की ओर निकल जाती हैं फिर धूँधली होकर सड़ने लगती है।**

कारण - पानी के स्वच्छता में कमी।

उपचार - 2–3 दिनों तक एक घंटे के लिये 8–10 मि.ग्रा./ली. क्लोरोमाइसिटीन स्नान।

रोकथाम - तालाब के पानी का आंशिक बहाव एवं स्वच्छ पानी डालना। तालाब में चूना या पोटाशियम परमैंगनेट का प्रयोग।

30. **लक्षणः अल्सर/चोंयटा झड़ने के साथ-साथ अंधापन, सफेद बालगुच्छ की तरह का बाहर की ओर विकास।**

कारण - तालाब के आसपास गंदगी का जमाव/मछलियों की अत्यधिक संख्या/धुलित ऑक्सीजन की कमी।

उपचार - मछली को 5–10 मिनट तक 3 प्रतिशत साधारण नमक के घोल में डुबाकर उपचारित करें।

रोकथाम - तालाब की स्वच्छता का ध्यान रखें। चूना का समय–समय पर उपयोग करें।

31. **लक्षणः शरीर पर सफेद धब्बे का होना गलफड़, चोंयटा एवं चमड़े पर 1 मि.मी. व्यास का सफेद पुटी (सिस्ट) का पाया जाना।**

कारण - प्रोटोजोआ जनित रोग।

उपचार - 2 पीपीएम मिथीलीन ब्लू में मछली को पाँच दिनों तक डुबाकर उपचारित करें।

रोकथाम - तालाब में चूना/ब्लीचिंग पाउडर के उपयोग से संक्रमण को दूर करें।

32. **लक्षणः चावल की तरह/गोल सिस्ट का गलफड़े पर पाया जाना।**

कारण - म्क्सिोबोलस का संक्रमण।

उपचार - संक्रमित मछलियों को जला दें।

रोकथाम - तालाब को सूखा दें और धूप लगने दें। तालाब से 6 इंच मिट्टी कोड़कर निकाल दें।

मछली पालन के लिए पानी की अनुकूलता की जाँच विधि

तालाब में जीरा संचय के बाद मछलियों के लिए प्राकृतिक भोजन की उपलब्धता तथा पानी की गुणवत्ता का ख्याल रखना चाहिए जिससे किसी दुर्घटना को रोका जा सके तथा अधिक उत्पादन भी प्राप्त किया जा सके।

तालाब में मछली के प्राकृतिक भोजन की उपलब्धता, पीएच तथा कार्बनडाइऑक्साइड की जाँच के लिए निम्नलिखित विधि अपनाई जा सकती हैं।

पानी की पीएच की जाँच

एक साफ बोतल में लगभग 10 मिली पानी लें।

↓

पानी में कचरा इत्यादि न आने दें।

↓

अब इसमें 2–3 बूँद पीएच जाँच को घोल डालें।

↓

पीएच जाँच का घोल डालते ही बोतल में लिये गये पानी का रंग बदल जायेगा।

↓

पानी के रंग को पी.एच. के घोल के बोतल पर दी गयी रंगों से मिलाएं।

↓

जिस रंग से पानी का रंग मिलता है उसके बगल में लिखी संख्या ही पानी का पीएच है।

↓

एक उत्तम तालाब के लिए पानी का पीएच 7.5–8.5 के बीच रहना चाहिए। पीएच इससे कम या अधिक होने पर उचित व्यवस्था करें।

मछलियों के लिए प्राकृतिक भोजन (प्लैंक्टन) की उपलब्धता की जाँच

1. तालाब में प्लैंक्टन की जाँच के लिए प्लैंक्टन के आधे भाग को पानी में डुबा कर रखें।
2. एक लीटर वाले मग से पूरे तालाब में घूम–घूम कर 50 मग पानी प्लैंक्टन नेट में डालें।
3. पानी प्लैंक्टन नेट से बाहर छन कर निकल जाता है लेकिन उसमें स्थित छोटे–छोटे प्लैंक्टन, प्लैंक्टन नेट में लगी शीशे की नली में जमा हो जाता है।
4. प्लैंक्टन नेट के शीशे की नली में जमा प्लैंक्टन ऊपर–नीचे उपलाता रहता है। इसमें एक चुटकी नमक डाल दें। ध्यान रखें कि पानी में मिट्टी के कण न आयें।
5. शीशे की नली में उपस्थित प्लैंक्टन मर कर इसके तल में जमा होने लगते हैं। थोड़ी देर में सभी प्लैंक्टन मर कर जमा हो जाते हैं।

अच्छी मछली उत्पादन के लिए प्लैंक्टन की मात्रा रेखांकित शीशे की नली में 1–2 मिली होनी चाहिए। यदि इससे कम या अधिक हो तो उचित व्यवस्था करें।

पानी पारदर्शिता की जाँच

1. सेच्ची डिस्क को तालाब के गहरे भाग में धीरे–धीरे डुबायें।
2. पानी में सेच्ची डिस्क को डुबाने पर ऐसी स्थिति आती है कि चकती पर लगे काले और सफेद रंगों के अंतर को पहचाना नहीं जा सकता है। ऐसी स्थिति आते ही पानी में डुबी जंजीर या रस्सी की लम्बाई माप लें। उदाहरण के लिए मान लें यह लम्बाई ''क'' सेमी. है।

3. सेच्ची डिस्क को थोड़ा ऊपर करने पर अब काली और सफेद रंगों को पहचाना जा सकता है। अब रस्सी या जंजीर की लंबाई को माप लें। उदाहरण के लिए यह लम्बाई ''ख'' सेमी. है।

4. पानी की पारदर्शिता = $\frac{(\text{क} + \text{ख}) \text{ सेमी.}}{2}$

5. यदि सेच्ची डिस्क किसान के पास उपलब्ध नहीं है तो अपना हाथ कोहनी तक तालाब के पानी में डुबाएं, यदि हाथ के बीच वाली अंगुली का छोर दिखाई पड़े तो यह समझना चाहिए कि तालाब में प्लैंक्टन की कमी है।

6. पानी की पारदर्शिता प्लैंक्टन की सघनता पर निर्भर करता है। यदि पारदर्शिता बहुत ही कम हो तो पानी में ऑक्सीजन की कमी हो सकती है और यह प्लैंक्टन न होने या कम होने का सूचक है इसलिए तुरंत उचित उपाय करें। एक उत्तम तालाब के पानी का रंग भूरा–काला होना चाहिए।

पानी में कार्बनडाइऑक्साइड की जाँच

1. एक काँच के शीशे में लगभग 50 मिली पानी लें।
2. उसमें 3–4 बूँद फिनोपथिलीन का घोल डालें।
3. यदि पानी का रंग हल्का गुलाबी हो जाये तो पानी में मुक्त कार्बनडाइऑक्साइड नहीं है।
4. यदि पानी का रंग न बदले तो कार्बनडाइऑक्साइड की जाँच करें।
5. एक पिपेट से एन/44 सोडियम हाइड्रोक्साइड बूँद–बूँद टपकायें जबतक कि पानी का रंग हल्का गुलाबी न हो जाये।
6. कार्बनडाइऑक्साइड (पी.पी.एम.) = सोडियम हाइड्रोक्साइड की लगी मात्रा = 20
7. अच्छे उत्पादन के लिए आवश्यक है कि तालाब में कम से कम कार्बनडाइऑक्साइड हो, खासकर दोपहर में सूर्य निकला हो तो कार्बनडाइऑक्साइड नहीं होना चाहिए। यदि ऐसा नहीं हो तो उचित व्यवस्था करें।

पानी में ऑक्सीजन की जाँच

1. एक 250 मिली वाले शीशे के बोतल में तालाब का पानी सावधानीपूर्वक लें। इस का ध्यान रखें कि बोतल में हवा का बुलबुला न जाने पाये।
2. पानी के नमूने में 1 मिली पोटाशियम आयोडाइट एवं 1 मिली मैग्नस सल्फेट का घोल डालें।
3. पानी में एक भूरा अवक्षेप बनना शुरू हो जाता है।
4. बोतल में ढक्कन लगा कर हिलायें। थोड़ी देर में अवक्षेप धीरे–धीरे नीचे बैठने लगता है।
5. यदि अवक्षेप का रंग गहरा भूरा है तो यह अधिक ऑक्सीजन का सूचक है।
6. अब 1 मिली. सल्फ्यूरिक अम्ल डालें। अवक्षेप घुलने लगता है। बोतल को हिला–डुला कर पूरे अवक्षेप को घोल दें।
7. अब इस नमूने से 50 मिली लेकर इसमें 1 मिली स्टार्च का घोल डालें। नमूने का रंग गहरा काला–पीला हो जायेगा।

8. अब इसमें ब्यूरेट से 0.025 एन सोडियम थायोसल्फेट मिलायें जब तक कि घोल रंगहीन न हो जाये।
9. पानी में घुलित ऑक्सीजन (पी.पी.एम.) = सोडियम थायोसल्फेट की मात्रा (मि.ली.) = 4

मिश्रित मछली पालन में आय-व्यय का ब्यौरा (एक एकड़ के लिए)

मद	मात्रा	अनुमानित खर्च (रू.)
तालाब का किराया	3000 रू./हे.	1,200.00
मरम्मत	3000 रू./हे.	1,200.00
ब्लीचिंग पाउडर	80 किलोग्राम/15 रू.	1,200.00
गोबर खाद	5200 किलोग्राम/30 पै.	1,560.00
डीएपी	96 किलोग्राम/10 रू.	960.00
चूना	750 किलोग्राम/2 रू.	1,500.00
अंगुलिकायें	3600/600 रू./हजार	2,160.00
चावल भूसी	2035 किग्रा./1 रू.	2,035.00
सरसों खली	2035 किग्रा./8 रू.	16,280.00
मछली चूरा	365 किग्रा/10 रू.	3,650.00
अन्य	–	500.00
कुल		32,245.00
ब्याज	10 प्रतिशत	2,224.00
कुल लागत		रू. 35,469.00

मछली उत्पादन = 1500 किलोग्राम/40 रू. = रू. 60,000.00
लाभ = (60,000–35,469) = रू. 24,531.00
= रू. 24,531.00

इस तरह मिश्रित मछली पालन से एक एकड़ तालाब से प्रतिवर्ष पचीस हजार रूपये का लाभ कमाया जा सकता है।

समन्वित मछली पालन

मछली पालन से अधिक उत्पादन, आय एवं रोजगार के लिए पशुपालन के साथ जोड़ा जा सकता है। यदि मछली पालन से सूकर, मुर्गी या बत्तख पालन को जोड़ दिया जाये तो इसके मल–मुत्र से मछलियों के लिए समुचित प्राकृतिक भोजन उत्पन्न होगा। इस व्यवस्था से मछली पालन में अलग से खाद एवं पूरक आहार की आवश्यकता नहीं होगी। एक एकड़ के तालाब के लिए 16 सूकर या 200 मुर्गी या 120 बत्तख की खाद काफी होगी।

यदि सूकर या बत्तख को तालाब के पास ही घर बनाकर रखा जाये तो इसके खाद को तालाब तक ले जाने के खर्च की बचत होगी तथा बत्तख दिनभर तालाब में ही भ्रमण करती रहेगी, तथा शाम होने पर स्वयं ही वापस घर में आ जायेगी। यह व्यवस्था उस तरह के तालाब के लिए उपयोगी है जिसमें मवेशियों के खाद देने और नहाने–धोने की मनाही है। आदिवासी बहुत क्षेत्रों के सामूहिक तालाब में इस व्यवस्था को अच्छी तरह किया जा सकता है तथा रोजगार की संभावनाओं का विकास किया जा सकता है।

मत्स्य-बीज उत्पादन

वैसा तालाब जो काफी छोटा है (10–25 डिसमिल) और जिसमें पानी भी अधिक दिनों तक नहीं रहता है, उसमें बड़ी मछली का उत्पादन संभव नहीं है। लेकिन जीरा (मत्स्य बीज) उत्पादन का कार्यक्रम किया जाये तो अच्छी आमदनी प्राप्त होगी। किसान 25 डिसमिल के तालाब से एक बार यानी 15–20 दिनों में पाँच हजार रूपया तथा एक साल में 3–4 फसल कर 15,000–20,000 रू. तक कमा सकते हैं।

साधारणतः इन क्षेत्रों में मछली बीज की काफी कमी है और बहुत सारे तालाब बीज की कमी के कारण मत्स्य पालन के उपयोग में नहीं आ पाते हैं।

जीरा उत्पादन की विस्तृत वैज्ञानिक विधि एवं आय–व्यय का ब्यौरा निम्नलिखित है।

मत्स्य-बीज उत्पादन की वैज्ञानिक विधि (एक एकड़ के लिए)

समय	सामान	दर प्रति एकड़
स्पॉन छोड़ने के सात दिन पूर्व	गोबर (कच्चा या सड़ा हुआ)	2,000 किलोग्राम
	चूना	100 किलोग्राम
स्पॉन छोड़ने के एक दिन पूर्व	डीजल एवं साबुन का घोल	20 ली./एकड़
स्पॉन छोड़ने का समय (सुबह या शाम)	स्पॉन (किसी एक जाति की मछली या मिश्रित भी ले सकते हैं)	10 लाख/एकड़
स्पॉन छोड़ने के एक दिन बाद से पूरक आहार दें	सरसों खली एवं चावल की भूसी पीसकर बराबर अनुपात में	6 किलोग्राम/एकड़ (आधा सुबह एवं आधा शाम)
स्पॉन छोड़ने के छह दिन बाद से	वही	12 किलोग्राम/एकड़ (आधा सुबह एवं आधा शाम)
स्पॉन छोड़ने के 11 से 15 दिनों तक	वही	18 किलोग्राम/एकड़ (आधा सुबह एवं आधा शाम)

स्पॉन छोड़ने के सोलहवें दिन से जीरा निकालकर बेचना शुरू करें। यह कार्य सुबह या शाम में करना ज्यादा लाभप्रद है।

मत्स्य-बीज (जीरा) उत्पादन में आय-व्यय का ब्यौरा (25 डिसमिल के लिए)

समान	मात्रा	अनुमानित खर्च (रू.)
ब्लीचिंग पाउडर	20 किलोग्राम/15 रू.	300.00
गोबर खाद	500 किलोग्राम/30 पै.	150.00
चूना	25 किलोग्राम/5 रू.	125.00
डीजल एवं साबुन का घोल	5 लीटर/25 रू.	125.00
स्पॉन	2,50,000/6 रू./हजार	1,500.00
आहार	45 किलोग्राम/6 रू.	270.00
	कुल खर्च =	**रू. 2,470.00**

जीरा उत्पादन = 75,000 / 100 रू हजार = रू. 7,500.00

लाभ = (7,500 – 2,470) = रू. 5030.00

नोटः चूँकि यह काम बरसात के दिनों में ही होता है और एक फसल में 20–25 दिन लगते हैं, इसलिये किसान एक साल में 3–4 फसल पैदा कर 15,000 से 20,000 रू. का लाभ कमा सकता है और जो मछलियाँ तालाब में रह जायेंगी उसे बड़ा होने पर वह बेच कर और लाभ कमा सकता है।

मछली पालन के लिए कुछ आवश्यक बातें।

1. नये तालाब के निर्माण के लिए ऐसी जगह का चुनाव करें जहाँ की मिट्टी चिकनी हो। रेतीली मिट्टी तालाब के लिए उपयुक्त नहीं रहती है क्योंकि उससे पानी तीव्र गति से रिस जाता है परिणामस्वरूप उसमें पानी जल्दी–जल्दी भरने की आवश्यकता होती है।
2. तालाब बनवाने के लिए नीची जगह का चुनाव करें। यहाँ पानी अधिक दिनों तक रहेगा। तथा बनवाने में खर्च भी कम आएगा।
3. तालाब कम से कम आधा एकड़ (50 डिसमिल) का बनायें।
4. तालाब का आकार न तो बहुत बड़ा होना चाहिए और न ही अधिक छोटा। तालाब आयताकार बनवायें, अर्थात् तालाब की लम्बाई इसकी चौड़ाई से तीन गुना हो (1:3)। आयताकार तालाब बनवाने में खर्च कम आता है तथा जाल चलाकर मछली निकालने में भी सुविधा होती है।
5. तालाब की तलहटी साफ रहनी चाहिए। इसमें कोई पत्थर या पेड़ की जड़ इत्यादि न छोड़े, क्योंकि इससे मछली निकालने में परेशानी होती है। तालाब को एक तरफ ढालू बनायें, ताकि जरूरत होने पर सम्पूर्ण पानी को निकाला जा सके।
6. तालाब के बाँध में किसी तरह का पत्थर तथा पेड़–पौधें का तना न छोड़ें, अन्यथा बाद में उस जगह से पानी का रिसाव होता है।
7. बाँध बनवाते समय मिट्टी डालने के बाद उस पर पानी छिड़के तथा पीटकर दबा दें।
8. तालाब का बाँध इतना चौड़ा तथा मजबूत होना चाहिए कि वह बरसात के दिनों में टूटे नहीं। बाँध के दोनों तरफ घास रहनी चाहिए, जिससे मिट्टी का कटाव न हो, अन्यथा धीरे–धीरे बाँध की मिट्टी कटकर तालाब में चली जायेगी।
9. यदि तालाब के अगल–बगल में पानी लेने की व्यवस्था हो तो तालाब की गहराई 5–6 फीट तक रखना ठीक होगा, अन्यथा गहराई 10–11 फीट रखने पर ही गर्मी के दिनों में 3–4 फीट पानी रह पायेगा।
10. तालाब में बाहर से पानी लाने के रास्ते में पाइप लगा रहना चाहिए। इसके लिए सिमेंट या मिट्टी का पक्का पाइप इस्तेमाल किया जा सकता है। बरसात के दिनों में एकत्र अधिक पानी को बाहर निकालने के लिए भी तालाब के बाँध के ऊपर की तरफ पाइप लगी होनी चाहिए। इन दोनों पाइपों में कपड़े की महीन जाली लगानी चाहिए, ताकि तालाब में पाली गयी मछलियाँ बाहर न जा सके तथा बाहर की मछली अन्दर न आ सके।
11. मछलियों को दिये जाने वाले पूरक आहार को दो बराबर भागों में बाँटकर सुबह–शाम दें।
12. पानी का रंग गहरा हरा हो जाये तो पुरक आहार और खाद देना बंद कर दें। पानी का रंग साफ हो

जाये तो पुनः प्रारम्भ करें।

13. अगर मछली हवा में साँस लेने के लिए पानी की सतह पर कूदे तो तालाब में पानी बदलने की व्यवस्था करें या पम्प द्वारा तालाब की तलहटी के पानी को फब्वारे जैसा तालाब में फूंके।
14. यदि 3–4 दिनों तक लगातार बादल लगे हों या रूक–रूक कर वर्षा हो रही है तो तालाब में चूना का संचय न करें।
15. अगर तालाब में मुलायम जलीय पौध न हों या ऊपर से घास देने की व्यवस्था न हो तो ग्रास कार्प का संचय न करें।
16. यदि मछलियाँ पानी की सतह पर समूह में घूम रही हों या किसी बीमारी की आशंका हो तो तालाब में चूना का प्रयोग करें और नजदीकी विशेषज्ञ या मत्स्यपालन इकाई, पशुचिकित्सा महाविद्यालय, काँके से सम्पर्क करें।

रंगीन मछलियों का पालन एवं एक्वेरियम निर्माण

शहरों तथा कस्बों में रंगीन मछलियों को एक्वेरियम में रखने का प्रचलन दिनों–दिन बढ़ता जा रहा है। यह रखने वाले को सिर्फ मानसिक शांति ही नही देती बल्कि वास्तु दोष का भी निवारण करती है। आज झारखण्ड में तमाम रंगीन मछलियाँ दूसरे राज्यों से मँगायी जाती है जबकि इन्हें पालना कठिन नहीं है। खासकर महिलायें इन्हें आँगन में भी कम पूँजी की लागत पर कर सकती हैं। रंगीन मछलियों के पालन एवं एक्वेरियम निर्माण की तकनीकी जानकारियों से अच्छी आमदनी प्राप्त की जा सकती है।

अलंकारी मछलियों के प्रकारः

1. शिशु जनक – गप्पी, सॉर्ड टैल, प्लेटी, मॉली आदि।
2. अंड जनक – गॉरामी, गोल्डफिश, एंजल, डॉलर, फिश, पुन्टिस आदि।

अलंकारी मछलियों का पालन :

अलंकारी मछलियों को छोटे–छोटे तालाब या सीमेंट टैंक में पाला जा सकता है। इसके लिए जल का प्रवाहबद्ध पद्धति तैयार कर जल की गुणवत्ता बरकरार रखनी चाहिए। इनके लिए बाजार में सजीव एवं कृत्रिम आहार मौजूद हैं।

सहायक उपकरणों का विक्रय :

रंगीन मछलियों के प्रजनन, पालन एवं निर्यात के अतिरिक्त इस व्यवसाय में एक्वेरियम की सुन्दरता को बढ़ाने तथा उनके प्रबंधन हेतु तरह–तरह के पत्थर के टुकड़े, खिलौने, प्राकृतिक एवं कृत्रिम पौधे, शुष्क आहार, सजीव आहार, फिल्टर आदि की माँग काफी अधिक है। इन सामग्रियों का व्यवसाय भी शुरू कर अच्छी आय प्राप्त की जा सकती है।

एक्वेरियम निर्माण :

रंगीन मछलियों को अक्सर एक्वेरियम में पालते हैं। शीशे का बना हुआ आयताकार टैंक काफी प्रचलित है क्योंकि यह देखने में काफी आकर्षक लगता है तथा इसमें पानी रिसने की संभावना भी कम होती है। इसको बनाने एवं प्रबंधन की जानकारी एक सफल व्यवसायी के लिए जरूरी है।

एक्वेरियम बनाने के लिए आवश्यक सामग्री

1. शीशे का टैंक 2. बल्ब लगा ढक्कन 3. छोटे–छोटे रंग–बिरंगे पत्थर 4. स्टैंड 5. जलीय पौधे 6. सजावटी खिलौने 7. वायुप्रवाहक 8. एयरस्टोन 9. फिल्टर 10. रंगीन मछलियाँ 11. हैंड नेट 12. कृत्रिम आहार 13. बाल्टी एवं मग 14. स्पंज 15. स्वच्छ जल

एक्वेरियम प्रबंधन :-

आकर्षक लगने हेतु एक्वेरियम का प्रबंधन बहुत ही महत्वपूर्ण है। इसके लिए कुछ बातों पर ध्यान देना आवश्यक है।

1. एक्वेरियम के शीशे की दीवार कुछ समय बाद धुंधली दिखाई देने लगती है इसलिए इसे मुलायम, साफ कपड़े से बिना खरोंच के शीशे को प्रतिदिन पोंछना चाहिए।
2. मछलियों के स्वास्थ्य का परीक्षण प्रतिदिन करना चाहिए।
3. एक्वेरियम में लगाए गए उपकरणों की क्रियाविधि की जाँच समय–समय पर करते रहना चाहिए।
4. प्रत्येक 15 दिन पर जल का 10–30 प्रतिशत भाग बदलते रहना चाहिए।
5. अगर किसी कारणवश मछली बीमार हो तो तुरंत उसे अलग कर देना चाहिए।

एक्वेरियम कहाँ रखे?

एक्वेरियम रखने का स्थान समतल होना चाहिए। एक्वेरियम को लोहे या लकड़ी के मजबूत स्टैंड पर रखना चाहिए। सूर्य की किरणें उसपर सीधी नहीं पड़नी चाहिए, अन्यथा काई जमने की संभावना अधिक हो जाती है जिससे एक्वेरियम गंदा दिखाई देने लगता है। 40 वाट के बल्ब की रोशनी एक साधारण एक्वेरियम के लिए उपयुक्त होती है।

रंगीन मछलियों का आहार :

मछलियों की अच्छी वृद्धि के लिए कृत्रिम आहार दिन में दो बार निश्चित समय पर 2–3 प्रतिशत शरीर के भार के अनुसार खिलाया जाना चाहिए।

मुर्गी पालन

मुर्गी पालन आज के समय में एक व्यवसाय का रूप ले चुका है। समय के अनुरूप नए–नए अनुसंधान हो रहे हैं तथा संकर नस्ल तैयार हो रहे हैं जो कि ज्यादा अंडा देती हैं और जिनकी शरीर वृद्धि तेजी से होती है। मुर्गी को तीन रूप में पाला जाता है।

1. घर के पिछवाड़े, किचन – गार्डन में
2. अंडा देने वाली मुर्गी को फार्म में
3. माँस के लिए मुर्गी पालन फार्म में

1. कारी निर्भीक -

- इस देशी नस्ल को एसील नाम इसलिए दिया गया क्योंकि इसमें लड़ाई की पैतृक गुणवत्ता होती है।
- इस महत्वपूर्ण नस्ल का गृह आंध्र प्रदेश माना जाता है। यद्यपि, इस नस्ल के बेहतर नमूने बहुत मुश्किल से मिलते हैं। इन्हें शौकिन लोगों और पूरे देश में मुर्गे की लड़ाई–शो से जुड़े हुए लोगों द्वारा पाला जाता है।
- एसील अपने आप में विशाल शरीर और अच्छी बनावट तथा उत्कृष्ट शरीर रचना वाला होता है।
- इसका मानक वजन मुर्गों के मामले में 3 से 4 किलो ग्राम तथा मुर्गियों के मामले में 2 से 3 किलो ग्राम होता है।
- यौन परिपक्वता की आयु (दिन) 196 दिन है।
- वार्षिक अंडा उत्पादन (संख्या) – 80–90 तक होती है।
- 40 सप्ताह में अंडों का वजन 50 ग्राम होता है।

2. कारी श्यामा

- इसे स्थानीय रूप से ''कालामासी'' नाम से जाना जाता है जिसका अर्थ काले माँस (फ्लैश) वाला मुर्गा है।
- पुराने मुर्गे का रंग नीले से काले के बीच होता है जिसमें पीठ पर गहरी धारियां होती हैं।
- इस नस्ल का माँस काला और देखने में विकर्षक (रीपल्सिव) होता है, इसे सिर्फ स्वाद के लिए ही नहीं बल्कि औषधीय गुणवत्ता के लिए भी जाना जाता है।
- इसका माँस और अंडे में प्रोटीन (माँस में 25–47 प्रतिशत) तथा लौह का प्रचुर स्रोत माना जाता है।
- 20 सप्ताह में शरीर वजन 920 ग्राम तक होता है।
- यौन परिपक्वता आयु (दिन) – 180 होती है।
- वार्षिक अंडा उत्पादन (संख्या)– 90 – 105 तक होती है।
- 40 सप्ताह में अंडे का वजन – 49 ग्राम तक होता है।
- जनन क्षमता (प्रतिशत)– 55
- हैचेबिल्टी (प्रतिशत) – 52 होती है।

3. हितकारी

- नैक्ड नैक परस्पर बड़े शरीर के साथ–साथ लम्बी गोलीय गर्दन वाला होता है। जैसा इसके नाम से पता लगता है कि पक्षी की गर्दन पूरी नंगी या गालथैली (क्रॉप) के ऊपर गर्दन के सामने पंखों के सिर्फ टफ दिखाई देते हैं।
- 20 सप्ताह में शरीर की वजन एक किलो तक होती है।
- यौन परिपक्वता 201 दिनों की होती है।
- वार्षिक अंडा उत्पादन 90–100 अण्डे तक होते हैं।
- 40 सप्ताह में अंडे का वजन 54 ग्राम तक होता है।
- जनन क्षमता (प्रतिशत)– 66
- हैचेबिल्टी (प्रतिशत)– 71 होती है।

4. उपकारी

- यौन परिपक्वता की आयु 170–180 दिनों की होती है।
- वार्षिक अंडा उत्पादन 165–180 अंडे होते हैं।
- अंडे का वजन 52–55 ग्राम होता है।
- अंडे का रंग भूरा होता है।
- अंडे की गुणवत्ता, उत्कृष्ट होती है।

2. अंडा देने वाली मुर्गियां

कारी सोनाली लेयर

- पहला अंडा 17 से 18 सप्ताह की उम्र में देती है।
- 150 दिन में 50 प्रतिशत तक अंडे देती हैं।
- 26–28 सप्ताह में व्यस्तम उत्पादन क्षमता रहती है।
- 260–270 अंडों से ज्यादा 72 सप्ताह तक उत्तम प्रबंधन के साथ।
- अंडे का वजन 54 ग्राम होता है।

कारी देवेन्द्र

एक मध्यम आकार का दोहरे प्रयोजन वाला पक्षी कुशल आहार रूपांतरण– आहार लागत से ज्यादा उच्च सकारात्मक आय अन्य स्टॉक की तुलना में उत्कृष्ट, निम्न लाइंग हाउस, मृत्युदर 8 सप्ताह में शरीर वजन– 1700–1800 ग्राम यौन परिपक्वता आयु 155–160 दिन अंडा का वार्षिक उत्पादन 190–200.

3. ब्रायलर मुर्गीपालन में ध्यान देने योग्य बातें

क. ब्रायलर के चूजे की खरीदारी में ध्यान दें कि जो चूजे आप खरीद रहे हैं उनका वजन 6 सप्ताह में 3 किलो दाना खाने के बाद कम से कम 1.5 किलो हो जाये तथा मृत्यु दर 3 प्रतिशत से अधिक न हो।

ख. चूजा के आते ही उसे बक्सा समेत कमरे के अन्दर ले जायें, जहाँ ब्रूडर रखा हो। फिर बक्से का ढक्कन खोल दें। अब एक एक करके सारे चूजों को इलेक्ट्रोल पाउडर या ग्लूकोज मिला पानी पिलाकर ब्रूडर के नीचे छोड़ते जायें। बक्से में अगर बीमार चूजा है तो उसे हटा दें।

ग. चूजों के जीवन के लिए पहला तथा दूसरा सप्ताह संकटमय होता है। इस लिए इन दिनों में अधिक देखभाल की आवश्यकता होती है। अच्छी देखभाल से मृत्यु संख्या कम की जा सकती है।

घ. पहले सप्ताह में ब्रूडर में तापमान 90^0 एफ. होना चाहिए।। प्रत्येक सप्ताह 5^0 एफ. कम करते जायें तथा 70^0 एफ. से नीचे ले जाना चाहिए। यदि चूजे ब्रूडर के नीचे बल्ब के नजदीक एक साथ जमा हो जायें। तो समझना चाहिए के ब्रूडर में तापमान कम है। तापमान बढ़ाने के लिए अतिरिक्त बल्ब का इन्तजाम करें या जो बल्ब ब्रूडर में लगा है, उसको थोड़ा नीचे करके देखें। यदि चूजे बल्ब से काफी दूर किनारे में जाकर जमा हों तो समझना चाहिए ब्रूडर में तापमान ज्यादा है। ऐसी स्थिति में तापमान कम करें। इसके लिए बल्ब को ऊपर खींचे या बल्ब की संख्या को कम करें। उपयुक्त गरमी मिलने पर चूजे ब्रूडर के चारों तरफ फैल जायेंगे। वास्तव में चूजों के चाल चलन पर नजर रखें समझ कर तापमान नियंत्रित करें।

ङ. पहले दिन जो पानी पीने के लिए चूजे को दें, उसमें इलेक्ट्रोल पाउडर या ग्लूकोज मिलायें। इसके अलावा 5 मि.ली. विटामिन ए, डी, एवं बी 12 तथा 20 मि.ली. बी काम्प्लेक्स प्रति 100 चूजों के हिसाब से दें। इलेक्ट्रोल पाउडर या ग्लूकोज दूसरे दिन से बन्द कर दें। बाकी दवा सात दिनों तक दें। वैसे बी–काम्प्लेक्स या कैल्शियम युक्त दवा 10 मि.ली. प्रति 100 मुर्गियों के हिसाब से हमेशा दे सकते हैं।

च. जब चूजे पानी पी लें तो उसके 5–6 घंटे बाद अखबार पर मकई का दर्रा छींट दें, चूजे इसे खाना शुरू कर देंगे। इस दर्रे को 12 घंटे तक खाने के लिए देना चाहिए।

छ. तीसरे दिन से फीडर में प्री–स्टार्टर दाना दें। दाना फीडर में देने के साथ–साथ अखबार पर भी छीटें। प्री–स्टार्टर दाना 7 दिनों तक दें। चौथे या पांचवें दिन से दाना केवल फीडर में ही दें। अखबार पर न छींटें।

ज. आठवें रोज से 28 दिन तक ब्रायलर को स्टार्टर दाना दें। 29 से 42 दिन या बेचने तक फिनिशर दाना खिलायें।

झ. दूसरे दिन से पाँच दिन के लिए कोई एन्टी बायोटिक्स दवा पशुचिकित्सक से पूछकर आधा ग्राम प्रति लीटर पानी में मिलाकर दें। ताकि चूजों को बीमारियों से बचाया जा सके।

ञ. शुरू के दिनों में विछाली (लीटर) को रोजाना साफ करें। पानी बर्तन रखने की जगह हमेशा बदलते रहें।

ट. पाँचवें या छठे दिन चूजे को रानीखेत का टीका एफ 1 – आंख तथा नाक में एक–एक बूंद दें।

ठ. 14वें या 15 वें दिन गम्बोरो का टीका आई.वी.डी. आंख तथा नाक में एक–एक बूंद दें।

ड. मरे हुए चूजे को कमरे से तुरन्त बाहर निकाल दें। नजदीक के अस्पताल या पशुचिकित्सा महाविद्यालय या पुशचिकित्सक से पोस्टमार्टम करा लें। पोस्टमार्टम कराने से यह मालूम हो जायेगा की मौत किस बीमारी या कारण से हुई है।

ड. मुर्गी घर के दरवाजे पर एक बर्तन या नाद में फिनाइल का पानी रखें। मुर्गीघर में जाते या आते समय पैर धो लें। यह पानी रोज बदल दें।

मुर्गियों को खिलाने के लिए दाना-मिश्रण

अवयव	चूजे	बढ़ने वाली	अण्डा देने वाली मुर्गी
मकई	22	25	40
चावल का कण	35	45	30
चोकर	5	5	5
चिनिया बादाम की खल्ली	25	16	15
मछली का चूरा	10	6	5
चूने का पत्थ्र	1.0	1.5	3
हड्डी का चूर्ण	1.0	1.0	1.5
नमक	0.5	0.5	0.5
मैगनीज सल्फेट ग्राम 100 कि.	0.5	25	25
विटामिन	—	—	—
अपोषक खाद्य सप्लीमेंट	—	—	—

1. प्रति 100 ग्राम दानों में विटामिन की निम्नांकित मात्रा डालनी चाहिए 10 ग्राम रोमीमिक्स ए.वी. 2 डी. 3 के या वीटाब्लेड के 20 ग्राम (ए.वी.2डी.3) या अलग–अलग विटामिन ए के इंटरनेशनल यूनिट्स 10,000 विटामिन डी 3 के आई.सी.यू एवं 500 मि. ग्राम रीबोफ्लोविन। इसके अतिरिक्त प्रजनन वाले मुर्गे – मुर्गीयों के लिए 15,000 आई.यू विटामिन ई. 1 मि. ग्राम विटामिन बी. 12 (10 ग्राम ए.पी.एफ 100) एवं वायोटीन 6 मि.ग्राम प्रजनन के लिए दिये जाने वाले मिश्रण में कुछ अन्य विटामिन एवं ट्रेस मिनरल मिलाये जाते हैं।
2. 50 ग्राम एम्प्रोल या बाईफ्यूरान एवं 100 ग्राम टी.एम. 5 या औरोफेक प्रति क्विंटल दाना में मिलाया जाता है।

नोट :

अ. पीली मकई, चावल के कण एवं टूटे गेहूँ को ऊर्जा के स्रोत के रूप में दाना में मिलाया जाता है। दाना में यह एक दूसरे की जगह प्रयुक्त हो सकते हैं।

ब. बादाम की खल्ली के 8.5 प्रतिशत भाग में रेपसीड खली या सरसों की खली से पुरा किया जा सकता है।

स. मछली का चूरा या माँस की बुकनी को भी एक दूसरे से पूरा किया जा सकता है, लेकिन अच्छे दाना–मिश्रण में 2.3 प्रतिशत अच्छी तरह का मछली का चूरा अवश्य देना चाहिए।

माँस के लिए पाली जाने वाली मुर्गी का दाना

दाना मिश्रण प्रतिशत में				
अवयव	**1**	**2**	**3**	**4**
अनाज का दर्रा (मकई, गेहूँ, बाजरा, ज्वर, मडुआ आदि)।	56	52	57	55
चिनिया बादाम की खल्ली	20	25	15	20
चोकर चावल का कुंडा, चावल ब्रान आदि।	10	11	18	15
मछली का चूरा	12	10	8	8
हड्डी का चूर्ण	2.5	2.5	2.5	2.5
लवण मिश्रण	1.5	1.5	1.5	1.5
साधारण नमक	0.5	0.5	0.5	0.5

दाना मिश्रण सं. 1 एवं 2 को छः सप्ताह तक एवं उसके बाद 3 एवं 4 नं. खिलायें। प्रति 100 कि. दाना मिश्रण में विटामिन सप्लीमेंट 25 ग्राम खिलायें।

ब्रायलर नस्लें

कारीब्रो - विशाल

एक दिन के चुजे का वजन 40.43 ग्राम तक होता है। यह वजन 6 सप्ताह में बढ़कर 1.6 – 1.7 किलोग्राम तक हो जाता है। सातवें सप्ताह में यह वजन 2 किलोग्राम तक हो जाता है। इन मुर्गियों का ड्रेसिंग प्रतिशत 77% तक तथा 6 सप्ताह में आहार रुपांतर 2:1 होता है।

कारी रेनब्रो -

एक दिन के चुजे का वजन 40.42 ग्राम तक होता है। यह वजन 6 सप्ताह में बढ़कर 1.2 – 1.3 किलो ग्राम तक हो जाता है तथा 7 सप्ताह में 1.6–1.7 किलोग्राम तक बढ़ जाता है। ड्रेसिंग प्रतिशत 75%, दाना रुपांतर 2:1 होता है।

कारिर्बोधनराजा -

एक दिन के चुजे का वजन 40.46 ग्राम तक होता है। यह वजन 6 सप्ताह में 1.6 – 1.7 किलोग्राम तथा 7 सप्ताह में 2–2.5 किलोग्राम तक हो जाता है। इन मुर्गियों का ड्रेसिंग प्रतिशत 73% तथा आहार रुपांतर 2:1 होता है।

कारीब्रो - मृत्युंजम

एक दिन के चुजे का वजन 40.42 ग्राम तक होता है। यह वजन 6 सप्ताह होते–होते 1.6 – 1.7 किलोग्राम हो जाता है तथा 7 सप्ताह में यह 2–2.5 किलोग्राम तक हो जाता है। इस मुर्गी का ड्रेसिंग प्रतिशत 77% तथा आहार रुपांतर 6 सप्ताह में 2:1 तक रहती है।

बत्तख पालन

बत्तख पालन व्यवसाय का भारतीय कृषि प्रणाली में काफी पुराना संबन्ध रहा है। हमारे देश के उत्तर पूर्वी एवं दक्षिणी राज्यों में बत्तख पालन किसानों द्वारा होता चला आ रहा है। मुर्गी पालन व्यवसाय के तरह बत्तख पालन आज भी व्यवसायिक रूप ले पाने में अक्षम रहा है। हमारे देश का मात्र 5% अण्डा (कुल उत्पादन में) बत्तख का है। अतः बत्तख पालन व्यवसाय को किसान अपना सकते हैं एवं अण्डे तथा माँस उत्पादन में योगदान दे सकते हैं। आज इसकी अपार संभावनाएं हैं।

बत्तख पालन झारखण्ड राज्य में अपनाया जाए तो परिणाम लाभकारी होंगे। यह पक्षी व्यवहार से दल–दल एवं जलाशय में रहना पसंद करती है। इस प्रदेश में अधिकतर बत्तख देशी नस्ल के हैं। तथा रखने में कोई विशेष प्रबंध नहीं दिया जाता। ऐसे में इनकी अण्डा उत्पादक क्षमता 100 से 120 प्रति वर्ष है। किसान उन्नत नस्ल के बत्तख का पालन कर प्रति वर्ष 250 से 300 अण्डे तथा बत्तख माँस उत्पादन कर इसे व्यावसाय के रूप में अपना सकते हैं।

बत्तख पालन से लाभ

- यह एक स्वस्थ पक्षी है जो कई प्रकार के बीमारियों से मुक्त है।
- मुर्गी की तुलना में यह प्रतिवर्ष 40 से 60 अण्डे अधिक देती है।
- बत्तख के अण्डे मुर्गी के अण्डों से करीब 15 से 20 ग्राम अधिक वजन का होता है।
- इसके पालन हेतु सस्ता आवास तथा सस्ते उपकरण से ही सुगमता से हो सकता है।
- यह एक कम खर्चिला एवं अधिक लाभदायक पक्षी पालन है। इसके पालन में ध्यान भी कम देना पड़ता (मुर्गी पालन के अपेक्षा) है।
- बत्तख साधारणतः रात में तथा दिन में 9 बजे तक अण्डा देती हैं ऐसे में इनके अण्डे खोने की संभावना नहीं के बराबर होती है। अतः सारा दिन मुक्त परिभ्रमण से पालन खर्च भी कम पड़ता है। यह दिन में खेत में चरना, खर–पतवार खाना, कीड़े–फतिंगे खाना, छोटी मछली, मेढ़क, हरित शैवाल, घास, गुगली, घोंघे, इत्यादि का प्राकृतिक रूप से सेवन करती है।
- यदि तालाब घर से दूर है तब भी बत्तख को आदत दी जाती है ताकि तालाब आ जा सके।
- मुर्गी की तरह आपस में लड़ाई करने जैसी आदत बत्तख में नहीं होती अतः चोट लगने से क्षति की समस्या कम है।
- बत्तख में अण्डा उत्पादन क्षमता दूसरे वर्ष भी मुर्गी के तुलना में अधिक पाया जाता है। ऐसे में बत्तख के झुंड को प्रतिवर्ष बदलने की आवश्यकता नहीं पड़ती।
- अण्डे का छिल्का मोटा होने के कारण पैकिंग एवं स्थानांतरण में क्षति की संभावना कम है।

बत्तख के उन्नत नस्ल

अण्डा एवं माँस उत्पादन व्यवसाय के लिए बत्तख में अलग–अलग नस्ल की पहचान की गई है ताकि अपने आवश्यकता के अनुसार बत्तख का चयन किया जा सके।

(A) अण्डा उत्पादन वाली प्रजातियां

1. खाकी कैम्पबैल (Khaki Campbell) – इनकी तीन उपजातियां पाई जाति है– खाकी, सफेद और काली। इन तीन उपजातियों में खाकी अण्डा उत्पादन में सबसे अधिक उपयोगी है। इन में अण्डा देने की क्षमता 300 अण्डों से अधिक है। यह नस्ल बिलायती है। मादा बत्तख हल्की खाकी रंग की तथा गर्दन एवं सर गाढ़े रंग की होती है। नर का रंग गहरा एवं भड़किला होता है। नर का वजन 2.2 कि.ग्रा. तथा वयस्क मादा 1.5 से 2 किलोग्राम होता है। इनके अण्डा देने का प्रारंभिक उम्र 20–22 सप्ताह है।
2. इण्डियन रनर – यह पूर्वी भारत का नस्ल है। इसका शरीर गोल, गर्दन लम्बा एवं सीधा होता है। इसका पंख शरीर से सटा हुआ होता है। वयस्क नर का वजन 1.6 से 2.2 किलोग्राम एवं मादा 1.4 से 2.4 कि.ग्राम की होती है। साल में यह बत्तख करीब 250 से 280 अण्डा तक देती है।

(B) माँस उत्पादन वाली नस्लें

1. **सफेद पेकिन** – यह चीन देश का नस्ल है। इसका पंख सफेद, चोंच एवं माँस का रंग पीला होता है। इनका शरीर लम्बा–चौड़ा साथ ही गहरा होता है। सात से आठ सप्ताह का बत्तख 2.2 से 2.5 कि. ग्राम होता है। ये प्रतिवर्ष करीब 160 अण्डे देती है।
2. **मास्कोली** – यह दक्षिण अमेरिकी नस्ल है। भारत में अनेक प्रदेशों में यह उपलब्ध है। यह काला, सफेद, भूरा तथा काले–सफेद रंगों में पाया जाता है। इसका आकार बहुत बड़ा होता है। वयस्क नर 4.5 से 6.4 कि. ग्राम तथा मादा 2.2 से 3.1 कि.ग्रा. वाली होती है।
3. **एलीसबारी** – यह एक विलायती नस्ल है। इसको माँस उत्पादन के लिए पाला जाता है। पंख सफेद, काली आंखे, पैर एवं चोंच पीला होता है। नर का वजन 4.5 कि.ग्रा. तथा मादा 4 कि.ग्रा. वजन तक के होते हैं।

   अतः किसान नस्ल की जानकारी रखते हुए अपने उपयोगिता के अनुसार बत्तख पालन व्यवासाय अपना सकते हैं।

अण्डा उत्पादन की दृष्टि से इस प्रदेश में खाकी कैम्पबैल बत्तख सर्वोत्तम नस्ल साबित हो रहा है। ग्रामीण परिवेश में ढलने की क्षमता इसमें अच्छी पायी गयी है। यहां प्रतिकूल परिस्थितियों में तथा सीमित संसाधन में भी इनमें अण्डा उत्पादन संतोषजनक पाया गया है। खाकी कैम्पबैल के नर बत्तख से निषेचित देशी बत्तख के अण्डों से प्राप्त संकर मादा बत्तख में भी अण्डा उत्पादन देशी बत्तख से अधिक पाया जाता है (170 से 220 अण्डा), अतः रोग प्रतिरोधी क्षमता, सीधी वजन वृद्धि, अल्प समय में अण्डे उत्पादन शुरू करना, स्थानीय उपलब्ध आहार सामग्री से अच्छा उत्पादन पाने से यह संकर बत्तख काफी लोकप्रिय साबित हुआ है।

बत्तख में प्रबंधन व्यवस्था

बत्तख पालन कम कीमत से बने आवास में भी शुरू किया जा सकता है। बत्तख यदि तालाब के तट पर या फिर तालाब से लगे स्थान पर हो तो वह ज्यादा उपयोगी होगा। स्थानीय परिस्थिति, उपलब्ध संसाधन एवं उपयोगिता के आधार पर बत्तख पालन निम्न प्रकार से किया जाता है।

क) **खुले क्षेत्र में बत्तख पालन** – इस व्यवस्था में बत्तख घर किसान आवास में या साथ लगा होता है तथा सबेरे इन्हें चरने के लिए छोड़ दिया जाता है। ऐसे में बत्तख सारा दिन तालाब/जलाशय में चरने के बाद शाम को आवास में लौट आते हैं। अधिकांश ग्रामीण इसी प्रणाली को अपनाते हैं।

ख) **बत्तख आवास तालाब से लगा हुआ** – ऐसी पद्धति में बत्तख गृह तालाब के तट पर या तालाब के ऊपर बनाया जाता है। इससे बत्तख गृह से उत्पन्न मलमूत्र एवं आहार अवशेष फार्म की धुलाई से बह कर तालाब में जाए। इससे बत्तख एवं तालाब में मछली पालन दोनों को संपूर्ण लाभ प्राप्त होगा।

बत्तख आवास : बत्तख आवास पूरब से पश्चिम दिशा में लंबाई लिए हुए होना चाहिए। घर खुला, हवादार एवं रौशनीदार होनी चाहिए। घर के बाहर घूमने–फिरने की जगह हो जो एक तरह या जलाशय की ओर ढालू हो। इससे वर्षा जल अथवा आवास के सफाई उपरांत पानी बहकर जलाशय में जाए। ऐसे व्यवस्था से आवास तथा घूमने वाले क्षेत्र में किचड़–कादो नहीं बनेगा। जल जमाव के कारण किचड़ बनता है तथा किचड को बत्तख द्व ारा खाऐे जाने पर नाना रोगों से ग्रसित होने की संभावनाऐं बढ़ जाती हैं। आवास में पीने के पानी का प्रबंध आहार के साथ या पास ही रखें। घूमने के क्षेत्र में बीचों–बीच एक नाली की व्यवस्था हो तकि हमेशा साफ पानी उपलब्ध रहे। पानी की नाली का चौड़ाई 14 ईंच, गहराई 8 इंच तथा लंबाई आवास के लंबाई के बराबर हो। बत्तख पालकों को जानकारी हो कि बत्तख को नहाने के लिए नहीं बल्कि अपने आंख, नाक, मुँह एवं गर्दन को डूबाने की मात्र आवश्यकता रहती है।

बत्तख के चूजों का प्रबन्धन (ब्रुडींग मैनेजमेन्ट)

प्राकृतिक रूप से सेये गये बत्तख के अण्डों द्वारा विकसित चूजों का प्रबन्धन स्वयं मादा बत्तख ही करती है। बत्तख अण्डा को सेने में 28 दिन समय लगाती है। कृत्रिम रूप से अण्डों को हैचरी में चूजा विकसित किया जाता है। सेने वाले अण्डों का वजन 70 से 75 ग्राम होना चाहिए। मस्कवी (नस्ल) के अण्डों को 32–35 दिन का समय सेने में लगता है।

अण्डों से चूजों के बाहर आने के बाद 34 घंटे तक मादा बत्तख के साथ रहने दे। 24 घंटे बाद एक साफ–सूखा एवं बक्से में रखकर खिलाना चाहिए। चूजों के पास हमेशा पानी से भरा बर्तन रखना जरूरी है। पानी के बर्तन की गहराई इतनी हो कि बच्चों (चूजों) का चोंच, आंख, नाक एवं सर पानी में डुब सके। इससे उनके नाक की सफाई एवं आंख की धुलाई हमेशा हो सके। दाना पानी के साथ रखें तथा भिगो कर खिलाऐं। सूखा दाना देने से गले में अटकने लगता है।

जालिनुमा फर्श पर चूजा पालन, पानी के गिरने से फर्श हमेशा भिंगा हुआ तथा किचड़ होना निश्चित है अतः चूजा प्रबंधन में यह व्यवस्था करना अनिवार्य है ताकि चूजों को भिंगने से बचाया जाए। चूजा पालन के लिए 8 गेज का 13 मी.मी. छेद वाला तार से बने फर्श जो जमीन से 25 से.मी.(करीब 10 इंच) ऊंचाई पर लगाया जाता है। इस पर दाना पानी का वर्तन रखा जाता है एवं पानी के गिरने से कीचड़ नहीं बनता। प्रथम सप्ताह में प्रति चूजा 1/21 वर्ग फूट तथा उम्र वृद्धि के साथ 7 सप्ताह के उम्र में 1.5 से 2 वर्ग फीट प्रति बत्तख स्थान आवश्यक है। जबकि बिछाली पद्धति में प्रति चूजा 1/2 वर्ग फीट एवं वयस्क बत्तख (7 सप्ताह) में 2 से 2.5 वर्ग फीट जगह चाहिए।

प्रत्येक 40–50 चूजों के लिए 250 वाट का एक बल्ब व्यवहार करें। अण्डा देने वाली चूजों को 3 से 4 सप्ताह तथा माँस उत्पादन वाली चूजों को 2 से 3 सप्ताह तक ब्रुडींग करना आवश्यक होता है।

बत्तख पालन मुख्यतः दो प्रणाली से पाले जाते हैं

(1) खुला क्षेत्र में घूमते–फिरते चरते हैं। इसमें रात को बत्तख को घर में रखा जाता है तथा सुबह कुछ आहार को खिलाकर चरने के लिए खोल दिया जाता है। ग्रामीण इलाकों में इसी प्रणाली से बत्तख पालन किया जाता है।

(2) सीमित वृहद प्रणाली इस प्रणाली में बत्तखों को एक निर्धारित घेरे के अन्दर व्यवस्थित रखा जाता है। इसमें घूमने टहलने का खुला क्षेत्र तथा आवास बन्द क्षेत्र होता है। व्यवसायिक बत्तख पालन इस पद्यति से ही अधिकतर किया जा रहा है।

इस प्रणाली में बत्तख के आवास में मोटा बिछावन तकनीक अपनाया जा रहा है जो अधिक लोकप्रिय है। इसे डीप लिटर पद्यति भी कहते हैं। प्रति बत्तख अनिवार्य फर्श का क्षेत्र 2.5 वर्ग फीट है। पानी का बर्तन 5 से 6 इंच गहरा तथा आहार बर्तन से लगे हुए रखना चाहिए। व्यवहार से बत्तख आहार लेने के बाद अपने माथा, आंख, नाक इत्यादि अंगों में चिपका पदार्थ को पानी में सर को डूबो कर साफ करता है। अतः यदि प्रर्याप्त गहरा पीने के पानी का बर्तन न तथा चिपके पदार्थ को बत्तख यदि साफ नहीं कर पाए ऐसे स्थिति में अंधा होने या दम घुट के मरने की संभावना बढ़ सकती है।

दाना के बर्तन की लंबाई प्रति बत्तख 2.5 से 3.0 इंच तक हो। इस पद्यति में प्रति एकड़ 1000 बत्तख पालन किया जा सकता है।

मुक्त प्रणाली में प्रति 100 बत्तख 1 एकड़ भूमि की आवश्यकता होती है।

वयस्क बत्तखों का पालन

सघन पद्यति में प्रति वयस्क बत्तख 4–5 वर्ग फीट तथा अर्ध सघन पद्धति में 3 वर्ग फीट जगह होना चाहिए। मादा नस्ल 16 से 18 सप्ताह के उम्र में अण्डा देना शुरू कर देती है। निषेचित अण्डा (Fertile eggs) प्राप्ति हेतु प्रति नर बत्तख 4–5 मादा बत्तख रखना चाहिए। दाना मिश्रण पानी में भिगाकर दें ताकि अधिक आहार ग्रहण कर सके।

नर एवं मादा बत्तख की पहचान

1. नर का आकार बड़ा एवं अधिक स्वस्थ होता है। मादा तुलना में छोटी तथा दुबली होती है।
2. नर का रंग गहरा होता है जबकि मादा का रंग हल्का होता है अण्डा उत्पादन के समय चोंच नारंगी से हल्का पीला होता है।
3. नर के पूंछ का पंख मुड़ा हुआ होता है।
4. नर का आवाज मुलायम तथा हल्का होता है मादा तेज आवाज में चिल्लाती है।

बत्तख में आहार व्यवस्था

उम्र तथा बत्तख के उत्पादन अवस्था पर आधारित दाना मिश्रण देना चाहिए। आहार सन्तुलित एवं फफूंद रहित होना चाहिए। उपयोगिता के अनुसार बत्तख दाना में प्रोटीन, ऊर्जा, खनिज लवण, विटामीन तथा वसा की संतुलित मात्रा उपलब्ध होनी चाहिए। आहार हमेशा भिगाकर या गोली बनाकर खिलाना अधिक उपयोगी होता है। छोटे अपरिपक्व चूजों को दिन में 4 से 5 बार दाना दें। आवास में दाना पानी साथ–साथ रखें।

समन्वित कृषि प्रणाली को अपनाने वाले किसान बत्तख सह मछली पालन कर समुचित लाभ प्राप्त कर सकते हैं। इस समन्वय से मछली या बत्तख के लिए अलग से कुछ खिलाने की आवश्यकता नहीं पड़ती। बत्तखों को धान के मौसम में धान पकने पर तथा गेहूं के मौसम में गेहूं पकने पर खेतों में गिरे हुए दाने सहजता से उपलब्ध हो जाते हैं अतः किसान को अलग से आहार व्यवस्था नहीं करनी पड़ती है।

बरसात के दिनों में तालाब से घोंघे और गुगली काफी मात्रा में उपलब्ध हो जाते हैं, साथ ही केचुआ, कीड़े–मकोड़े, इत्यादि पौष्टिक भोजन बत्तख के लिए संतुलित भोजन है।

इसके अलावे उत्पादन अवस्था को देखते हुए सुबह समय गेहूँ, चोकर, धान या अन्य अनाज, सोयाबीन खली, खनिज नमक तथा विटामिन से कमी पूरी की जा सकती है।

बत्तख पालन करने वाले किसान अपने खेतों में पेस्टीसाइड या इन्सेक्टिसाइड का प्रयोग सावधानी से करें क्योंकि ऐसे खेतों में चरकर या अनाज खाकर बत्तख के मरने का डर रहता है।

सघन प्रणाली में बत्तख आहार पर विशेष ध्यान देना चाहिए। बत्तख जब अण्डा दे रही हो उस अवस्था में प्रति बत्तख प्रति दिन 135 से 170 ग्राम दाना मिश्रण खिलाइए। खाकी कैम्पबेल बत्तख 56 किलोग्राम दाना एक साल में खा जाती है। प्रजनन वाले बत्तख को 170 से 230 ग्राम दाना मिश्रण प्रतिदिन अवश्य दें।

बत्तख दाना कवक या फफूंद रहित होना चाहिए। नमी रहने पर खाद्य पदार्थ पर फफूंद उग जाते हैं जिन्हें एफलोटोल्सीन कहते हैं तथा ऐसे विकृत आहार को खाने से बत्तख में अफ्लाटोकिकोसिस नामक बीमारी हो जाता है।

विभिन्न उम्र के बत्तख का आहार सामग्री रंग बनावट

क्र.सं.	खाद्य पदार्थ	0–3 सप्ताह (स्टार्टर)	4–12 सप्ताह (ग्रोवर)	12 सप्ताह से अधिक (अण्डा उत्पादन वाली)
1.	पीली मकई	44	35	43
2.	चावल / गेहूं / बजरा	10	10	10
3.	राइस ब्रान	12	30	10
4.	सोयाबीन खली	12	10	12
5.	तील खली	10	6	8
6.	मछली चूरा (सत्तू)	10	7	7
7.	खनिज लवण मिश्रण	2	2	2
8.	घोंघा चूर्ण			2
9.	चूना			1
10.	विटामिन मिश्रण	25 ग्राम	25 ग्राम	25 ग्राम

क्र.सं.	खाद्य पदार्थ	0–3 सप्ताह (स्टार्टर)	4–12 सप्ताह (ग्रोवर)	12 सप्ताह से अधिक (अण्डा उत्पादन वाली)
1.	गेहूं	30 कि.ग्रा.		30
2.	ज्वार	25 कि. ग्रा.		25
3.	चावल खुदी	5 कि.ग्रा.		5
4.	सोयाबीन खली	20 कि.ग्रा.		16
5.	तील खली	3 कि.ग्रा.		5
6.	मछली चुर्रा	3 कि.ग्रा.		7
7.	खनिज लवण	3 कि.ग्रा.		3
8.	चावल कुड़ा	6 कि.ग्रा.		7
9.	सीप	2 कि.ग्रा.		2
10.	विटामिन	25 कि.ग्रा.		25
		100 कि.ग्रा.		

चूजा के आहार में 23% प्रोटीन, वयस्क बत्तख के आहार में 19% प्रोटीन तथा अण्डा उत्पादक बत्तख में 21% प्रोटीन की आवश्यकता होती है। पोषक तत्वों के कमी से उत्पादकता पर प्रतिकूल असर पड़ता है।

बत्तख में होनेवाली सामान्य बिमारियाँ

रोग मुक्त बत्तख का चयन, देखभाल का उचित प्रबंध, संतुलित आहार, साफ–सफाई, हवादार आवास, समय बद्ध टिकाकरण इत्यादि से बत्तख पालन में होनेवाली तमाम रोग व्याधि को दूर रखा जा सकता है। मुर्गी की तुलना में बत्तख कम बीमार पड़ता है अतः रोग प्रतिरोधण क्षमता अपेक्षाकृत अधिक है। अस्वस्थ्य बत्तख का लक्षण जैसे खाना कम खाना, झुंड से अलग रहना, सुस्त, पतला दस्त, सर्दी, इत्यादि कुछ लक्षण पाए जा सकते हैं। पशुपालक को अपने झुंड का इलाज तत्परता से करना होगा ताकि भारी क्षति से बचाया जा सके।

कुछ बिमारियों का विवरण

1. **डक हेपाटाइटिस** : यह एक विषाणु जनित रोग है। यह बीमारी तीव्र रूप से छोटे उम्र के बत्तख चूजे में पाया जाता है (2–3 सप्ताह के)। इस बीमारी से 50 से 95% मृत्यु हो सकता है। कई बार बीमारी से पक्षी बीना कोई लक्षण दिखाए मरा पड़ा रहता है। बत्तख चलने में लडखड़ाता है, सुस्त होना, आखें बन्द होना, एक तरफ गिरकर पैरों को चलाना इत्यादि प्रमुख लक्षण दिखते हैं। बीमार पक्षी अधिक पानी पीता है तथा पैखाना हरा पतला होता है।

   मृत बत्तख में याकृत (Liver) बड़ा हो जाता है। इस बीमारी का कोई कारगर दवा नहीं है। टीकाकरण के द्वारा जो 1 दिन के उम्र में चूजों को दिया जाता है इससे इस बीमारी से बचाया जा सकता है।

2. **डक प्लेग** : यह एक विषाणु जनित रोग है। इसे इन्टेराइटिस भी कहते हैं। इसमें मृत्यु दर 100% तक पहुँच जाता है। बीमारी के लक्षण जैसे–सुस्ती, पंख बिखराना, आंख–नाक से श्राव गिरना, आंख फूलना, हरा पीला सफेद दस्त, अधिक प्यास लगना आदि प्रमुख लक्षण है। बत्तख खड़ा नहीं हो पाता।

   इस बीमारी के हो जाने पर बत्तख के झुंड में मृत्युदर काफी अधिक होता है। बचाव के लिए 3 सप्ताह के उम्र पर डक प्लेग भैकसिन लगवाया जा सकता है। पहला टीका – 3 सप्ताह के उम्र में, दूसरा टीका – 8 सप्ताह के उम्र में, तीसरा टीका – 20 सप्ताह के उम्र में।

3. **डक सेप्टीसिमिया (Duck Septicemia)** यह एक जीवाणु जनित बीमारी है। 4 से 9 सप्ताह में इससे अधिक मृत्यु की संभावना होती है। बत्तख सुस्त हो जाता है, तैरते समय गोल चक्कर काट सकता है। शुरूआत में जीवाणु नासक दवा (Chlortetracycline) या (Streptomycin) अथवा सल्फा आदि दवा का प्रयोग किया जाता है। 100 मि. ग्राम दवा प्रति 1 कि. दाना मिश्रण दें।

83 mg स्ट्रेप्टोमाइसिन, हाइड्रो स्ट्रेप्टो mycine IM single dose करें।

क) **डक कोलेरा (Duck Cholara)** : यह एक जीवाणु जनित रोग है। सभी उम्र के बत्तख में यह बीमारी हो सकता है। लक्षण में भूख न लगना, तेज प्यास, अचानक मृत्यु इसके प्रमुख लक्षण हैं। पैरों में लकवा, जोड़ में सूजन, पतला दस्त, आदि अन्य लक्षण हैं। गला को झुकाकर एक जगह पर खड़ा रहना।

   इलाज : सल्फाडिमिडिन 0.2% पानी में घोलकर रोज दें। फाऊल कोलेरा किल्ड वैक्सिन – 5वें सप्ताह में तथा दूसरा टीका 18वें सप्ताह में दें।

फफूंद जनित बीमारी

एसपरजिलोसिस : ए. ज्युमिगेटस तथा ए. फ्लेमस द्वारा होनेवाला यह एक फफूंद रोग है। बादाम, मकई, इत्यादि ऐसे जहर से ग्रसित हो जाते हैं साथ ही इनके सेवन से बत्तख बीमार हो जाता है साथ ही इनके लक्षण दिखता है।

स्वांस लेने में कठिनाई नर्भस साइन, Loss of appetite weakness	कई बार बिना लक्षण के चूजा मर सकता है। शारीरिक वृद्धि में कमी, बजन में कमी, लंगड़ापन अण्डा उत्पादन में कमी इत्यादि।

ऐसे में इस बीमारी से बचने हेतु पक्षी को बादाम खल्ली न दे कर सोया खल्ली देना ठीक होगा।

परजीवी रोग

अतः परजीवी बत्तख जो जमा हुआ गंदा पानी में तैरते हैं तथा गंदा पानी भी पीते हैं, इसमें अतः परजीवी जैसे गोल, पीला व फ्लुक परजीवी रहते हैं। इससे बचाव हेतु नियमित परजीवी निरोधक दवाओं का सेवन करायें।

Albendazole 20ml/kg B wt प्रति 1 से 2 माह।

बत्तखों में बीमार पड़ते ही उसे स्वस्थ बत्तखों से अलग कर देना चाहिए। तुरंत पशुचिकित्सक के सलाह से उचित उपचार कराना चाहिए।

विटामिन तथा कैलशियम के कमी से भी बत्तखों में पैर/गर्दन का टेड़ा होना जैसा लक्षण दिखाई देता है अतः संतुलित आहार जिसमें प्रर्याप्त कैलसियम और मिनरल उपलब्ध कराना चाहिए।

मछली सह बत्तख पालन में पशुओं की संख्या, उत्पादन एवं लाभ का विवरण

विषय	बत्तख
प्रति हेक्टेयर पानी का आयतन प्रति वर्ष बत्तख खाद उत्पादन	10-15 Tonne
प्रति बत्तख खाद उत्पादन प्रति वर्ष	35-45 kg
बत्तख की संख्या खाद उत्पादन हेतु प्रति हेक्टेयर प्रति वर्ष	200-300
मछली संख्या प्रति हेक्टेयर (No. of carp seed)	5000-6000

उत्पादन

मछली (टन/हे./वर्ष)	4.5
माँस उत्पादन (कि.ग्रा.)	500–700
अण्डा उत्पादन (संख्या)	1800
खर्च (रू./हेक्टेयर/वर्ष)	60000
आय (Net return) रू./हे./वर्ष	
बत्तख से	30000
मछली से	80000
Total	**110000**
Profitability%	150–200

खाकी कैम्पबैल बत्तख पालन–अण्डा उत्पादन हेतु आय–व्यय का ब्यौरा (रूपये में)

आवास निर्माण

घर तैयार करने में प्रति बत्तख 70 रू. की दर से 100 बत्तख के लिए (70x100)	7000.00
ब्रुडर घर, खाने का बर्तन, पानी का बर्तन आदि प्रति बत्तख 8 रू. की दर से (8x100)	800.00
कुल व्यय	**7800.00**

बत्तख

i.	14 रूपया प्रति चूजा के दर से 220 चूजों का मुल्य	3020.00
ii.	200 चूजा को 20 सप्ताह तक आहार में खर्च प्रति चूजा 12 कि. ग्रा. की दर से कुल (200x12) कि. ग्रा. प्रति कि.ग्रा. 9 रू की दर से 2400 कि.ग्रा. का मुल्य (2400x9)	21600.00
iii.	बिछाली, दवा, औषधि, टीका, बिजली, आदि खर्च प्रति बत्तख 5 रू. की दर से (200x5)	1000.00
iv.	100 मादा बत्तख के एक वर्ष तक खिलाने का खर्च (प्रति बत्तख 60 कि.ग्रा. की दर से) कुल (60x100) –6000 दो वर्षों तक खिलाने पर 1200 कि.ग्रा. प्रति किलो 9 रू. की दर से 12000x9	108000.00
v	प्रति बत्तख प्रति वर्ष 6 रू. के दर से 106 बत्तखों को 2 वर्ष तक बीछाली, दवा, टीका, बिजली आदि पर खर्च (100x6 1x2 वर्ष)	1200.00
		142680.00

आय

i.	प्रति बत्तख एक वर्ष में 260 अण्डा उत्पादन की दर से 100 बत्तखों से प्राप्त अंडे की कीमत 260x100 – 26,000 प्रति अण्डा 5 रू. की दर से 26,000 अण्डे का मुल्य	13000
ii	100 नर बत्तख और 100 मादा बत्तख माँस बिक्री पर प्रति बत्तख 100 रू. की दर से	20000
iii	30 क्विंटल खाद 25% प्रति क्विंटल की दर से	750
	कुल उपज	**150750**

लाभ

प्रथम वर्ष की आय	130000
दूसरे वर्ष का कुल आय	150750
दो वर्ष के बाद कुल अण्डे से आय	(280750)
कुल आय	**280750.00**
कुल व्यय	**142680.00**
शुद्ध लाभ (दो वर्षों में)	**138070.00**

बटेर पालन

बटेर भूमि पर रहने वाले जंगली पक्षी होते हैं। ये ज्यादा लम्बी दूरी तक नहीं उड़ सकते हैं और भूमि पर घोसलें बनाते हैं। इनके स्वादिष्ट माँस के कारण इनका शिकार किया जाता है। इस वजह से बटेरों की संख्या में बहुत कमी आ गई है। सरकार ने इसी वजह से वन्य जीवन संरक्षण कानून, 1972 के तहत बटेर के शिकार पर प्रतिबन्ध लगा दिया है।

बटेर पालन कम लागत, सुगम रख–रखाव तथा पालन–पोषण के साथ और बिना किसी धार्मिक प्रतिबंध के साथ सम्भव है। हम सभी इस बात को जानते हैं कि आहार को संतुलित बनाने के लिए पशुधन से प्राप्त होने वाले प्रोटीन जैसे – दूध, माँस, अंडे की जरूरत पूरी करने के लिए पशुओं की महत्ता सभी जानते हैं। बटेर कम लागत पर हमारे लिए माँस और अंडे की जरूरत पूरी करता है। इस वजह से यह कहना सही है कि ''पालें बटेर, बटोरें फायदे ढेर''

नस्लें

बटेर को उनके पंखों के रंगों के आधार पर विभिन्न किस्मों में बाँटा जा सकता है। बटेर की नस्ले इस प्रकार हैं –

1. टाक्सिडो
2. फराओ
3. ब्रिटिश रेंज
4. इंगलिश सफेद
5. मांचुरियन गोल्डन

बटेर के अण्डे

बटेर के अंडों के बारे में कुछ तथ्यः

वजन – लगभग 10 ग्राम

रंग – सफेद, जिस पर नीले धब्बे होते हैं।

उष्मायन काल – अठारह दिन

सेने के लिए तापमान

0 से 14 दिन – 66.50^{0}F

15 से 17 दिन – 68.50^{0}F

प्रजनन के लिए तीन मादा पर एक नर रखना चाहिए। मादा बटेर पाँच से सात सप्ताह की उम्र में अंडा देना शुरू कर देती है। अंडों का वजन लगभग दस ग्राम तक होता है। अंडों का रंग सफेद होता है जिस पर नीले धब्बे होते हैं। अंडों को सेने के लिए तापमान और नमी पर खास तौर पर ध्यान देना चाहिए। शून्य से चौदह दिनों तक 66.50^{0} F. और नमी 87 प्रतिशत रखें। पंद्रह से सत्रह दिनों तक तापमान 68.50^{0}F. और नमी 60 प्रतिशत रखें।

अंडों को चौदह दिनों तक उलटते–पलटते रहना बहुत जरूरी है। चौदह दिनों के बाद अंडों को हैचिंग मशीन में स्थानान्तरित किया जाता है। अठारह दिनों के बाद अंडों से बटेर के चूजे बाहर जा जाते हैं।

बटेर के चूजे

बटेर के चूजे लगभग सात ग्राम के होते हैं। उनका आकार बहुत छोटा होता है इसलिए उन्हें अच्छी देख–भाल की आवश्यकता होती है। छोटे चूजों को जमीन पर डीप लिटर या बैटरी ब्रुडर में रखा जा सकता है।

होवर या बैटरी ब्रुडर में भोजन, साफ पानी और सही तापमान की व्यवस्था करनी चाहिए। शुरू में होवर का तापमान 35–37^{0}C होना चाहिए। बाद में इसे धीरे–धीरे घटाकर 20–29^{0}C तीन–चार सप्ताह की उम्र तक करना चाहिए। स्वस्थ्य व्यस्क बटेर पाने के लिए चूजों की अच्छी देख–भाल जरूरी है।

बढ़वारी बटेर

बटेर के चूजे हल्के पीले रंग के होते हैं जिन पर भूरी धारियाँ होती हैं। दिखने में ये काफी कुछ टरकी के चूजे की तरह होते हैं फर्क सिर्फ आकार में होता है। एक दिन के चूजे सात ग्राम के होते हैं। पहले कुछ दिनों में ये तेजी से बढ़ते हैं। चार सप्ताह की उम्र में पंख पूरी तरह विकसित हो जाते हैं।

आहार व्यवस्था

दस से बारह सप्ताह की उम्र तक बटेरों में शरीरिक बढ़ोत्तरी पूरी हो जाती है। शुरू के तीन सप्ताह में बढ़वार की गति सबसे तेज होती है इसलिए आहार में 27 प्रतिशत प्रोटीन एवं 2800 किलो कैलोरी ऊर्जा प्रति किलो दाना में होना चाहिए। तीन से छः सप्ताह के आहार में 24 प्रतिशत प्रोटीन और 2900 किलो कैलोरी ऊर्जा प्रति किलो आहार में होना चाहिए। एक व्यस्क बटेर को एक दिन में चौदह से बीस ग्राम आहार की आवश्यकता होती है। बटेर पालन में 60 से 70 प्रतिशत लागत आहार पर आती है।

बटेरों का आहार बाजार में उपलब्ध अच्छी कम्पनी की कॉन्सन्ट्रेट राशन का प्रयोग सफलता पूर्वक किया जा सकता है। आहार बनाते समय इनमें अन्य स्थानीय उपलब्ध धान्य और धान्य अवशेष संघटकों को निर्धारित मात्रा में मिलाकर विभिन्न वर्ग के बटेरों का सन्तुलित आहार तैयार किया जा सकता है।

देख-भाल

बटेर के चूजों को तीन–चार सप्ताह के बाद ज्यादा तापक्रम की जरूरत नहीं होती है। बढ़वारी चूजों की बैटरी ब्रुडर से वर्धनशील चूजों के लिए बने घर में स्थानान्तरित कर देना चाहिए। ब्रुडर में हर चूजे को 150 से 180 वर्ग सेमी. व डीप लिटर में 200 से 250 वर्ग सेमी. स्थान प्रदान करना चाहिए। चार सप्ताह की उम्र में स्वजाति भक्षण से बचाव के लिए ऊपर के चोंच को थोड़ा सा काट देना चाहिए।

पाँच सप्ताह की आयु के पश्चात भी बटेरों को पिंजरे या फर्श पर रखा जा सकता है। लिटर की मोटाई दस सेमी. होनी चाहिए। एक बटेर के लिए 0.25 वर्ग फीट प्रर्याप्त है। अगर अण्डे देने वाले बटेर को पिंजरे में रखना है तो पिंजरे का आकार इतना होना चाहिए जिसमें एक नर और मादा दोनों आ जाए।

बटेरों में लिंग की पहचान

बटेरों में चूजों की लिंग की पहचान एक दिन उम्र वाले में वेंट की परीक्षा द्वारा किया जा सकता है। इस कार्य के लिए अत्यन्त दक्ष व्यक्तियों की जरूरत होती है। तीन–चार सप्ताह की उम्र या व्यस्कों में उनके पंख के रंग के आधार पर नर एवं मादा की पहचान संभव है। नर के गर्दन के नीचे का पंख लाल–भूरा रंग का एवं मादा का हल्के सुर्भई रंग पर काले धब्बे होते हैं।

व्यस्क बटेरों का लिंग बटेरों के पिछले भाग को देखकर भी किया जा सकता है। नर पक्षी के गुदा के ऊपरी भाग में एक फूली हुई गोलाकार संरचना पाई जाती है जिससे सफेद झागदार पदार्थ निकलता है। मादा पक्षी का पिछला भाग हल्के पीले रंग का होता है।

बटेर में होने वाली बीमारियाँ

आम–तौर पर बटेरों में बीमारियाँ बहुत कम होती है। उनमें रोगों से लड़ने की क्षमता अन्य पक्षियों की तुलना में अधिक होती है। मुर्गियों में होने वाली बीमारियाँ बटेरों में नहीं पाई जाती हैं परन्तु उनके सम्पर्क में आने से वे आक्रांत हो जाते हैं। बटेरों में कीटाणु, विषाणु एवं फफूँदी जनित रोग कुछ इस प्रकार हैं–

क. मेरेक्स रोग　　　　ख. क्वेल ब्रोन्काइटिस

ग. काक्सीडियोसिस　　　　घ. एस्परजिलोसिस आदि।

बीमारियों से बचाव के लिए अच्छी प्रबंधन बहुत जरूरी है। आहार खनिज और विटामिन से पूर्ण होना चाहिए। बीमार पक्षियों को तुरन्त अलग कर देना चाहिए। अलग–अलग उम्र के बटेरों को अलग रखना उचित होता है। रोग मुक्त बटेरों को ही प्रजनन हेतु प्रयोग करना चाहिए।

बटेर पालन के फायदे

यह निश्चित है कि हमारे देश में बटेर पालन उद्योग को बढ़ाने की काफी संभावनाऐं हैं। किसानों के लिए मुर्गी पालन के क्षेत्र में एक नए विकल्प के रूप में बढ़ रहा है।

बटेर पालन के कुछ फायदे

आहार के रूप में प्रयोग किये जाने के अतिरिक्त बटेर में अन्य विशेष गुण भी हैं जो इसे व्यवसायिक तौर पर लाभदायक अण्डे तथा माँस के उत्पादन में सहायक बनाते हैं। इससे होने वाले फायदे निम्नांकित हैं :–

1. बटेर प्रतिवर्ष तीन से चार पीढ़ियों को जन्म दे सकने की क्षमता रखता है।
2. मादा बटेर 45 दिन की आयु से ही अण्डे देना आरम्भ कर देती है और साठवें दिन तक पूर्ण उत्पादन की स्थिति में आ जाती है।
3. अनुकूल वातावरण मिलने पर बटेर लम्बी अवधि तक अण्डे देते रहते हैं और मादा बटेर वर्ष में औसतन 280 तक अण्डे दे सकती है।
4. एक मुर्गी के लिए निर्धारित स्थान में 8 से 10 बटेर रखे जा सकते हैं। छोटे आकार के होने के कारण इनका संचालन आसानी से किया जा सकता है। साथ ही, बटेर पालन में दाने की खपत भी कम होती है।
5. शारीरिक वजन की तेजी से बढ़ोत्तरी के कारण ये पाँच सप्ताह में ही खाने योग्य हो जाते हैं।
6. बटेर के अण्डे और माँस में संतुलित मात्रा में अमीनो अम्ल, विटामिन वसा और धातु आदि पदार्थ उपलब्ध रहते हैं।
7. मुर्गियों की अपेक्षा बटेरों में संक्रामक रोग कम होते हैं। रोगों की रोकथाम के लिए मुर्गी पालन की तरह इनमें किसी प्रकार का टीका लगाने की आवश्यकता नहीं होती है।

पशुओं का औषधीय उपचार

झारखण्ड एक औषधीय परिपूर्ण प्रदेश है। यहाँ पर एक से एक गुणकारी औषधीय पौधे हैं जिनकी उपयोगिता गाँवों में पहचानी गई है। औषधीय पौधों की पहचान एवं उपयोग गाँवों में रहने वाले लोगों द्वारा उपयोग किया जाता रहा है जो कि अब धीरे–धीरे गाँव से शहरी स्तर पर लोगों द्वारा अपनाई जाने लगी है। ये औषधीय पौधों के गुणों पर अनुसंधान भी होने लगे हैं। हमलोगों द्वारा औषधीय उपयोग में लाई जाने वाली नीम, करंज, हल्दी, अदरख इत्यादि की पहचान अब दुनिया के लोगों द्वारा की जा रही है। इन्हीं औषधीयों का उपयोग कैंसर जैसे जटिल रोगों के उपचार में भी हो रहा है।

इन औषधीय पौधों का पेटेंट बाहरी देशों द्वारा करा लिया गया है या कराने की प्रक्रिया चल रही है।

इन्हीं औषधीय पौधों के उपयोग के बारे में हम प्रकाश डालने की कोशिश कर रहे हैं।

मधुमेह

मधुमेह अब उम्र दराज लोगों की बीमारी नहीं रह गई है अपितु यह उम्र की सीमा तोड़कर हर घरों एवं पशुओं जैसे कुत्ते तक में इस बीमारी का लक्षण पाया गया है। जिनके उपचार के तौर पर जामुन का फल एवं जामुन की छाल का रस आर्युवेद एवं होमियोपैथ चिकित्सा में की जा रही है। जामुन के बीज का चूर्ण 5 ग्राम दिन में एक बार काफी उपयोगी सिद्ध होता है।

हड्डी टुटने पर

हड्डी पर हड़जोड़ नामक औषधीय पौधे का रस उपयोग में लाया जाता है। यह हड्डी मनुष्य या जानवर किसी की भी हो सकती है। टुटी हड्डी के ऊपर हड़जोड़ के तनों को पीस कर इसका लेप बनाकर 21 से 30 दिन तक लगाते रहने के साथ हड्डी में किसी तरह का बल प्रयोग या ज्यादा छेड़–छाड़ नहीं करने से हड्डी जुड़ जाती है।

बकरियाँ या गायों में पतला पैखाना होने पर उड़हुल का फूल

बकरियाँ या गायों को जब पतला पैखाना होने लगता है तब उड़हल फूल को खिलाने से पतला पखाना बंद हो जाता है। यह पतला पैखाना किसी भी कारण से हो सकता है जैसे बरसात के दिनों में ज्यादा खाने से, कृमि की वजह से, अपच की वजह से इत्यादि। बड़े जानवरों में 10–12 फूल एवं छोटे जानवरों में 3–6 फूल दिन में तीन से चार बार खिलाना चाहिए तथा 5 से 7 दिनों तक खिलाना चाहिए।

पशुओं में चर्म रोग

खास कर बकरी, सूकर, बछड़ा–बाछी, कुत्ता तथा अन्य पशुओं में जब चमड़ा मोटा हो जाए, खुजली होने लगे, खून आने लगे, घाव हो जाए, फुँसी हो जाए और फट कर खून आने लगे तब सारे शरीर को अच्छी तरह नीम या करंज के पत्ती को खौला कर उसके पानी को ढंडा करके अच्छी तरह से साफ किया जाता है तत्पश्चात उसके ऊपर करंज या नारियल का तेल कपूर की टीकीया मिलाकर सारे शरीर पर दिन में 2–3 बार 4–5 दिनों तक लगाना चाहिए इससे जानवरों को काफी आराम एवं ठंडक मिलती है।

शरीर पर घाव निकलना

शरीर पर बार–बार घाव होने पर 20–30 ग्राम नीम की पत्ती को खौला कर उसे ठंडा करके पानी को सप्ताह में 1–2 बार पीलाना चाहिए। इसके उपयोग से पेट के कीड़े मर जाते हैं एवं शरीर चमकने लगता है। बालों में भी चमक एवं मुलायमपन आ जाती है। इनके साथ–साथ नीम की पानी से शरीर को धोना भी चाहिए।

चर्म रोग में शरीफा का उपयोग

चर्म रोग की समस्या एक जटिल समस्या है। इसके निवारण के लिए शरीफा के 20–30 ग्राम बीज को पीस कर लेप के तौर पर पशु के शरीर पर अच्छी तरह से लगाते हैं। सप्ताह में 2–3 बार दिन में 2–3 बार लेप को लगाने से पशुओं का चर्म रोग ठीक हो जाती हे। इसके अलावा शरीफा की पत्ती का लेप भी काफी फायदेमंद औषधि का कार्य करता है।

करैला के जूस का उपयोग

करैला के जूस का उपयोग मनुष्य तथा पशुओं के खून को साफ करने में लाया जाता है। जिस भी किसी मनुष्य या पशु में खुजली एवं घाव की समस्या बार–बार होती है करैले का जूस (2–3 करैला) पीलाने से उसको खून का मीठापन खत्म हो जाता है और बार–बार घाव नहीं होते हैं।

बांस के कोमल पत्तों का उपयोग गर्भ धारण में सहायक

गाय पाल नहीं रखती है एवं बार–बार गर्म हो जाती है। गाय दो–तीन बार भी पाल नहीं रखती है तो किसानों को इसकी अच्छी कीमत चुकानी पड़ती है। यह गर्भ धारण नहीं करने की समस्या बड़ी ही जटिल एवं आम है। गायों में गर्भ धारण नहीं करने की समस्या से किसान जब दो–चार होते हैं तब उसके उपचार के तौर पर बांस के नए कोपल को खिलाते हैं। इन नए कोपलों को 30–80 ग्राम, वजन के अनुसार दिन में एक बार 7–10 दिन तक खिलाने पर गाय गर्म हो जाती हैं। इन बांस के कोपलों को पीस कर गोली बना कर खिलाना ज्यादा फायदेमंद होता है।

पतला पैखाना

पोजो का छाल जानवरों में पतला पैखाना रोकने के लिए काफी उपयोगी होता है। यह काफी चीप–चीपा होता है जो कि पेट को बांधने का कार्य करता है। एक कप पोजों का पीसा छाल चोकर के साथ मिलाकर गाय, भैंस को दिन में 2 बार तीन से चार रोज खिलाने से बड़े पशुओं का पतला पैखना होना बन्द हो जाता है।

हल्दी का उपयोग

हल्दी एक बहुत ही गुणकारी औषधि है। यह एक उत्तम एंटीसेप्टीक होने के साथ–साथ शरीर की बीमारी से लड़ने की क्षमता बढ़ाने की गुणकारी लक्षणों से परिपूर्ण है। हल्दी और चूना का उपयोग हम दर्द एवं सूजन को कम करने को लगाते हैं। यह मनुष्य एवं पशुओं दोनों में लाभकारी है। शरीर में दर्द रहने पर या चोट लगने पर मनुष्य दूध के साथ हल्दी का सेवन करते हैं जिनसे शरीर का दर्द खत्म हो जाता है।

पेट में कृमि होने पर नीम का उपयोग

50–100 ग्राम नीम की पत्ती को अच्छी तरह से पीसकर उसमें सरसों का तेल (आधा चम्मच) मिलाकर इसे कृमि से प्रभावित पशुओं को खिलाने से पेट के कृमि मर जाते हैं। इस मिश्रण को गुड़ के साथ मिलाकर खिलाने से कड़वाहट कम हो जाती है।

बनतुलसी का खुरहा में उपयोग

परीक्षण के क्रम में ऐसा पाया गया है कि बनतुलसी की पत्तियों में खुरहा जनित पैर के घावों को ठीक करने की गुणकारी लक्षण है। अगर घाव में कीड़े पड़े हुए हैं तो पौधों के जड़ को अच्छी तरह से पीस कर घाव पर लगाने से कीड़े मर जाते हैं। एक बार जब कीड़े मर जाते हैं तब घाव अपने आप ही सूख जाता है।

सर्दी जुकाम होने पर

जाड़े या बरसात के दिनों में पशुओं में सर्दी जुकाम होने पर सरसों तेल एवं लहसुन को पकाकर सीने में लगाने से जानवरों को राहत मिलती है। सर्दी खांसी से पूर्व भी जानवरों में सरसों तेल की मालिश से बीमारी की संभावना कम होती है।

दूध वृद्धि के लिए

गायों में दूध वृद्धि के लिए देशी उपचार के तौर पर काली तिल का पाऊडर 250 ग्राम तथा 250 ग्राम मिश्री को मिलाकर पानी के साथ 8–10 दिनों तक देने से दूध की वृद्धि होती है। यह मिश्रण दूधारू गायों में ही उपयोगी होती है। इसे खाली पेट में भी दिया जा सकता है।

गैस का उपचार

जब गायों में पेट फुलने की क्रिया बार–बार होती है तब उसके उपचार के तौर पर तोरी (काला सरसों) के पौधों को सूखाकर उसे जलाते हैं। उससे निकलने वाले धुऐं को गायों द्वारा सुंघाते हैं जिससे गायों का पेट फुलना बन्द हो जाता है।

थनैला का उपचार

यह देखा गया है कि लहसुन, मुलेथी और सत्तावर में बीमारियों से लड़ने के गुण हैं। gram-ve और gram tvc जीवाणु से लड़ने की क्षमता है। थनैला के उपचार के तौर पर 60 ग्राम लहसुन, 50 ग्राम मुलेथी और सत्तावर 40 ग्राम मिलाकर दिया जाता है। जिससे थनैला का उपचार होता है।

घावों में मधु का उपयोग

मधु का ऐन्टी बैक्ट्रीयल, ऐन्टी ऐन्फ्लेमेट्री और उत्तक संर्वधन क्षमता से पूर्ण है। ऐसा देखा गया है कि घावों में मधु के लेप से घाव जल्दी भर जाते हैं।

दूध का मूल्यवर्धन

दूध एक पूर्ण, स्वच्छ, स्तन ग्रन्थियों का झारण है। पौष्टिकता की दृष्टि से दूध एक मात्र सम्पूर्ण आहार है जो हमको प्रकृति की देन है। हमारे शरीर को लगभग तीस से अधिक तत्वों की आवश्यकता होती है। कोई भी अकेला पेय या ठोस भोज्य पदार्थ प्रकृति में उपलब्ध नहीं है जिससे इन सबको प्राप्त किया जा सके। परन्तु दूध से लगभग सभी पोषक तत्व प्राप्त हो जाते हैं। इसलिए बच्चों के लिए सन्तुलित व पूर्ण भोजन का स्तर दिया गया है।

दूध में मौजूद संघटक हैं पानी, ठोस पदार्थ, वसा, लैक्टोज, प्रोटीन, खनिज वसाविहिन ठोस। अगर हम दूध में मौजूद पानी की बात करें तो सबसे ज्यादा पानी गधी के दूध में 91.5% होता है, घोड़ी में 90.1%, मनुष्य में 87.4%, गाय में 87.2%, ऊंटनी में 86.5%, बकरी में 86.9% होता है।

दूध की उत्पादन का लक्ष्य 12वें पंचवर्षीय प्लान (2010–2017) में बढ़कर 26.95 लाख मैट्रिक टन करने की है जबकि 2010–11 में हमारी दूध की मांग या जरूरत 33.69 लाख मैट्रिक टन थी। यह आंकड़े यह दर्शाते हैं कि हमारी पूर्ति माँग से काफी कम है जिसके लिए हमें नस्ल सुधार से लेकर जानवरों के लिए चारा, दाना, पानी और प्रबंधन पर बहुत ज्यादा मेहनत की जरूरत है।

दूध सम्पूर्ण आहार के साथ–साथ जल्दी खराब हो जाने वाली पेय है। इसलिए दूध के स्वरूप को बदल कर हम ज्यादा दिनों तक रख सकते हैं साथ ही साथ दूध के मूल्यवर्धन द्वारा ज्यादा आमदनी बना सकते हैं। दूध से उत्पादित पदार्थों के पहले हमें यह जानकारी हासिल करना जरूरी है कि दूध की मांग किस रूप में ज्यादा है।

दूध के प्रकार :

(क) **सम्पूर्ण दूध** – स्वस्थ पशु से प्राप्त किया गया दूध जिसके संघटन में ठोस परिवर्त्तन न किया गया हो, पूर्ण दूध कहलाता है। इस प्रकार के दूध को गाय, बकरी, भैंस की दूध कहलाती है। पूर्ण दूध में वसा तथा वसाविहीन ठोस की न्यूनतम मात्रा गाय में 3.5% तथा 8.5% और भैंस में 6% तथा 9%, क्रमशः रखी गई है।

(ख) **स्टेण्डर्ड दूध** – यह दूध जिसमें वसा तथा वसाविहीन ठोस की मात्रा दूध से क्रीम निकल कर दूध में न्यूनतम वसा 4.5% तथा वसाविहीन ठोस 8.5% रखी जाती है।

(ग) **टोण्ड दूध** – पूर्ण दूध में पानी तथा सप्रेश दूध पाऊडर को मिलाकर टोण्ड दूध प्राप्त किया जाता है जिसकी वसा 3% तथा वसाविहीन ठोस की मात्रा 8.5% निर्धारित की गयी है।

(घ) **डबल टोण्ड दूध** – इस दूध में वसा 1.5% तथा वसाविहीन ठोस 9% निर्धारित रहती है।

(ड.) **रिक्सटिट्यूटेड दूध** – जब दूध के पाऊडर को पानी में घोल कर दूध तैयार किया जाता है जिसमें 1 भाग दूध पाऊडर तथा 7 से 8 भाग पानी मिलाते हैं तो उसमें रिकन्सटिट्यूटेड दूध कहते हैं।

(च) **रिकम्बाइण्ड दूध** – यह दूध जो बटर आयल, सप्रेस दूध पाऊडर तथा पानी की निश्चित मात्राओं को मिलाकर तैयार किया जाता है उसे रिकम्बाइण्ड दूध कहते हैं। जिसमें वसा की मात्रा 3% तथा वसाविहीन ठोस की मात्रा 8.5% निर्धारित की गई है।

(छ) **फिल्ड दूध** – जब पूर्ण दूध में से दुग्ध वसा को निकाल कर उसके स्थान पर वनस्पति वसा को मिलाया जाता है उसे फिल्ड दूध कहते हैं।

दूध को इकट्ठा करके डेरी प्लांट में विभिन्न प्रक्रियों से गुजारा जाता है जिससे कि दूध की वास्तविक स्वरूप को बरकरार रखा जा सके। इसकी विभिन्न चरण इस प्रकार में हैं।

होमोजिनाइजेशन

होमोजिनाइजेशन (एक रूपीकरण या समस्थानीकरण)। इस प्रक्रिया में यांत्रिक विधि द्वारा दूध की वसा गोलिकाओं तथा दूध के सीरम को एक समान आकार वाले छोटे–छोटे कणों में विभाजित किया जाता है कि दूध और वसा एक में समाहित रह सके तथा अलग–अलग न हों। इस प्रक्रिया का उपयोग फ्लेवर्ड दूध बनाने के लिए उपयोगी होता है जैसे सोया मिल्क, स्ट्रोबेरी फ्लेबर्ड मिल्क, मिल्क सेक, आइस्क्रीम मिक्स इत्यादि।

इससे यह फायदा होता है कि दूध आसानी से पचाया जा सकता है। बच्चे एवं उम्रदराज लोगों के लिए भी समान्यरूप से सूपाच्य है तथा इस प्रकार के दूध से वसा तथा क्रिम अलग करना सम्भव नहीं होता है। इस प्रक्रिया से गुजरने के बाद दही एवं आइस्क्रीम मूलायम हो जाता है। इन प्रक्रिया में फायदा है तो साथ में नुकसान भी है जैसे कि दूध को गर्म करने पर कुछ प्रोटीन फट जाते हैं, दूध में जलने की गंध आती है, विटामिन बी एवं सी खत्म हो जाती है तथा इस प्रकार के दूध के रख रखाव में अति सावधानी बरतनी पड़ती है।

होमोजिनाइजन प्रक्रिया

दूध की प्राप्ति

↓

दूध को 5^0C ठंढा करना

↓

दूध को एक जगह इक्ट्ठा करना

↓

दूध का स्टैण्डड्राईजेशन

↓

दूध को छानना

↓

दूध का होमोजिनाइजेशन 60^0C तथा 2500 पौंड प्रति वर्ग इंच के दवाब से निकालना

↓

दूध का निरोगन 72^0C पर (15 सेकेण्ड पर)

↓

दूध को भरना तथा पैकेट या बोतल में बंद करना

↓

दूध को ठंढ़ा करना 5^0C तक

↓

दूध का सुरक्षित रखना 5^0C ताप पर

बेक्टोफ्यूगेशन

दूध में उपस्थित जीवाणुओं को सेन्ट्रीफ्यूगल गति द्वारा दूध से अलग करने को ही बेक्टोफ्यूगेशन कहते हैं।

बेक्टोफ्यूगेशन प्रक्रिया

दूध को 40^0C पर गर्म किया जाता है।

↓

दूबारा दूध को 75^0C तक गर्म करना

↓

इस गर्म दूध को पहले बैक्टोफ्यूज द्वारा साफ किया जाता है जिसमें 90% तक बैक्टीरिया दूध से अलग हो जाता है।

↓

अब इस दूध को दूसरे बेक्टोफ्यूज में भेजा जाता है। इस बार बचे हुए 10% बैक्टीरिया भी अलग हो जाते हैं तथा दूध 99.9% जीवाणु मुक्त हो जाते हैं।

अपराइजेशन

इस विधि द्वारा दूध को उच्च तापक्रम (149^0C) पर शीघ्रता से गर्म करके ठंडा किया जाता है।

प्रक्रिया -

सबसे पहले दूध को 49^0C तक गर्म किया जाता है।

↓

दूध में तापमान को 77^0C तक बढ़ाया जाता है।

↓

तीसरी बार तापक्रम को 149^0C तक बढ़ाया जाता है।

↓

दूध को शून्यक भाग में भेजकर भाप द्वारा बढ़ी हुई पानी की मात्रा को निकाल दिया जाता है।

↓

अब दूध को शीघ्रता में ठंडा करके पैकेट बनाकर ठंडा में रख लेते हैं।

इस विधि द्वारा तैयार दूध पूर्णतः जीवाणुरहित होती है। दूध ज्यादा दिनों तक बगैर खराब हुए रह सकता है। दूध की पौष्टिकता बढ़ जाती है।

दूध द्वारा निर्मित पदार्थ

(क) संघनित पूर्ण दूध पदार्थ

खीर

खोआ

रबड़ी

कुल्फी

आईस्क्रीम

(ख) पूर्ण दूध जमाकर बनने वाले पदार्थ

दही

पनीर

छेना

श्रीखंड

(ग) दूध से मथकर बना पदार्थ

मक्खन

घी

लस्सी

मट्ठा

खोआ – दूध से जल को तीव्र गति से वाष्पित करने को हम खोआ कहते हैं। इसमें ताप को तेज रखकर ऊबाला जाता है तथा दूध को हर वक्त चलाते रहना होता है। दूध गर्म करने का बर्त्तन का मुँह चौड़ा होना चाहिए। अंतिम वक्त में तापक्रम कम रखना चाहिए नहीं तो खोआ जलने की संभावना अधिक होती है। अगर इसे पैक करके बाजार में बेचना हो तो नमी अवरोधक बटर पेपर में पैकिंग करना चाहिए।

कपड़े से छान कर इसका पानी बाहर कर देते हैं तथा ठोस श्रीखंड तैयार हो जाता है। इसमें पीसी हुई चीनी (45%) मिला देते हैं तथा 5^0C पर ठंढ़ा करने को रखते हैं।

मक्खन बनाना – मक्खन एक दूध पदार्थ है, जो क्रीम को मथने से प्राप्त होता है। जिसमें वसा 80% तथा जल 10% से अधिक नहीं होनी चाहिए।

घी बनाना – जब हम दही से मक्खन बनाते हैं और उस मक्खन को कड़ाही में गर्म करते हैं तो मक्खन पीघल जाता है। पिघलने के बाद मक्खन तरल में परिवर्तित हो जाती है। अब पतली मखमली कपड़े से छान कर हम घी निकाल लेते हैं।

लस्सी बनाना – दही में पानी तथा मक्खन मिलाकर मथनी से मथ लेते हैं इसके पश्चात उसमें चीनी मिला देते हैं और अपनी पसंद के अनुरूप उसमें सूखे मेवे डाल कर लस्सी बनाते हैं।

रबड़ी बनाना – यह एक मीठा संघनित पूर्ण दूध पदार्थ है। इसको बनाने के लिए चौड़े मुँह वाले बर्त्तन में गर्म करना चाहिए। उबलते हुए दूध के ऊपर पत्तली परत जम जाती है जिसको इक्ट्ठा करके रखते हैं और यह प्रक्रिया चलती रहती है जब तक दूध बर्त्तन में गाढ़ा नहीं हो जाए। जब बर्त्तन में दूध की मात्रा 1/6 तब बच जाए तब तक यह क्रिया चलती रहती है। अब सारे जमे हुए क्रीम को इक्ट्ठा करके उसमें चीनी मिला देते हैं।

आइस्क्रीम – दूध को गाढ़ा करके उसमें कस्टर्ड पाऊडर, चीनी, काजु, किसमिस, बदाम तथा छोहाड़ा भी मिला सकते हैं। इस तैयार मिश्रण को फ्रीज में $4–5^0C$ पर जमने के लिए अपनी मनचाही बर्त्तन में छोड़ देते हैं। इस प्रकार आइस्क्रीम तैयार हो जाती है।

पशुपालन एवं मत्स्य विभाग, झारखण्ड, राँची

मत्स्य विभाग की कल्याणकारी योजनाएँ

क्र. स.	योजना का नाम	योजना की विवरणी
1.	निजी क्षेत्र में नये तालाब का निर्माण	एक नम्बर या दो नम्बर दोनो भूमि में 1.50 एकड़ से बड़े अधिकतम 12.50 एकड़ तक के नये तालाब का निर्माण। प्रति हेक्टयर जलक्षेत्र निर्माण की इकाई लागत 5.60 लाख रू.। लाभुक का अंशदान 1.12 लाख रू., शेष 4.48 लाख रू. प्रक्रिया अनुसार अनुदान।
2.	पुराने तालाबों का जीर्णोद्धार	मत्स्य पालक विकास अभिकरण अन्तर्गत केन्द्र सरकार द्वारा स्वीकृत दर पर बैंक ऋण एवं अनुदान की व्यवस्था।
3.	मछुआ आवास	केन्द्र सरकार से स्वीकृत राशि के अन्तर्गत गरीब सक्रिय आवास विहीन/कच्चा मकान वाले मछुआरों को पक्का मछुआ आवास।
4.	सामूहिक दुर्घटना बीमा	मत्स्यजीवी सहयोग समिति एवं मत्स्य विभाग से संबद्ध मत्स्य कार्य से जुड़े सक्रिय मछुआरों को निःशुल्क दुर्घटना बीमा का लाभ दिया जाता है। दुर्घटना से मृत्यु/स्थाई पूर्ण अपंगता की स्थिति में एक लाख रू. एवं स्थाई आंशिक अपंगता पर पचास हजार रू. की राशि देय होगी।
5.	मत्स्य बीज उत्पादकों को स्पॉन एवं जाल की आपूर्ति	प्रशिक्षित मत्स्य बीज उत्पादकों को प्रावधानानुसार अनुदानित दर पर मत्स्य स्पॉन, जाल एवं पूरक आहार की आपूर्ति की जाती है।
6.	मत्स्यजीवी सहयोग समितियों को पिक–अप वैन	50 क्विंटल मछली अथवा 20 लाख मत्स्य बीज तैयार/विपणन करने वाले मत्स्यजीवी सहयोग समितियों को परिवहन करने के लिए पिक–अप वैन के कय हेतु लागत व्यय का 50% या अधिकतम 2 लाख रू0 तक का अनुदान।
7.	मछली के इयरलिंग संचयन के प्रोत्साहन हेतु सहायता	सदाबहार तालाबों में मिश्रित मत्स्य पालन के लिए इयरलिंग/एडवांस फिंगरलिंग के संचयन हेतु 2.00 रू0 प्रति इयरलिंग की दर से चयनित मत्स्य बीज उत्पादकों एवं मत्स्य पालकों को आर्थिक सहायता।
8.	मत्स्य पालकों/मत्स्यबीज उत्पादकों को प्रशिक्षण	राँची में राज्य के मत्स्य कृषकों के लिए तीन दिवसीय/पाँच दिवसीय/पन्द्रह दिवसीय आवश्यकता आधारित आवासीय तकनीकि प्रशिक्षण।
9.	निजी तालाबों में मिश्रित मत्स्य पालन/पंगेशियस मछली के पालन का प्रत्यक्षण	चयनित निजी सदाबहार तालाबों में मिश्रित मत्स्य पालन/पंगेशियस मछली पालन के प्रत्यक्षण हेतु मत्स्य बीज एवं पूरक आहार आदि के लिए प्रावधानानुसार आर्थिक अनुदान।
10.	फिश डोमेस्टिक मार्केट	इस योजना अन्तर्गत राज्य के भ्रमणशील खुदरा मत्स्य विक्रेताओं को आईस बॉक्स के साथ साईकिल कय करने हेतु प्रति इकाई का 50% अधिकतम 3500/–रू0 अनुदान।
11.	मत्स्य फसल बीमा योजना	राज्य में मछली के फसल का बीमा करने हेतु प्रीमियम की आधी राशि का वहन राज्य सरकार द्वारा एवं आधी राशि का वहन लाभुक द्वारा किए जाने की योजना लागू की जा रही है।

उपरोक्त योजनाओं की अधिक जानकारी के लिए अपने जिले के जिला मत्स्य कार्यालय से सम्पर्क करें :

1529-07-2012

पशुपालन एवं मत्स्य विभाग, झारखण्ड, राँची

पशुपालन विभाग की कल्याणकारी योजनाएँ

पशु चिकित्सा एवं बधियाकरण, टीकाकरण, कृत्रिम गर्भाधान, पशुपालन शिविर,पशुपालकों का प्रशिक्षण, रोग निदान, राष्ट्रीय कृषि विकास योजना अन्तर्गत मुर्गी पालन, सुकर पालन एवं बकरी पालन में अनुदान सह ऋण

गव्य विकास की कल्याणकारी योजनाएँ

अनुदान एवं बैंक ऋण पर दुधारू मवेशी वितरण की योजना, पशु स्वास्थ्य एवं नस्ल सुधार कार्यक्रम, बछिया पालन पोषण एवं उत्पादकता वृद्धि कार्यक्रम, दुग्ध संग्रहण व प्रोसेसिंग का आधारभूत संरचना का विकास, पशु पोषण एवं चारा विकास कार्यक्रम, गोकुल ग्राम विकास योजना, फीड सप्लीमेंट एवं अन्य इनपुट वितरण की योजना, प्रसार एवं प्रशिक्षण की योजना, ग्रासलैण्ड डेवलपमेंट योजना, 75% अनुदानित दर पर चैफ कटर की वितरण की योजना, एजोला उत्पादन एवं प्रदर्शन की योजना, साईलेस बनाने की योजना, सघन गव्य विकास कार्यक्रम, डेयरी उघमिता विकास योजना